# आदि गुरु शंकराचार्य

इन्द्रा 'स्वप्न'

इस उपन्यास में शंकराचार्य के जीवन में घटी घटनाएं और जनकल्याण के कार्य—पुनः हिन्दू धर्म की स्थापना, प्रसिद्ध मन्दिर देवालयों की प्रतिष्ठा उन्होंने किस प्रकार की, इस विषय पर लिखा गया है। उनकी रचनाएं भी आधुनिक संसार के लिए चमत्कारपूर्ण हैं।

जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक संस्कृत विद्वान 'डॉक्टर पाल डायसन' जब शंकराचार्य लिखित ब्रह्मसूत्रों के 'शंकर भाष्य' को संस्कृत से जर्मन भाषा में अनुवाद करने लगे तो उन्हें वह ग्रन्थ तीस-तीस बार पढ़ना पड़ा, तब ब्रह्मसूत्रों के शंकर भाष्य का अनुवाद जर्मन भाषा में कर सके।

उन्होंने 'तत्त्वमसि' तू ही उसका स्वरूप है कहकर जीवात्मा और ब्रह्म की एकता को दर्शाया—'आत्मवत् सर्व भूतेषु' सभी आत्माओं में मेरा रूप है, मेरे से दूसरा भिन्न नहीं।

'मैं भी ब्रह्म, पड़ोसी भी ब्रह्म, जब सभी ब्रह्म हैं फिर शत्रु कौन? किससे द्वेष?'

शंकराचार्य का यही उपदेश भारत क्या सारे विश्व को शान्ति का सन्देश देता है।

इस उपन्यास में दिग्विजयी, महान शंकराचार्य की कुछ शिक्षाप्रद अलौकिक, जन-कल्याणकारी घटनाओं का उल्लेख करने का साहस किया गया है। आशा है पाठक समाज-सुधारक क्रांति संदेश देने वाले, महान मानव के विषय में पढ़कर कुछ ग्रहण करने का यत्न करेंगे।
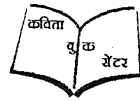
# आदि गुरु शंकराचार्य

# आदि गुरु शंकराचार्य



इन्द्रा 'स्वप्न'

*योगीराज महामंडलेश्वर*
*श्री स्वामी वेदव्यासानंदजी महाराज सरस्वती*
*को सादर—*

# मंतव्य

देव-वंदित भारतवर्ष के अंतिम दक्षिण प्रांत केरल प्रदेश में स्थित कालाडी ग्राम की पावन व धन्य भूमि पर आविर्भूत मां विशिष्टा देवी एवं पिता शिवगुरु की सुदृढ़ साधना और अखण्ड तपस्या के साक्षात् फल रूप शंकर का भास्वर जीवन सार्वभौमिक सनातन वैदिक धर्म का दिग्दर्शनकारी प्रकाशस्तम्भ है। आचार्य शंकर का अभ्युदय ऐसे समय पर हुआ जबकि विकृत बौद्ध धर्म के दबाव से एवं इस्लाम के सबल व सस्पर्द्ध अभियान तथा अनुप्रवेश से सनातन हिंदू धर्म बलहीन, विध्वस्त और विच्छिन्न हो गया था। परंतु आचार्य शंकर की अलौकिक प्रतिभा, साधना, तत्त्वज्ञान, चरित्रबल, शिक्षा तथा लोककल्याण-भावना ने हिंदू धर्म के भीतर अपूर्व शक्ति का संक्रमण कर वैदिक धर्म को अनंत युगों का स्थायित्व प्रदान कर सुदृढ़ भित्ति के ऊपर सुप्रतिष्ठित किया। इसके लिए दूरदर्शी प्राज्ञ आचार्य ने भारत के चार प्रांतों में चार धर्मदुर्ग—पूर्व में गोवर्धन मठ, पश्चिम में शारदा मठ, उत्तर में ज्योतिर्मठ और दक्षिण में शृंगेरी मठ स्थापित किये। ये वेदस्वरूप चारों मठ कुशल प्रहरी की भांति भारत की चारों सीमाओं की रक्षा करते हुए आज भी हिंदू धर्म की विजय-वैजयंती फहरा रहे हैं।

'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' को ही जीवन में चरितार्थ करने वाले प्रखर प्रतिभाशाली उन्हीं आचार्य शंकर के समस्त जीवन की अलौकिक और लोकहित पावन-चरित्रों पर सम्यक् प्रकाश डालने वाली, लेखिका मां इंद्रा 'स्वप्न' की सिद्ध एवं सबल लेखनी द्वारा अंकित यह पुस्तक इस संसार में अनेक प्रकार के मोह और भ्रांति से आच्छन्न मनुष्य को आध्यात्मिक संकटों से मुक्त कर जीवन में सच्चा व दिव्य पथ-प्रदर्शन कर उसे सुलक्ष्य की प्राप्ति करा सकेगी, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

# मंतव्य

देव-वंदित भारतवर्ष के अंतिम दक्षिण प्रांत केरल प्रदेश में स्थित कालाडी ग्राम की पावन व धन्य भूमि पर आविर्भूत मां विशिष्टा देवी एवं पिता शिवगुरु की सुदृढ़ साधना और अखण्ड तपस्या के साक्षात् फल रूप शंकर का भास्वर जीवन सार्बभौमिक सतातन वैदिक धर्म का दिग्दर्शनकारी प्रकाशस्तम्भ है। आचार्य शंकर का अभ्युदय ऐसे समय पर हुआ जबकि विकृत बौद्ध धर्म के दबाव से एवं इस्लाम के सबल व सस्पर्द्ध अभियान तथा अनुप्रवेश से सनातन हिंदू धर्म बलहीन, विध्वस्त और विच्छिन्न हो गया था। परंतु आचार्य शंकर की अलौकिक प्रतिभा, साधना, तत्त्वज्ञान, चरित्रबल, शिक्षा तथा लोककल्याण-भावना ने हिंदू धर्म के भीतर अपूर्व शक्ति का संक्रमण कर वैदिक धर्म को अनंत युगों का स्थायित्व प्रदान कर सुदृढ़ भित्ति के ऊपर सुप्रतिष्ठित किया। इसके लिए दूरदर्शी प्राज्ञ आचार्य ने भारत के चार प्रांतों में चार धर्मदुर्ग—पूर्व में गोवर्धन मठ, पश्चिम में शारदा मठ, उत्तर में ज्योतिर्मठ और दक्षिण में शृंगेरी मठ स्थापित किये। ये वेदस्वरूप चारों मठ कुशल प्रहरी की भांति भारत की चारों सीमाओं की रक्षा करते हुए आज भी हिंदू धर्म की विजय-वैजयंती फहरा रहे हैं।

'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' को ही जीवन में चरितार्थ करने वाले प्रखर प्रतिभाशाली उन्हीं आचार्य शंकर के समस्त जीवन की अलौकिक और लोकहित पावन-चरित्रों पर सम्यक् प्रकाश डालने वाली, लेखिका मां इंद्रा 'स्वप्न' की सिद्ध एवं सबल लेखनी द्वारा अंकित यह पुस्तक इस संसार में अनेक प्रकार के मोह और भ्रांति से आच्छन्न मनुष्य को आध्यात्मिक संकटों से मुक्त कर जीवन में सच्चा व दिव्य पथ-प्रदर्शन कर उसे सुलक्ष्य की प्राप्ति करा सकेगी, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

**—डॉ. भास्करदत्त द्विवेदी**

# 1

प्रातःकाल का समय था। सूर्य अपनी सुनहरी किरणों का जाल फैलाता हुआ अंधकार दूर करने का यत्न कर रहा था।

बालशंकर अपने गुरु की आज्ञा से भिक्षापात्र संभाले भिक्षा लेने के लिए एक ब्राह्मण के द्वार पर खड़ा हो गया।

ब्राह्मण अधिक निर्धन था, वह भी भिक्षा मांगकर निर्वाह करता था। उसकी पत्नी ब्राह्मणी धार्मिक सहृदय महिला थी। उसने उस तेजस्वी बालभिक्षुक की ओर देखा, ओर मन-ही-मन सोचा, आज तो....हमारे घर में मुट्ठी भर चावल भी नहीं जिसे इस बाल ब्रह्मचारी के भिक्षापात्र में डाल दूं, मैं कैसी भाग्यहीन हूं....सोचते हुए ब्राह्मणी की आंखों में आंसू छलछला आये, उसने अपने आंचल से आंसू पोंछकर एक आंवला शंकर के भिक्षापात्र में डाल दिया। (788 ई. या छः सो छियासी (686 ई.) बैशाख शुक्ला तृतीया सौर बारह तारीख के मध्याह्नकाल में विशिष्टा और उसके पति शिवगुरु को शंकर के आशीर्वाद से पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई थी।

शिवशंकर की कृपा से ही विशिष्टा और शिवगुरु को पुत्र का वरदान मिला था।

इस कारण उन्होंने अपने पुत्र का नाम शंकर रख दिया था।

शिवगुरु अधिक समय तक अपने पुत्र की बाललीला न देख सके, अधेड़ आयु में पुत्र का मुंह देखा था, मन के अरमान पूरे न कर सके, शंकर को विशिष्टा को सौंपकर स्वर्ग सिधार गए।

तीन वर्ष में ही बालशंकर ने अनेक धर्मगंथों को सुनकर ही कण्ठस्थ कर लिया था।

पांच वर्ष के शंकर हो गए तब विशिष्टा ने अपने पुत्र का उपनयन संस्कार कराकर गुरु के समीप विद्या अध्ययन के लिए भेज दिया था। वह अपनी मातृभाषा पढ़ चुका था। पांच वर्ष की आयु में शंकर ने रामायण, महाभारत, पुराण अनेक शास्त्रों

'बेचारी विशिष्टा को मझधार में छोड़ गए, बड़ी पूजा-प्रार्थना करके इन्होंने पुत्र होने का वरदान पाया था।'

'हां भैया, सच्चे हृदय से की हुई पूजा-प्रार्थना कभी व्यर्थ नहीं जाती।'

'तुमने शिवगुरु से वह बात नहीं सुनी मित्र, शिवगुरु की तपस्या पूजा से प्रसन्न होकर जब शिवभोले ने शिवगुरु से पूछा, 'तुम्हें सर्वज्ञ गुण वाला छोटी आयु वाला पुत्र चाहिए या दीर्घ आयु वाला अल्पज्ञानी पुत्र चाहिए।'

उन्होंने क्या वर मांगा मित्र.... ।'

'उन्होंने कहा, 'हमें तो सर्वज्ञानी पुत्र चाहिए भगवन।'

'हां यह चर्चा मैंने भी सुनी थी मित्र....शिवगुरु ने बालक की जब जन्मकुण्डली बनाई उसमें बालक शंकर की आयु थोड़ी ही बताई।'

'अजी विष भरे समुद्र से तो एक घूंट अमृत अधिक है भाई, विशिष्टा के पिछले संस्कार कितने अच्छे थे, तभी इतना होनहार गुणवान पुत्र उसे मिला।'

'अजी अब यहीं खड़े-खड़े बातों में समय नष्ट किए जाओगे, चलो, बालशंकर के गुरुजी के समीप चलकर उन्हें भेंट दे आयें, और इस अलौकिक चमत्कार की घटना भी उन्हें सुना आएं।'

ब्राह्मणी फल, मिठाई से भरी टोकरी ब्राह्मण के हाथ में देते हुए बोली, 'मैं अपनी पड़ोसन को भी बुला लाऊं, वो प्रतिदिन मेरी दीन-दशा पर मन-ही-मन मुस्कराती थी।'

'अच्छा, तो तुम अब उसे अपना वैभव दिखाकर उसे ईर्ष्या से जलाना चाहती हो.... ।'

'अरे छोड़ो इन बातों को, मुझे घर और तन संवारते वैसे ही देर हो गई है', कहते हुए ब्राह्मणी अपनी नई साड़ी संभालती फूलों और प्रसाद से भरी टोकरी उठाकर मुस्कराती हुई बालशंकर के गुरु के निवास-स्थल की ओर चल पड़ी।

उसकी पड़ोसन ने द्वार खोलकर एक बार उसके नये वस्त्र और मुस्कराते हुए मुख को देखा, फिर एक लम्बी सांस लेकर जोर से द्वार बंद कर लिया।

कहते हैं वह बुढ़िया सहृदय जिसने बालशंकर को आंवला दिया था, उसका घर अब (स्वर्णथुमन—स्वर्णगृह) कहलाता है।

# दो शब्द

**सत्यपि भेदापगमे नाथ, तवाहं न मामकीनस्त्वम्।**
**सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारगः।।**

(हे नाथ, तुम्हारे और मेरे बीच अभेद बुद्धि होने पर भी 'तुम्हारा ही मैं हूँ, तुम कभी मेरे' नहीं हो। क्योंकि समुद्र और तरंग एक होने पर भी समुद्र की ही तरंगें कही जाएंगी।)

पूज्य शंकराचार्य के चरणों में यह शब्द श्रद्धांजलि अर्पित है।

वह इतने महान विशाल थे, उनके विषय में अनेक ग्रंथ लिखे गये, लिखे जा रहे हैं पर यह प्रयास समुद्र में एक नन्हीं-सी जलबिंदु के समान ही है।

उनकी अलौकिक प्रतिभा, तत्त्वज्ञान, चरित्रबल, लोक-कल्याण के लिए छोटी-सी आयु में ही राष्ट्र के प्रति सारा जीवन समर्पित करना : देवअंश शंकर का ही साहसकार्य था।

विभिन्न धर्मों की पाखण्ड भरी प्रथाओं के भ्रमजाल को तोड़कर उन्होंने हिंदू धर्म को, सनातन वैदिक आदर्श को प्रतिष्ठित करने के लिए भारत की चारों दिशाओं में चार मठ स्थापित किये।

चारों वेदों की मठों में प्रतिष्ठा की। अद्वैत-वेदांत शंकराचार्य के प्रभाव से ही भारत में स्थिर रहा।

सनातन वैदिक धर्म को जो उन्होंने रूप दिया कालप्रभाव से वह धूमिल हो सकता है, नष्ट नहीं हो सकता।

शंकराचार्य प्रतिभावान दार्शनिक ही नहीं थे, सत्यद्रष्टा ऋषि भी थे।

उनके द्वारा रचित—न धर्मो न चार्थो, न कामो न मोक्षश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहं—यह मंत्र उन्होंने कुरीतियों, पाखण्ड में फंसे भारतवासियों को देकर,

नवचेतना जाग्रत की।

जगत्गरु श्री शंकराचार्य सारे भारत में सांस्कृतिक एकता स्थापित करना चाहते थे।

इस उपन्यास में उनके जीवन में घटी घटनाएं और जनकल्याण के कार्य—पुनः हिंदू धर्म, प्रसिद्ध मंदिर देवालयों की प्रतिष्ठा उन्होंने किस प्रकार की इस विषय पर लिखा गया है। उनकी रचनाएँ भी आधुनिक संसार के लिए चमत्कारपूर्ण हैं।

जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक संस्कृत विद्वान 'डॉक्टर पाल डायसन' जब शंकराचार्य लिखित ब्रह्मसूत्रों के 'शंकर भाष्य' को संस्कृत से जर्मन भाषा में अनुवाद करने लगे तो उन्हें वह ग्रंथ तीस-तीस बार पढ़ना पड़ा, तब ब्रह्मसूत्रों के शंकर भाष्य का अनुवाद जर्मन भाषा में कर सके।

उन्होंने 'तत्त्वमसि' तू ही उसका स्वरूप है कहकर जीवात्मा और ब्रह्म की एकता को दर्शाया—'आत्मवत् सर्व भूतेषु' सभी आत्माओं में मेरा रूप है, मेरे से दूसरा भिन्न नहीं। मैं भी ब्रह्म पड़ोसी भी ब्रह्म, जब सभी ब्रह्म हैं फिर शत्रु कौन? किससे द्वेष?

शंकराचार्य का यही उपदेश भारत क्या सारे विश्व को शांति का संदेश देता है।

इस उपन्यास में दिग्विजयी, महान शंकराचार्य की कुछ शिक्षाप्रद अलौलिक, जलकल्याणकारी घटनाओं का उल्लेख करने का साहस किया गया है।

आशा है पाठक, समाज-सुधारक शांतिसंदेश देने वाले, महान मानव के विषय में पढ़कर कुछ ग्रहण करने का यत्न करेंगे।

कई विद्वान महात्माओं ने पूज्य शंकराचार्य के जीवन विषय पर लिखा है। उन रचनाओं से इस उपन्यास में सहायता ली गयी है। इनके जन्म-मृत्यु के विषय में अधिक मतभेद है। सात सौ अठासी ई. को वैशाख मास की शुक्ल पंचमी को जन्म लेकर, शंकराचार्य बत्तीस वर्ष की आयु में परमधाम सिधारे।

**—इंद्रा 'स्वप्न'**

# 1

प्रातःकाल का समय था। सूर्य अपनी सुनहरी किरणों का जाल फैलाता हुआ अंधकार दूर करने का यत्न कर रहा था।

बालशंकर अपने गुरु की आज्ञा से भिक्षापात्र संभाले भिक्षा लेने के लिए एक ब्राह्मण के द्वार पर खड़ा हो गया।

ब्राह्मण अधिक निर्धन था, वह भी भिक्षा मांगकर निर्वाह करता था। उसकी पत्नी ब्राह्मणी धार्मिक सहृदय महिला थी। उसने उस तेजस्वी बालभिक्षुक की ओर देखा, ओर मन-ही-मन सोचा, आज तो....हमारे घर में मुट्ठी भर चावल भी नहीं जिसे इस बाल ब्रह्मचारी के भिक्षापात्र में डाल दूं, मैं कैसी भाग्यहीन हूं....सोचते हुए ब्राह्मणी की आंखों में आंसू छलछला आये, उसने अपने आंचल से आंसू पोंछकर एक आंवला शंकर के भिक्षापात्र में डाल दिया। (788 ई. या छः सो छियासी (686 ई.) बैशाख शुक्ला तृतीया सौर बारह तारीख के मध्याह्नकाल में विशिष्टा और उसके पति शिवगुरु को शंकर के आशीर्वाद से पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई थी।

शिवशंकर की कृपा से ही विशिष्टा और शिवगुरु को पुत्र का वरदान मिला था।

इस कारण उन्होंने अपने पुत्र का नाम शंकर रख दिया था।

शिवगुरु अधिक समय तक अपने पुत्र की बाललीला न देख सके, अधेड़ आयु में पुत्र का मुंह देखा था, मन के अरमान पूरे न कर सके, शंकर को विशिष्टा को सौंपकर स्वर्ग सिधार गए।

तीन वर्ष में ही बालशंकर ने अनेक धर्मगंथों को सुनकर ही कण्ठस्थ कर लिया था।

पांच वर्ष के शंकर हो गए तब विशिष्टा ने अपने पुत्र का उपनयन संस्कार कराकर गुरु के समीप विद्या अध्ययन के लिए भेज दिया था। वह अपनी मातृभाषा पढ़ चुका था। पांच वर्ष की आयु में शंकर ने रामायण, महाभारत, पुराण अनेक शास्त्रों

के श्लोकों को दूसरों से सुनकर ही कण्ठस्थ कर लिया था।

बालक शंकर की प्रतिभा, स्मरणशक्ति देखकर उसके गुरु भी आश्चर्य से देखते रह जाते थे।

कितना प्रतिभाशाली सुंदर सुशील बालक है, इसके सभी लक्षण महान आत्माओं के से हैं।

ब्राह्मण, बालक शंकर के गुण-प्रतिभा-शील को मुग्ध भाव से देखता रह गया।

ब्राह्मणी अपने आंचल से आंसू पोंछ ममता और करुणा भरी दृष्टि से शंकर को देखती हुई सिर नीचा किए शंकर के भिक्षापात्र में आंवला डाल कर चली गई।

शंकर अलौकिक शक्ति वाले थे, निर्धन ब्राह्मणी के भाव उस महान आत्मा से छिपे नहीं रहे।

उन्होंने (कनक-धर-स्तव) एक श्लोक रचकर दारिद्रय विनाशिनी लक्ष्मीदेवी से प्रार्थना की, 'देवी लक्ष्मी! इस निर्धन गृहस्थी ब्राह्मणी को धन देकर उसका दुख दूर करो।'

लक्ष्मी देवी बालशंकर की प्रतिभा गुण सरलता से अधिक प्रभावित थीं।

उन्होंने परोपकारी सरल हृदय बालशंकर की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

शंकर हर्ष में भरकर आगे चल दिए। दूसरे दिन प्रातःकाल ब्राह्मणी की आंख खुली, तब उसने देखा, सारे घर में सोने के आंवले बिखरे पड़े थे।

'स्वामीजी जरा इधर तो आकर देखो....' आश्चर्य में भरकर अपने पति को बुलाकर उन आंवलों को दिखाते हुए ब्राह्मणी मुस्कराई, 'उस बालब्रह्मचारी को एक सूखा आंवला दिया था।'

'और उसके उपलक्ष में तुम्हारा घर सोने के आंवलों से भर गया।' ब्राह्मण हंसते हुए आंवले समेटते हुए बोला।

'यह सब उस बालब्रह्मचारी शंकर का प्रताप है, उसमें अलौकिक शक्ति छिपी हुई है। मैं तो उसे देखते ही जान गया था।'

'अजी ब्राह्मण देवता, आज भिक्षा लेने नहीं जाना', ब्राह्मण के पड़ोसी मित्र ने आते हुए कहा, बड़े प्रसन्न दिखाई दे रहे हो!'

'भाई, बालब्रह्मचारी शंकर की कृपा से लक्ष्मी हम पर प्रसन्न हो गई, अब तो तुम भी हम से निर्वाह योग्य धन ले सकते हो।' अपने मित्र को सोने के आंवले दिखाते हुए ब्राह्मण ने कहा।

'बालशंकर असाधारण बालक है....इसके पिता शिवगुरु धन्य हो गए भैया।'

'लेकिन अपने पुत्र की बाललीला न देख पाए।'

'बेचारी विशिष्टा को मझधार में छोड़ गए, बड़ी पूजा-प्रार्थना करके इन्होंने पुत्र होने का वरदान पाया था।'

'हां भैया, सच्चे हृदय से की हुई पूजा-प्रार्थना कभी व्यर्थ नहीं जाती।'

'तुमने शिवगुरु से वह बात नहीं सुनी मित्र, शिवगुरु की तपस्या पूजा से प्रसन्न होकर जब शिवभोले ने शिवगुरु से पूछा, 'तुम्हें सर्वज्ञ गुण वाला छोटी आयु वाला पुत्र चाहिए या दीर्घ आयु वाला अल्पज्ञानी पुत्र चाहिए।'

उन्होंने क्या वर मांगा मित्र....।'

'उन्होंने कहा, 'हमें तो सर्वज्ञानी पुत्र चाहिए भगवन।'

'हां यह चर्चा मैंने भी सुनी थी मित्र....शिवगुरु ने बालक की जब जन्मकुण्डली बनाई उसमें बालक शंकर की आयु थोड़ी ही बताई।'

'अजी विष भरे समुद्र से तो एक घूंट अमृत अधिक है भाई, विशिष्टा के पिछले संस्कार कितने अच्छे थे, तभी इतना होनहार गुणवान पुत्र उसे मिला।'

'अजी अब यहीं खड़े-खड़े बातों में समय नष्ट किए जाओगे, चलो, बालशंकर के गुरुजी के समीप चलकर उन्हें भेंट दे आयें, और इस अलौकिक चमत्कार की घटना भी उन्हें सुना आएं।'

ब्राह्मणी फल, मिठाई से भरी टोकरी ब्राह्मण के हाथ में देते हुए बोली, 'मैं अपनी पड़ोसन को भी बुला लाऊं, वो प्रतिदिन मेरी दीन-दशा पर मन-ही-मन मुस्कराती थी।'

'अच्छा, तो तुम अब उसे अपना वैभव दिखाकर उसे ईर्ष्या से जलाना चाहती हो....।'

'अरे छोड़ो इन बातों को, मुझे घर और तन संवारते वैसे ही देर हो गई है', कहते हुए ब्राह्मणी अपनी नई साड़ी संभालती फूलों और प्रसाद से भरी टोकरी उठाकर मुस्कराती हुई बालशंकर के गुरु के निवास-स्थल की ओर चल पड़ी।

उसकी पड़ोसन ने द्वार खोलकर एक बार उसके नये वस्त्र और मुस्कराते हुए मुख को देखा, फिर एक लम्बी सांस लेकर जोर से द्वार बंद कर लिया।

कहते हैं वह बुढ़िया सहृदय जिसने बालशंकर को आंवला दिया था, उसका घर अब (स्वर्णथुमन—स्वर्णगृह) कहलाता है।

# 2

शंकर थोड़े समय में ही गुरु से विद्याध्ययन कर सभी धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करके अपनी मां विशिष्टा के समीप अपने घर आ गए थे।

उनकी प्रतिभा विद्वत्ता से प्रभावित होकर बड़े-बड़े विद्वान बालशंकर के पास अपने संशय निवारण के लिए आते थे।

बालशंकर सरलता से सभी शंकाओं का समाधान कर देते थे। बड़े-बड़े विद्वान उनकी योग्यता, विद्वत्ता, प्रतिभा को मान चुके थे।

पर शंकर में अहंकार की भावना थोड़ी-सी भी नहीं थी। अपनी मां विशिष्टा के लिए, वही भोले-भोले सरल बालक थे।

मां से शंकर को अधिक ही प्रेम था। वह उसे दुखी नहीं देख सकते थे।

इस कारण संन्यासी बनकर जाने की प्रेरणा को अभी तक वह अपनी मां विशिष्टा से नहीं कह सके थे।

जेष्ठ का महीना समाप्त होकर आषाढ़ का महीना आरम्भ हो चुका था।

प्रचंड धूप पड़ रही थी। विशिष्टा नामपुरि नामक उच्च ब्राह्मण कुल की वधू थी। धर्म की भावना उसके हृदय में गहरी थी।

जब से कालाडी ग्राम में विवाह कर आई थी आलवाई नदी जिसे पूर्णा नदी भी कहते थे, प्रतिदिन उसमें स्नान करने जाती थी।

तेज धूप के कारण उसका मन घबरा रहा था। पर विशिष्टा लम्बे-लम्बे डग भरती हुई, आलवाई नदी में स्नान करने चल पड़ी।

स्नान करके जब घर की ओर चली, तब धूप बहुत तेज हो चुकी थी।

विशिष्टा चलते-चलते थक चुकी थी। धूप की तेजी के कारण उसका दिल

घबराने लगा। प्रचंड धूप का ताप सहन न कर सकी और बेसुध होकर गिर पड़ी।

मातृभक्त शंकर घर में बैठा हुआ अपनी मां विशिष्टा की प्रतीक्षा कर रहा था। जब अधिक देर हो गई तो वह घबरा गया।

इतनी देर तो मां कभी आलवाई नदी में स्नान करने के लिए नहीं लगाती थी ....आज इतनी देर कैसे हो गई?

सोचते हुए बालशंकर नदी की ओर चल पड़ा मार्ग में ही विशिष्टा बेसुध पड़ी हुई उसे दिखाई दे गई।

पानी के छींटे देकर शंकर विशिष्टा को सुध में लाया, फिर उसका हाथ पकड़कर धीरे-धीरे अपने घर ले आया। पर मां की यह दशा देखकर शंकर को दुख पहुंचा।

प्रतिदिन स्नान करने मां इतनी दूर अवश्य जायेंगी, उनका प्रतिदिन का यही तो नियम है।

स्नान आलवाई नदी में अवश्य करेंगी, फिर घर आकर पूजा-पाठ करके तब कुछ अल्प-आहार लेंगी।

इतनी दूर जाना अब उनसे नहीं हो सकेगा, अधिक थक गई हैं।

'क्या सोच रहा है बेटे! शंकर के सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए विशिष्टा ने कहा।

'तेरी विद्वत्ता प्रतिभा गुणों की चर्चा सभी जगह हो रही है, मैं तो सुन-सुनकर ही हर्ष में भर जाती हूं। तू उदास क्यों है....?'

'मां! तुम इतनी दूर स्नान करने जाती हो, थक जाती हो, यह देखकर मुझे अधिक खेद होता है, सोचता हूं, इसके लिए क्या यत्न करूं।' कहते हुए शंकर आंखें मींचकर बैठकर गया।

'अरे शंकर चल उठ, कुछ खा-पी ले।' विशिष्टा ने प्यार से शंकर के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, 'चिंता छोड़, देख आकाश पर कैसे काले-काले बादल छाने लगे, अब गरमी नहीं सतायेगी, देख आंख खोलकर देख।' कहते हुए विशिष्टा ने झुककर ध्यान से शंकर को देखा, 'अरे यह तो अपने इष्ट के ध्यान में मग्न है और मैं पगली ....न जाने, इससे क्या-क्या बातें करे जा रही हूं।'

गड गड ड ड ड बादल जोर से गर्जे....विशिष्टा ने चौंककर सामने देखा.... पहले नन्हीं-नन्हीं बूंदें पड़ी, फिर तो मूसलाधार वर्षा होने लगी।

शंकर ने मुस्कराते हुए आंखें खोलीं, 'मां! अब तुझे अधिक दूर नहीं जाना पड़ेगा, मेरी प्रार्थना सुनी गई।'

विशिष्टा ने शंकर को छाती से लगा लिया—कोई शुभ कर्म मेरे से ऐसा बना शंकर जो तेरे जैसे पुत्र की जन्मधात्री बनी।

'मां मुझे संन्यासी बनने की आज्ञा कब दोगी,' विशिष्टा की गोद में सिर रखकर शंकर ने धीरे से कहा, 'मेरा मन अब कहीं नहीं लग रहा।'

'बस यही बात तू मुझसे न कहा कर शंकर, तू इस छोटी आयु में संन्यासी बनकर घर से चला जायेगा,' विशिष्टा ने लम्बी सांस लेते हुए कहा, 'तू तो मेरा जीवन है बेटे, तेरे बिना मैं जीकर क्या करूंगी।'

'मां! जब तक तुम संन्यासी बनने की आज्ञा नहीं दोगी, मैं संन्यासी नहीं बनूंगा', शंकर ने मां की ओर देखते हुए कहा, 'तुम्हारी आज्ञा लेकर ही मैं संन्यासी बनूंगा।'

अभी मां-बेटे बातें कर रहे थे तभी दूर से जंगली पशुओं के बोलने के शब्द के साथ कुत्तों के भौंकने का शब्द सुनाई दिया।

आधी रात बीत चुकी मां, अब विश्राम करो, कहते हुए शंकर अपनी खाट पर जाकर लेट गया।

चिड़ियों का चहचहाना और दूर से घंटे-घड़ियाल बजने का शब्द सुनकर, विशिष्टा चौंककर उठी।

ओह दिन निकल आया, और मेरी आंख ही नहीं खुली, आज तो सारे नित्यकर्मों में बाधा आएगी।

स्नान करने आलवाई नदी पर पहुंचते-पहुंचने तो दोपहर हो जाएगी।

विशिष्टा मन-ही-मन सोचती हुई शीघ्रता से अपने नित्यकर्म निपटाने लगी।

तभी मुस्कराता हुआ शंकर मां के समीप आया और उसके चरण छूकर मस्तक से चरण रज लगाते हुए बोला, 'मां जरा बाहर तो चलकर देखो, कैसा अनूठा दृश्य है।'

'देखूं कौन-सा दृश्य मुझे दिखाने ले चल रहा है', शंकर के साथ बाहर आकर उसने दूर से देखा, आलवाई नदी हिलोरें लेती हुई अपने तट की सीमा तोड़ती हुई, घर से थोड़ी दूर बह रही थी।

'अरे शंकर, सचमुच आलवाई नदी पूर्ण बन गई रे, अब मुझे दूर स्नान करने नहीं जाना पड़ेगा।'

'अरे शंकर की मां देखा तुमने, तुम्हारी प्यारी नदी आलवाई अब तुम्हारे घर के समीप आ गई है।'

'बहन! यह मेरे शंकर की प्रार्थना का फल है,' विशिष्टा ने मुस्कराते हुए अपनी पड़ोसन की ओर देखते हुए कहा। 'कोई शुभ कर्म किये होंगे, जो ऐसा धर्मात्मा पुत्र मुझे मिला।'

'बहन तुम्हारे शुभ कर्मों से तुम्हें ऐसा अलौकिक शक्तिवाला पुत्र मिला, हम सब भी उसके दर्शन करके अपने को धन्य समझते हैं, कोई देवता हम सबका उपकार करने, हमारा उद्धार करने, मनुष्य रूप में जन्म लेकर आया है।'

'बहन! मेरा जन्म सफल हो गया', कहते हुए विशिष्टा ने एक बार फिर दूर बहती हुई आलवाई नदी की ओर देखा, फिर स्नान के लिए कोठे से वस्त्र लेकर मुस्कराती हुई स्नान करने चल पड़ी।

# 3

शंकर की विद्वत्ता प्रतिभा शास्त्र-ज्ञान की चर्चा चारों ओर फैल चुकी थी।

केरल के बड़े-बड़े विद्वान पण्डित, बाल ब्रह्मचारी शंकर की प्रतिभा और विद्वत्ता को मान गए थे।

धार्मिक विषयों पर बालशंकर से वाद-विवाद करके वह समझ चुके थे, छोटे से बाल ब्रह्मचारी शंकर में हमसे अधिक शास्त्रज्ञान व प्रतिभा है।

बालशंकर की विद्वत्ता की चर्चा सुनकर श्रदालुओं, श्रोताओं और विद्वान पण्डितों की भीड़, धार्मिक विषयों पर प्रवचन सुनने को और धर्म विषयों पर शंकाओं का समाधान करने को एकत्र रहती थी।

बाल ब्रह्मचारी शंकर उस विद्वान मण्डली में श्रद्धालुओं की भीड़ में इस प्रकार बैठा हुआ दिखाई देता था, जैसे तारों के समूह में चंद्रमा चमकता हुआ दिखाई देता है।

उसका ज्ञान प्रतिभा से चमकता हुआ मुख सबको अपनी ओर आकर्षित करता हुआ प्रतीत होता था।

बाल ब्रह्मचारी शंकर की प्रार्थना से....आलवाई नदी शंकर के घर के समीप बहने लगी है इसकी चर्चा भी दूर-दूर तक होने लगी।

बहुत से श्रद्धालु भक्त उस चमत्कार को देखने के लिए आने लगे।

अलौकिक चमत्कारों की बातें उस समय के केरल के राजा राजशेखर ने भी अपने श्रद्धालु कर्मचारी दरबारियों से सुनी।

छोटे-से बालब्रह्मचारी शंकर में इतनी अलौकिक शक्ति है, अनूठी प्रतिभा है। शंकर की प्रतिभा गुणों की परीक्षा लेने और ऐसे महान बालक के दर्शन करने की उत्सुकता राजा राजशेखर के मन में भी उत्पन्न हुई।

उन्होंने अपने प्रधान मंत्री को बुलाया, और कहा, 'मंत्रीजी! हम उस अलौकिक चमत्कार वाले ज्ञानी विद्वान बालक शंकर के दर्शन करना चाहते हैं। पहले तुम उससे मिलकर परीक्षा लेकर देखो, क्या जो कुछ हमने बाल ब्रह्मचारी शंकर के विषय में सुना है, वह सच है या कल्पना ही है।'

'महाराज! मैं भी उस बालब्रह्मचारी की अलौकिक घटनाएं सुन चुका हूं, आज प्रत्यक्ष दर्शन करके अपने को धन्य समझूंगा, निर्धन ब्राह्मण का घर सोने के आंवलों से इस बालशंकर ने ही भरवा दिया था।'

अब आलवाई नदी का प्रवाह भी बदलकर उसके घर के समीप आ गया है।

वह असाधारण बालक है महाराज, बड़े-बड़े विद्वान उसके ज्ञान प्रतिभा का लोहा मान चुके हैं।

'तुम्हारी बातों से ज्ञात होता है, तुम भी बाल ब्रह्मचारी से प्रभावित हो चुके हो।' राजा-राजशेखर ने मुस्कराकर मंत्री की ओर देखते हुए कहा, 'हमारी ओर से एक हाथी उस बाल ब्रह्मचारी शंकर के लिए भेंट देने को ले जाओ....और उसे हमारे दरबार में आने का निमंत्रण दे आओ।'

'जैसी आज्ञा महाराज!' प्रधान मंत्री ने झुककर राजा राजशेखर को प्रणाम किया और एक हाथी लेकर बाल ब्रह्मचारी शंकर के दर्शनों को चल पड़ा।

कालाडी ग्राम व नगर के श्रद्धालु भी अलौकिक चमत्कारी व ज्ञानी विद्वान बाल ब्रह्मचारी के दर्शनों के लिए चल पड़े।

प्रधान मंत्री जब अपने दल-बल सहित बाल ब्रह्मचारी के समीप पहुंचा—

बालशंकर अपने श्रद्धालुओं से घिरा हुआ आसन पर बैठा था। और उनकी शंकाओं का समाधान कर रहा था।

मंत्री अपलक उस तेजस्वी ज्ञानी बालक की ओर देखता रह गया। जिसका मुख दिव्य ज्ञान की ज्योति से चमक रहा था।

मंत्री को अपलक अपनी ओर देखते हुए देखकर शंकर मुस्काया और उसे समीप बिछे हुए आसन पर बैठने का संकेत किया।

प्रधान मंत्री ने झुककर बाल ब्रह्मचारी के चरण छू लिए और नम्रता से कहा, 'महात्मना हमारे महाराजा ने आपके लिए हाथी उपहार में भेजा है और आपको दरबार में आने का नियंत्रण दिया है।'

'मंत्रीजी! भिक्षा ही जिनकी जीविका है, मृगचर्म वस्त्र हैं, संध्या बंदन, अग्निहोत्र....वेदाध्ययन तथा गुरुसेवा और लोक-कल्याण ही जिनका नित्यव्रत है उन्हें हाथी से क्या काम, ब्राह्मणादि चतुष्ट्य अपने-अपने धर्म का पालन कर धार्मिक

जीवन व्यतीत कर सकें, उसकी व्यवस्था करना राजा का कर्त्तव्य है। ऐसे प्रलोभन देकर उन्हें विषयों में आकृष्ट करना राजा का कर्त्तव्य नहीं।'

मुस्कराते हुए बाल ब्रह्मचारी ने हाथी को मंत्री से वापस ले जाने के लिए कहा।

समीप बैठे हुए श्रद्धालु भक्त, पंडित बालशंकर की ज्ञान योग्यता भरी बातें सुनकर अपलक उसकी ओर देखते रह गए।

कई मनुष्य जो धन और ऐश्वर्य के लोभी थे। मन-ही-मन सोचने लगे, यह बाल ब्रह्मचारी अभी इन वस्तुओं का मूल्य नहीं जानता।

राजा राजशेखर संभव है इसके इस कार्य से रुष्ट हो जाए, उनका उपहार वापिस भेज रहा है। और दरबार में जाने का निमंत्रण भी अस्वीकार कर रहा है।

प्रधान मंत्री उस बाल ब्रह्मचारी तेजस्वी बालक की प्रतिभा व ज्ञान पर पहले से ही मुग्ध थे—उसका ऐसा ज्ञान भरा निर्भयता का उत्तर सुनकर श्रद्धा से उसकी ओर देखता रह गया।

राजाज्ञा और ऐश्वर्य के साधनों के लिए संसारी मनुष्य तरसते हैं। यह बालक उन्हें ठुकरा रहा है, सात-आठ वर्ष के लगभग इसकी आयु होगी। पर कितना ज्ञानी-त्यागी है। राजा के रुष्ट होने का भी इसे भय नहीं! ज्ञान के साथ....निर्भयता, साहस भी इसमें अपूर्व है।

मन-ही-मन सोचते हुए बालशंकर के ज्ञान प्रतिभा की प्रशंसा मन में करते हुए....प्रधान मंत्री अपने राजा राजशेखर के समीप जा पहुंचे।

और जो कुछ बाल ब्रह्मचारी ने कहा था, राजा राजशेखर को बता दिया।

उन्होंने कहा, 'महाराज! शंकर बालब्रह्मचारी सात वर्ष की आयु के लगभग होगा....पर उसका ज्ञान प्रतिभा प्रौढ़ विद्वानों जैसी है....उसके तेजस्वी मुख की अनूठी शोभा को देखते हुए आंखें तृप्त ही नहीं होतीं, इतना त्यागी-ज्ञानी बालक मैंने अभी तक इस जीवन में नही देखा। उसकी प्रतिभा का बड़े-बड़े ज्ञानी विद्वान लोहा मान रहे हैं महाराजा साहब।'

'तुमने हमारे हृदय में भी उस बाल ब्रह्मचारी को देखने की उत्सुकता उत्पन्न कर दी मंत्रीजी, हम भी उस ज्ञानी-त्यागी बाल ब्रह्मचारी शंकर के दर्शन करने जाएंगे।

प्रधान मंत्री तो यह सोच रहा था बाल ब्रह्मचारी ने राजा का उपहार वापस कर दिया, उनका निमंत्रण भी स्वीकार नहीं किया इस कारण राजा अवश्य क्रोध करेंगे। पर राजा तो बाल ब्रह्मचारी शंकर के दर्शनों की तैयारी कर रहे हैं, यह देखकर मंत्री हर्ष से भर गया और अपने कर्मचारियों से बाल ब्रह्मचारी के दर्शनों के लिए चलने की तैयारी कराने लगा।

राजा राजशेखर अपने मंत्री व दरबारी कर्मचारियों सहित बाल-ब्रह्मचारी शंकर के निवास-स्थान पर पहुंच गया।

शंकर मृगचर्म पहने था। गले में यज्ञोपवीत शोभा दे रहा था। मुख पर अनूठा ज्ञान प्रतिभा दिव्यज्ञान का तेज चमक रहा था।

राजा राजशेखर उस ज्ञानी प्रतिभाशाली बालक की ओर देखता रह गया।

उसके चारों ओर श्रद्धालु ब्राह्मण बैठे हुए शास्त्रों का अध्ययन कर रहे थे।

राजा राजशेखर ने झुककर बालशंकर को प्रणाम किया। शंकर ने आदर से राजा का स्वागत करते हुए आसन पर बिठाया।

केरल के राजा राजशेखर उस महान् तेजस्वी प्रतिभाशाली बालक से अधिक ही प्रभावित हुए। उन्होंने शंकर की परीक्षा लेने को कई प्रश्न किए जिनके उत्तर बालशंकर ने इतनी विद्वत्तापूर्ण दिये, राजा आश्चर्य से देखता रह गया।

यह बालक वास्तव में देवशक्ति-सम्पन्न है, राजा को यह ज्ञात हो गया।

राजा राजशेखर स्वयं भी धार्मिक प्रवृत्ति के थे, शास्त्रों का अध्ययन भी किया था। विद्याज्ञान प्रेमी थे।

उन्होंने बालशंकर से शास्त्रों के विषय में भी चर्चा की और अपनी शंकाओं का समाधान उनसे कराया।

बाल ब्रह्मचारी शंकर ने युक्ति प्रणाम देकर, उनकी शंकाओं का इस प्रकार समाधान किया कि राजा राजशेखर उनकी योग्यता ज्ञान पर मुग्ध हो गए।

और भेंट स्वरूप कई स्वर्ण मुद्राएं बालशंकर के चरणों में अर्पित कीं।

शंकर ने मुस्कराते हुए राजा से कहा, 'राजन! मैं ब्राह्मण व ब्रह्मचारी हूं, स्वर्ण मुद्राओं का क्या करूंगा?'

'मेरे और मेरी माता के लिए निर्वाह योग्य सम्पत्ति हमारे पास है। आपकी कृपा से हमें कोई अभाव नहीं है।'

राजा राजशेखर उस बाल ब्रह्मचारी की त्याग-ज्ञान से भरी बातें सुनकर आश्चर्य में भर गए। उन्होंने बालशंकर के आगे हाथ जोड़ते हुए कहा, 'हे पूजनीय ब्रह्मचारी जी ऐसी ज्ञान भरी बातें आप जैसे त्यागी के मुख से शोभा देती हैं....आपके दर्शन कर मैं धन्य हो गया....पर आपको अर्पित की वस्तु मैं नहीं ले सकता....आप योग्य पात्रों को इसे दे दीजिए।'

'आप देश के राजा हैं', बालशंकर ने मुस्कराकर राजा की ओर देखते हुए कहा, 'योग्य-अयोग्य पात्रों का ज्ञान, मुझ जैसे शास्त्रसेवी ब्रह्मचारी से आपको अधिक होगा।'

'विद्यादान ब्राह्मण का धर्म है, और धनदान राजा का कर्म है। आप ही इस धन को योग्य पात्रों में बांट दीजिए।'

राजा राजशेखर ने युक्तिपूर्ण तर्क के आगे बाल ब्रह्मचारी की बात मान ली और योग्य पंडितों, ब्राह्मणों में उस धन को वितरण करने की आज्ञा दे दी।

राजा राजशेखर बालशंकर की विद्वत्ता से पहले ही प्रभावित हो चुके थे।

उन्होंने यह जान लिया, बाल ब्रह्मचारी शंकर सर्व शास्त्र विशारद पंडित ही नहीं, बल्कि देव शक्तिसम्पन्न महामानव है।

बालशंकर के प्रति उनका आकर्षण अधिक ही बढ़ गया। अब तो अवकाश के समय राजा राजशेखर शंकर के समीप सत्संग के लिए आने लगे।

राजा राजशेखर ने कई नाटक लिखे थे 'बालभारत', 'बालरामायण' आदि संस्कृत नाटक उन्होंने बालशंकर को सुनाकर, बालशंकर से उनमें संशोधन भी कराया।

राजा राजशेखर ने सहर्ष उनमें संशोधन किया। बालशंकर को इतना राज-सम्मान मिला....प्रसिद्धि मिली, पर उनमें गर्व नाम को भी नहीं था।

उनकी विद्वत्ता गुण प्रतिभा की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल चुकी थी। दूर-दूर से भक्त श्रद्धालु उनके दर्शन व सत्संग को आने लगे। अनेक विद्वान ब्राह्मण बालशंकर से शास्त्र व्याख्यान सुनने के लिए एकत्र होने लगे।

# 4

बालशंकर प्रत्येक समय अपने इष्ट के ध्यान में ही मग्न रहते थे।

एक समय कई विद्वान ब्राह्मण भ्रमण करते हुए शंकर के निवास-स्थान पर आए।

शंकर ने उनका भली प्रकार अतिथि-सत्कार किया। विशिष्टा ने अपने हाथ से बनाकर उन्हें भोजन कराया।

शंकर का शास्त्र ज्ञान देखकर उन्होंने शंकर से शास्त्रों पर वार्तालाप किए। शंकर की विद्वत्ता, प्रतिभा, ज्ञान से ब्राह्मण पंडित अधिक ही प्रभावित हुए।

उन्होंने विशिष्टा से शंकर की जन्मपत्री देखने के लिए मांगी।

जन्मपत्री देखकर ब्राह्मण पंडित आश्चर्य से शंकर की ओर देखते रह गए।

जन्मलग्न में तो अवतार योग है और यह बालक शंकर परिव्राजक बनेगा।

पंडितों के मुख से शंकर के परिव्राजक बनने के विषय में सुनकर विशिष्टा दुखी हो गयी। उससे अधिक दुःख विशिष्टा को तब हुआ जब पंडितों ने शंकर की थोड़ी आयु बताई।

शंकर की आयु बहुत कम है, देवइच्छा से ही इसकी आयु बढ़ सकती है।

पंडित चले गये, विशिष्टा सोचती रह गई, इतना विद्वान, गुणी बालक और इसकी आयु इतनी कम क्यों रखी मेरे इष्ट, कोई अनुष्ठान, व्रत-पूजा ऐसी हो जिसके करने से मेरे लाल की आयु बढ़ जाए।

शंकर ने देखा, मां उदास बैठी है....उसने मुस्कराकर मां से कहा, 'मां, चिंता क्यों करती है, संभव है संन्यासी बनने से आयु बढ़ जाए, तू मुझे संन्यासी बनने की आज्ञा दे दे।'

'संन्यासी बनने की आज्ञा तुझे कैसे दे दूं शंकर, तेरी आयु अभी आठ वर्ष की

है। तू मुझसे संन्यासी बनने की बात न किया कर, मेरे लाल मुझे बहुत दुख होता है।'

'अच्छा मां, जब तू अपने आप ही मुझे संन्यासी बनने की आज्ञा देगी, तभी मैं संन्यासी बनूंगा,' शंकर ने मुस्कराते हुए कहा।

'अब तू आराम कर कल प्रातःकाल स्नान करने आलवाई नदी की ओर चलेंगे।'

विशिष्टा अपना आवश्यक कार्य निपटाकर सो गई और प्रातःकाल जब मंदिर से घंटे-घड़ियाल बजने का शब्द सुनाई दिया तब शीघ्रता से उठकर शंकर का हाथ पकड़कर आलवाई नदी में स्नान करने के लिए चल पड़ी।

नदी में मछेरे अपनी छोटी-छोटी नावें लिए मछलियां पकड़ रहे थे। कई श्रद्धालुभक्त स्नान कर सूर्य को जल चढ़ा रहे थे।

कई मनुष्य तैरकर ही अपना मनोरंजन कर रहे थे।

शंकर भी अपनी मां के साथ नदी में स्नान करने लगा।

विशिष्टा स्नान करके वस्त्र बदलने तट पर आ गई।

उसी समय एक मगरमच्छ ने शंकर का पांव पकड़ लिया और जल के अंदर खींचने लगा।

शंकर जोर से चिल्लाया, 'बचाओ! मां बचाओ! मगरमच्छ ने मेरी टांग पकड़ ली है मुझे जल के अंदर खींचे लिए जा रहा है।'

कई मछेरे शंकर की पुकार सुनकर उस ओर दौड़े।

विशिष्टा तुरंत ही नदी में कूद गई, किसी प्रकार शंकर को मगरभच्छ से छुड़ा लें। पर मगर तो शोर सुनकर और भी बलपूर्वक शंकर का पांव पकड़कर जल के अंदर खींचने लगा।

शंकर ने जोर से फिर मां को पुकारा, 'मां, मां! मगर मुझे गहरे जल में खींचे लिए जा रहा है। अब मेरे प्राण बचने कठिन हैं। मेरा अंत समय है, मेरी अंतिम इच्छा संन्यासी बनने की थी, अंत समय तो तू मुझे संन्यासी बनने की आज्ञा दे दे, ताकि मेरी मुक्ति हो जाए।'

विशिष्टा नदी के जल में हाथ-पांव मारकर शंकर के समीप पहुंचने का यत्न कर रही थी।

शंकर के शब्द उसके कानों में सुनाई दिये, 'मां! मुझे अंत समय तो संन्यासी बनने की आज्ञा दे दे', उसने तुरंत ही उत्तर दिया, बेटा! मैं तुझे संन्यासी बनने की आज्ञा देती हूं', कहते हुए विशिष्टा बेसुध हो गई।

उसी समय कई मछेरे जल में कूद पड़े और विशिष्टा को जल से बाहर निकाल लाए।

कई मछेरों ने मगरमच्छ को पकड़ने के लिए नदी में जाल डाला और शंकर का पांव छुड़ाने का यत्न करने लगे।

शोर से घबराकर मगरमच्छ ने शंकर का पांव छोड़ दिया। मछेरों ने मगरमच्छ को जाल में फंसा लिया और शंकर को नदी-जल से बाहर ले आए।

शंकर के पांव से रुधिर बह रहा था, वह बेसुध था। कई सहृदय मानव एक वैद्य को लेकर आए वह समीप ही रहता था।

वैद्य ने आकर शंकर के पाँव में औषधि लगाई, लगातार शंकर के पाँव से रुधिर बह रहा था।

औषधि से शंकर के पाँव का रुधिर बहना बंद हुआ, वैद्यजी ने विशिष्टा को औषधि दी। जब वह सुध में आई शंकर को सुरक्षित देखकर हर्ष से उससे चिपट गई।

'केशव भगवान ने मेरे लाल की रक्षा कर दी। मैं तो निराश हो चुकी थी', प्यार से शंकर के सिर पर हाथ फेरते हुए विशिष्टा मुस्कराई। 'तेरा जीवन बच गया मेरे लाल, मुझे कितनी प्रसन्नता हुई बता नहीं सकती।'

'अब घर चलकर विश्राम करो', शंकर के हितैषी विशिष्टा और शंकर को उनके निवास-स्थान पर पहुंचा गए।

शंकर को विशिष्टा ने छाती से चिपटाते हुए कहा, 'कोई शुभ कर्म ही इस समय आगे आया लाल....मैं तो निराश हो चुकी थी।'

'अब मैं घर में नहीं रह सकता मां', शंकर ने विशिष्टा की ओर देखते हुए कहा। शास्त्रों में लिखा है, 'संन्यासी का घर में रहना वर्जित है।'

'अभी तक तो तुम बालक हो मेरे लाल।' विशिष्टा ने उदासी से कहा, 'घर छोड़कर कैसे रहोगे, तुम्हारे बिना मैं भी तो जीवित नहीं रह सकती।'

'आपकी आज्ञा लेकर ही तो मैंने संन्यास लेने का निर्णय लिया है मां', शंकर ने मुस्कराते हुए कहा। 'आपके कथन को मैं कैसे मिथ्या कर सकता हूं। अब तो मुझे घर छोड़ना ही पड़ेगा।'

'क्या कह रहा है बेटे', विशिष्टा व्याकुल हो गई, उदास होकर बोली, 'छोटा-सा बालक संन्यासी बनेगा।'

'मुझे कौन तीर्थयात्रा कराएगा, कौन मेरी सेवा-टहल करेगा, सोच तो बेटे, मरने पर अंतिम संस्कार कौन करेगा?'

मां को इस प्रकार दुखी, उदास देखकर शंकर ने मन-ही-मन इष्ट से प्रार्थना की।

भगवान! मेरी मां को आत्मबल दो, जिससे वह सहर्ष हृदय से मुझे संन्यासी बनने की आज्ञा दे दे।

फिर अपनी मां के आंसू पोंछते हुए शंकर ने मां से कहा, 'मां! जिस भगवान ने मुझे बचाया वही तुम्हारी भी रक्षा करेगा।'

हमारे सगोत्री यहां रहते हैं उन्हें धन-सम्पत्ति सौंपकर आपके निर्वाह की व्यवस्था कराए देता हूं।

आप घबराएं नहीं, अंतिम समय जब भी आप मुझे स्मरण करेंगी। मैं आपके पास उपस्थित हो जाऊंगा।

आपकी शपथ खाकर कहता हूं....आप धीरज रखें, हर्ष से मुझे आशीर्वाद दें ....जिससे मेरा संन्यास ग्रहण सार्थक हो।

विशिष्टा को ऐसा अनुभव हुआ जैसे उसमें अनूठी शक्ति आ गई हो।

उस समय उसे अपने पति शिवगुरु की शंकर के प्रति की गई भविष्यवाणी याद आ गई। यह बालक अवतार अंश है, धर्म का पुनरुद्धार करने को इसने जन्म लिया है। विशिष्टा ने अपने इष्ट का ध्यान करके मन को शांत किया और शंकर को छाती से लगाकर कहा, 'शंकर! मैं तुझे आशीर्वाद देती हूं तेरा मनोरथ सफल हो।'

'मां, मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी, तुम मेरे कार्य में बाधा नहीं बनोगी', शंकर ने मुस्कराकर विशिष्टा की ओर देखते हुए कहा।

'कल मैं शास्त्र विधि से संन्यास ग्रहण करके ग्राम से चला जाऊंगा, आप मेरे लिए इसका आयोजन कर दीजिए।'

'अब तो विश्राम कर मेरे लाल, कल को सब प्रबंध हो जाएगा।' आंखों में आए आंसुओं को पोंछकर, विशिष्टा ने शंकर का बिस्तरा बिछाकर उसे सुला दिया।

और स्वयं चारपाई बिछाकर लेट गई। कल शंकर चला जाएगा, संन्यासी बन जाएगा। फिर मेरे घर भी नहीं ठहरेगा।

किस प्रकार मैं अपना समय व्यतीत करूंगी। एक बेचारी पुरानी दासी है वही मेरे पास रहती है।

और कोई मेरा सहारा नहीं, सोचते-सोचते करवट बदलते-बदलते विशिष्टा ने सारी रात व्यतीत कर दी।

# 5

सूर्य अपनी सुनहरी किरणों का जाल फैलाता हुआ, पृथ्वी तल का अंधकार दूर करने के लिए पूर्व दिशा से झांक रहा था।

चिड़ियों ने उसके स्वागत में चहचहाना आरम्भ कर दिया। चिड़ियों के चहचहाने का शब्द सुनकर, विशिष्टा चौंककर चारपाई से उठकर खड़ी हो गई।

अरे दिन निकल आया, विशिष्टा ने चारों ओर देखते हुए लम्बी सांस ली। मेरी अभी तक आंखें ही नहीं खुलीं, पर ज्ञान-आंखें तो कल ही खुल चुकी थीं।

अब मेरी आंखों का तारा, घर का उजाला मेरे से बिछुड़कर चला जाएगा, मैं उसकी स्मृति में इन सूनी दीवारों को देखती रहूंगी।

'क्या सोच रही हो मां, देखो दिन निकल आया', शंकर ने मां के पांव छूकर मस्तक से लगाते हुए कहा, 'मेरी तैयारी कर दी।'

'मेरा दिन तो अब छिपने जा रहा है लाल, मैंने रात्रि को ही तेरी सब तैयारी कर दी थी, गेरुआ वस्त्र कोपीन, दण्ड, कमंडल सारी आवश्यक वस्तुएं रात्रि को ही लाकर रख दी थीं', विशिष्टा ने लम्बी सांस लेते हुए कहा, 'तेरी इच्छा तो पूरी करनी पड़ेगी मेरे लाल, अब हृदय को कैसे समझाऊं।'

'मां! अब तक शंकर तेरा लाल था।' शंकर ने प्यार से मां के आंसू पोंछते हुए कहा, 'आज से....।'

'आज से शंकर सभी का लाल बन जाएगा', बूढ़ी पुरानी सेविका ने बीच में ही बात काटते हुए कहा।

'तुम तो शंकर सभी के लाल बन जाओगे, पर मेरा लाल शंकर अब मुझे इस रूप में नहीं मिलेगा।' कहते हुए बूढ़ी सेविका की आंखों से आंसू टपकने लगे।

'तुम दुखी न हो धाय मां, मुझे जब कभी तुम याद करोगी आ जाऊंगा, चाहे

कहीं भी रहूं। अपने हाथ से बूढ़ी सेविका के आंसू पोंछते हुए शंकर ने कहा, 'मां की सेवा उसी प्रकार करना, जिस प्रकार अब तक करती आ रही हो, इन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो।'

'पत्थर के समान मुझे बनना पड़ेगा शंकर....फिर कष्ट कैसे होगा?'

'वो पड़ेसी सगोत्री ब्राह्मण आ गए हैं', सेविका ने विशिष्टा की ओर देखते हुए कहा, 'वह आपसे मिलना चाहते हैं।'

'शंकर अब हमें तुम्हारे भरोसे छोड़कर जा रहा है पंडितजी, हमने उसके संन्यासी बनने का उसके कहे अनुसार सारा आयोजन कर दिया।'

विशिष्टा ने संकेत से सभी वस्तुएं दिखाते हुए कहा, 'देख लो सभी वस्तुएं आ गई ना.... ।'

'शंकर की मां, शंकर जैसे सपूत की मां हो, तुम्हें गर्व करना चाहिए', सगोत्री पंडित ने विशिष्टा को धीरज बंधाते हुए कहा, 'पहले तुम शंकर की ही मां थीं, अब तो तुम हम सबकी मां हो, हम तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने देंगे।'

शंकर सबकी बातें सुनते हुए अपनी संन्यासी बनने की तैयारी कर रहा था।

मुंडन करवाकर शंकर ने स्नान किया....यज्ञोपवीत को नदी में बहा दिया।

फिर विरजा होम किया, संन्यासी बनने का संकल्प तभी ले चुका था, जब नदी में मगरमच्छ ने पांव पकड़ा था।

अब अपने आप ही शास्त्र विधि अनुसार संन्यासी बनने के नियमानुसार कार्य किए। फिर गेरुवा वस्त्र धारण कर मां के चरणों में मस्तक झुका दिया। आंखों में आए आंसुओं को पोंछते हुए विशिष्टा ने शंकर को आशीर्वाद दिया।

बालक, युवक, वृद्ध सभी ग्रामवासी उस आठ वर्ष के बालसंन्यासी को अपलक देख रहे थे।

शंकर संन्यास धारण कर अपने कुल देवता के दर्शन करने चल पड़ा। उसके पीछे विशिष्टा, उसकी वृद्धा सेविका और ग्रामवासी जा रहे थे।

सूर्य की तेज किरणें चारों ओर फैलकर अंधकार दूर कर रही थीं।

शंकर अपने हिंदू धर्म में घुसी हुई कुरीतियों, धर्म के नाम पर अंधकार रूपी पाखंड को मिटाने के लिए संन्यास द्वारा तेज ज्ञान ज्योति लेने जा रहे थे।

उसके मन में प्रेम का सागर-सा लहरा रहा था।

कुल देवता का मंदिर जीर्ण अवस्था में था। आलवाई नदी की गति के परिवर्तन के कारण, कुल देवता केशव देव का प्राचीन मंदिर और भी खंडहर हो गया था।

अभी तक उस मंदिर के पुनः निर्माण की व्यवस्था नहीं हो सकी थी।

नदी के प्रवाह-परिवर्तन के कारण मंदिर के पुनः निर्माण का विचार श्रद्धालुओं ने छोड़ दिया था।

अब नदी का जल मंदिर की प्राचीरों से टकरा-टकराकर उसकी नींव को और भी खोखली कर रहा था।

बालसंन्यासी शंकर अपने कुल देवता की पूजा करने आए हैं। यह मंदिर के पुजारियों ने सुना और तब वहां पूजा के लिए व्यवस्था कर दी।

कई श्रद्धालु भक्त शंकर के पीछे चले जा रहे थे। शंकर अपने कुल देवना केशव के मंदिर में पहुंचे और आंखें बंद करके अपने कुल देवता की अपने बनाए छंदों से स्तुति करने लगे।

श्रद्धालु भक्तों की भीड़ एक ओर बैठकर बालसंन्यासी की पूजा-अर्चना देखने लगी।

शंकर आंखें मींचे कुल 'देवता की पूजा में मग्न थे अचानक ही उन्हें देववाणी सुनाई दी, 'मंदिर और मंदिर में केशव विग्रह....निरापद नहीं है।'

आलवाई नदी का प्रवाह मंदिर की ओर बढ़ता जा रहा है।

शंकर ने देववाणी सुनी, आंखें खोलकर उसने अपने कुलदेवता केशवदेव के विग्रह (प्रतिमा) की ओर देखा, मूकभाषा में वह भी यही संदेश देते प्रतीत हो रहे थे।

शंकर ने निरापद स्थान पर केशव विग्रह को ले जाने का निर्णय कर लिया।

पूजा-अर्चना जब समाप्त हो गई, तब शंकर ने अपने कुल देवता केशव की प्रतिमा को उठाकर छाती से लगा लिया।

जब वे बाहर की ओर चल दिए, श्रद्धालु भक्तों की भीड़ भी केशव भगवान की जय! जय!! बोलती हुई, उनके साथ-साथ चली।

शंकर ने एक खुले और पवित्र स्थान में केशव विग्रह को स्थापित कर दिया।

श्रद्धालु भक्त हर्ष में भर उठे और जोर-जोर से केशव भगवान की जय के साथ, संन्यासी शंकर की भी जय बोलने लगे।

'बंधुओ! खाली जय बोलने से तो कार्य नहीं बनता', शंकर ने मुस्कराते हुए कहा।

'यदि केशव भगवान के प्रति श्रद्धा है, तो यहां मंदिर का निर्माण करवाकर केशव भगवान का विग्रह उसमें स्थापित करवा देना।'

'हम अवश्य मंदिर का निर्माण कराएंगे और उसमें केशव भगवान के विग्रह की स्थापना करेंगे।'

'मुझे ऐसी ही आशा का विश्वास है....आप यहां अवश्य सुंदर मंदिर बनवाएंगे।'

'बाल संन्यासी शंकर के आदेश अनुसार हम अवश्य सुंदर मंदिर का निर्माण करवाकर केशव भगवान की प्रतिमा स्थापित करेंगे।'

'केशव भगवान की जय!' कई श्रद्धालु भक्तों ने जोर से जय घोष करते हुए भीड़ की ओर संकेत कर कहा।

'बाल संन्यासी शंकर की भी जय बोलो बंधुओ, जिसने हमें सुंदर मंदिर के निर्माण की प्रेरणा देकर हमारे कुल देवता केशव भगवान के मंदिर का पुनः निर्माण कराने का संकल्प कराया।'

'जय! बाल संन्यासी शंकर की जय! बोलो केशव भगवान की जय! बालशंकर की जय! बालसंन्यासी की जय।

वायु के झोंकों से जयघोष की ध्वनि चारों ओर गूंज उठी।

# 6

संन्यासी बालशंकर अपने ग्राम से बाहर की ओर बढ़े चले जा रहे थे।

उनके पीछे-पीछे ग्रामवासी और विशिष्टा चल रहे थे।

सभी सोच रहे थे, शंकर कहां जा रहे हैं? उसका निर्णय शंकर पहले ही ले चुके थे।

जिस समय बाल ब्रह्मचारी शंकर अपने गुरु से शिक्षा ले रहे थे। उस समय शंकर ने अपने गुरु से सुना था।

पतंजलि भगवान, गोबिंदपाद नाम से नर्मदा नदी के किनारे, एक गुफा में सहस्र वर्ष से समाधि अवस्था में हैं।

गोबिंदपाद की अद्वैत ब्रह्मविद्या में दृढ़ आस्था थी। गौड़पाद ने अपना प्रधान गोबिंदपाद को ही बनाया था।

महायोगी अद्वैत ब्रह्मविद्या में विद्वान, गोबिंदपाद की कथा अपने गुरु से सुनकर शंकर ने मन-ही-मन उन्हें गुरु मान लिया था।

और उनके चरणों में बैठकर उनसे अद्वैत ज्ञान की शिक्षा लेने का शंकर ने निर्णय भी कर लिया था। वह उसी समय से शुभ अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे।

अब वह शुभ घड़ी आ गई थी। ग्राम-सीमा को पार करके, संन्यासी बालशंकर आगे की ओर बढ़ गए।

विशिष्टा ने आंखों में आंसू भरकर फिर एक बार शंकर से ग्राम में ठहरने का अनुरोध किया।

शंकर ने मां को प्रणाम करते हुए दृढ़ता से कहा, 'मां! अब तुम वापिस जाओ, यह तो तुम भी जानती हो, संन्यासी ग्राम में नहीं रह सकता।' यह कहते हुए शंकर लम्बे-लम्बे डग भरते हुए नर्मदा के जंगलों की ओर चल पड़ा।

जब तक शंकर जाते हुए दिखाई देता रहा विशिष्टा खड़ी हुई उसी ओर देखती रही।

जब वह दृष्टि से ओझल हो गया तब वह ठंडी सांस भरते हुए बेसुध होकर गिर पड़ी।

शंकर लम्बे-लम्बे डग भरते हुए आगे-ही-आगे बढ़ा चला जा रहा था। उसे यह भी ज्ञात नहीं था, नर्मदा कहां है, कौन मार्ग बताएगा—उसने यह अवश्य सुना था, नर्मदा उत्तर में है।

संसार के सुखों को ठुकराकर, मां के स्नेह आंचल को झटककर, त्यागी विरक्त संन्यासी, आठ वर्ष का बालक, घने जंगलों में अकेला चला जा रहा था।

तत्वज्ञान की प्राप्ति का उद्देश्य उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा दे रहे थे।

मुंडित मस्तक गेरुए वस्त्रधारी दंड-कमंडलु लिए, जब वह बालसंन्यासी, किसी ग्राम के समीप से निकलता, तब उसे देखकर महिलाओं की आंखों में आंसू छलछला आते, 'कितना छोटा-सा बालक है और कितना कठिन संन्यास व्रत धारण किया है।'

वह ममता करूणा भरी दृष्टि से शंकर की ओर देखती रहतीं और उसके भिक्षा-पात्र में कुछ भोजन-सामग्री डाल देतीं।

संन्यासी बालशंकर, सिर झुकाए हुए आगे बढ़ जाता।

प्रातःकाल होते ही वह अपने नित्यकर्मों से निबटकर आगे की ओर चल देता।

दोपहर के समय किसी मंदिर से या ग्राम से भिक्षा लेकर थोड़ी देर वृक्षों की छाया में विश्राम करता, और फिर आगे बढ़ जाता। रात्रि में यदि कोई देवालय समीप दिखाई दे जाता, तब वहां विश्राम कर लेता। या वृक्षों की छाया में ही रात्रि व्यतीत कर देता।

गुरु मुख से सुने हुए महायोगी गोबिंदपाद से मिलने की अभिलाषा उसे दुर्गम पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा दे रही थी।

भयंकर जंगल जिनमें हिंसक जीव-जंतुओं का वास था उसका मार्ग न रोक सके।

वह निर्भयता से वहां रात्रि व्यतीत कर देता और फिर वहां से आगे बढ़ जाता।

मार्ग में कांटों से भरे पथ, ऊंचे-ऊचे पर्वत, गहरी कंदराएं, शंकर का मार्ग रोकतीं, पर साहसी निर्भयी शंकर, सब बाधाओं को पार कर आगे-ही-आगे बढ़ता चला जा रहा था।

आगे बढ़ने से उसे कोई बाधा न रोक सकी। कंटीली झाड़ियों से भरा पथ मखमली घास का बिछौना लगता था।

ऊंचे-ऊंचे पर्वत उसे ऊंचाइयों पर आगे बढ़ने की प्रेरणा देते। जंगली जीव-जंतु उस अपने सखा से लगते गुनगुनाता, अपने इष्ट के ध्यान में मग्न, श्लोक रचता, शंकर आगे-ही-आगे बढ़ता जा रहा था।

यदि मार्ग में कोई पथिक मिल जाता, तो वह योगी गोबिंदपाद के विषय में पूछता, महानुभाव क्या तुम योगी गोबिंदपाद के विषय में जानते हो वह योगी किस स्थान में रहते हैं।

पथिक उस छोटे से बालसंन्यासी को आश्चर्य से देखता और नकारात्मक उत्तर देकर आगे बढ़ जाता।

बालसंन्यासी शंकर ने साहस नहीं हारा। अपने गुरु योगी गोबिंदपाद की खोज में लगातार आगे-ही-आगे बढ़ता रहा।

शंकर को इसी प्रकार चलते-चलते अपने गुरु की खोज करते-करते, दो माह व्यतीत हो गए।

उसके पांव में छाले पड़ गए। यात्रा के कष्टों ने उसके सुंदर मुख पर दुर्बलता के चिह्न प्रकट कर दिए।

पर दिव्य ज्ञान की ज्योति, उसके मुख पर और भी झलकने लगी।

दो माह चलते-चलते व्यतीत हो चुके थे, पर बालसंन्यासी शंकर के उत्साह में न्यूनता नहीं आई थी।

नर्मदा तट पर चलते-चलते वह ओंकारनाथ पहुंच गए।

वहां पर कई श्रद्धालु भक्तों से शंकर ने योगी गोबिंदपाद के विषय में पूछा, 'श्रीमान्! यहां कोई योगी समाधि अवस्था में हैं।'

'हां, एक दूर गुफा में महायोगी अधिक समय से समाधिस्थ बैठे हुए हैं!' भक्त ने शंकर की ओर देखते हुए कहा, 'सम्भव है आप उन्हीं के विषय में पूछ रहे हों।'

'धन्यवाद महानुभाव, मैं उन्हीं के विषय में पूछ रहा था।' कहते हुए शंकर उस गुफा की ओर चल पड़े।

उनका हृदय अनूठे आनंद से भर गया....यात्रा की थकान भूल गए। मुखकमल पर अनूठी शोभा छा गई।

वह थोड़ी दूर ही गए थे, तभी उन्हें एक गुफा के समीप कई वृद्ध संन्यासी बैठे हुए दिखाई दिए।

संन्यासी शंकर ने झुककर उन वृद्ध संन्यासियों को प्रणाम किया और नम्रता से पूछा, 'महात्मन्! क्या योगी गोबिंदपाद यहां ही समाधिस्थ हैं।'

'हां बालसंन्यासी, गुरु गोबिंदपाद सामने वाली गुफा में समाधि में लीन हैं।'

वृद्ध संन्यासी ने आश्चर्य से उस बालसंन्यासी शंकर की ओर देखते हुए, उससे पूछा, 'बालक, तुम कहां से आए और इस छोटी आयु में ही यह संन्यासी वेश क्यों धारण किया?'

'महात्मन! मैं केरल देश से आ रहा हूं।

'क्या कहा केरल देश से, इतनी दूर से अकेले आ रहे हो, बालसंन्यासी अपना परिचय दोगे।' आश्चर्य से समीप बैठे दूसरे वृद्ध संन्यासी ने शंकर की ओर देखते हुए कहा, 'छोटी आयु में ही यह संन्यास वेश धारण कर लिया, कुछ शास्त्र ज्ञान भी है।'

'अब तो मैं योगी गोबिंदपाद से दीक्षा लेने आया हूं—महाभारत, रामायण आदि धार्मिक ग्रंथ मुझे कंठस्थ हैं। शास्त्रों के विषय में आप जो चाहो पूछ सकते हो', शंकर ने मुस्कराते हुए कहा, 'आप जैसे विद्वान संन्यासियों के आगे मैं योग्यता क्या बताऊं।'

संन्यासियों ने बारी-बारी से शंकर से शास्त्रों के विषय में पूछा। शंकर ने युक्तिपूर्ण उत्तर दिए।

संन्यासी उस छोटे-से बालसंन्यासी की प्रतिभा ज्ञान से अधिक प्रभावित हुए। इतनी छोटी आयु के बालक में इतना ज्ञान प्रतिभा, अवश्य यह महान आत्मा है।

उन्होंने शंकर की ओर देखते हुए कहा, 'बालसंन्यासी वह जो सामने गुफा दिखाई दे रही है, योगी गोबिंदपाद वहां दीर्घकाल से समाधि-अवस्था में हैं। कब से उन्होंने समाधि लगाई, कोई नहीं जानता, उनकी समाधि खुलने की प्रतीक्षा में हम यहां बैठे हुए हैं।'

'यहां बैठे-बैठे उनकी प्रतीक्षा करते-करते हमारी यह अवस्था हो गई', वृद्ध संन्यासी ने लम्बी सांस लेते हुए कहा, 'हमें अभी तक योगी जी के दर्शन सत्संग का लाभ नहीं हुआ।'

'तुम इतनी दूर से योगी गोबिंदपाद के दर्शनों को आए हो', बहुत बूढ़े संन्यासी ने बालसंन्यासी शंकर की ओर देखते हुए कहा।

'तुम्हारा साहस धन्य है और गुरु-भक्ति भी सराहनीय है। हम तो उनकी प्रतीक्षा करते-करते इस अवस्था में पहुंच चुके हैं। न जाने हमारे भाग्य में उनके चरण-स्पर्श करने, सत्संग करने का योग लिखा है या नहीं।'

'महान योगीजी जिस स्थान में समाधि लगाए बैठे हैं, मुझे वही दर्शन करवा दीजिए महात्मन्', शंकर ने नम्रता से झुकते हुए कहा 'इसमें आपको कोई आपत्ति तो नहीं होगी।'

'चलिए बालसंन्यासी जी, मैं आपको वहीं ले चलता हूं, आम जैसे श्रद्धालु ज्ञानी विद्वान् को....योगी गोबिंदपाद के समाधि अवस्था में दर्शन कराने में हमें कोई आपत्ति नहीं।

बालसंन्यासी शंकर को अपने साथ आने का संकेत करते हुए वृद्ध संन्यासी ने गुफा की ओर चलते हुए कहा, 'गुफा में अधिक अंधकार है....एक दीपक तुम्हें देता हूं उसे प्रज्वलित करके ले आओ, तभी गुफा में उनके दर्शन हो सकेंगे।'

शंकर ने दीपक प्रज्वलित करके हाथ में ले लिया और धीरे-धीरे उस अंधकार भरी गुफा के अंदर की ओर चला।

उस धीमे दीए की प्रकाश लौ में शंकर ने जो कुछ देखा, तो आश्चर्य से अपलक उस ओर देखता रह गया।

तप के कारण शरीर कंकाल जैसा हो गया था। सिर के बाल लम्बी जटाएं बनकर नीचे लटक रही थीं। पद्मासन लगाए योगी गोबिंदपाद समाधि में लीन बैठे हुए थे।

उनका चौड़ा मस्तक दमक रहा था, दो चमकीले नेत्र मुंदे हुए थे। तप के कारण जर्जर देह से अनूठी ज्योति निकल रही थी।

बालसंन्यासी शंकर महादेव के समान उस योगी को देखकर श्रद्धा और दिव्यानंद से भर गए।

और उनके सामने श्रद्धा से झुककर ध्यान में लीन हो गए। उनके हृदय में अनूठा प्रेम सागर लहराने लगा।

आंखों में हर्ष से अश्रुकण भर आए। और वह हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे—

प्रभो! आप मुनियों में श्रेष्ठ हैं। आप शरणागतों को कृपा करके ब्रह्म ज्ञान देने के लिए पतंजलि रूप में पृथ्वी पर अब अवतीर्ण हुए हैं।

आपकी अहिमा अपार है। गौड़पाद जैसे ब्रह्मज्ञानी से आप ही ब्रह्मज्ञान लाभ करके यशस्वी हुए हैं।

मैं भी ब्रह्मज्ञान प्राप्ति की कामना से आपके श्रीचरणों में आश्रय लेने आया हूं।

इस दीन शिष्य को ब्रह्मज्ञान प्रदान कर कृतार्थ करें।

शंकर के स्तुति-गान से गुफा गूंज उठी। बाहर बैठे हुए वृद्ध संन्यासी भी गुफा में आ गए। और सभी ने आश्चर्य से देखा, गोविंदपाद के शरीर में फिर से प्राणों

का स्पंदन होने लगा। और गहरी सांस लेकर उन्होंने आंखें खोल दीं।

शंकर हर्ष में भरकर उनके चरणों में गिर पड़े। वृद्ध संन्यासी भी योगी के चरणों में नतमस्तक हो गए।

अंधकार भरी गुफा उज्ज्वल प्रकाश से भर गई। बालशंकर, वृद्ध संन्यासियों के जयघोष से गुफा गूंज उठी।

सभी हर्ष में भरे एक साथ जयघोष कर रहे थे 'योगीराज गोबिंदपाद की जय!' 'ब्रह्मज्ञानी गोबिंदपाद की जय!!'

जयघोष गुफा में गूंजना हुआ चारों ओर गूंजने लगा। गोबिंदपाद धीरे-धीरे समाधि अवस्था से जागृत होने लगे।

# 7

योगीराज गोबिंदपाद ने नेत्र खोलकर सामने देखा, शंकर उनके चरणों में नत मस्तक किए बैठा था।

योगीराज उसकी ओर देखकर मुस्करा दिए।

योगीराज गोबिंदपाद की सहस्र वर्ष की समाधि एक बालसंन्यासी के आने से छूट गई। चारों ओर इसकी चर्चा होने लगी।

योगी गोबिंदपाद वर्षों समाधि अवस्था में रहने के कारण अधिक दुर्बल हो गए थे।

उनसे भली प्रकार चला-फिरा भी नहीं जाता था। वृद्ध संन्यासियों ने यौगिक क्रियाओं द्वारा पहले उनका उपचार किया।

कुछ समय पश्चात् योगीराज स्वस्थ होकर आसन छोड़कर गुफा से बाहर आए।

नर-नारी योगीराज गोबिंदपाद के दर्शनों के लिए आने लगे।

कई श्रद्धालु भक्तों को उस छोटे बालसंन्यासी को देखने की उत्सुकता उत्पन्न हुई, देखना चाहिए, वह कैसा बालसंन्यासी है जिसके कारण योगीराज गोबिंदपाद सहस्र वर्ष की समाधि त्यागकर गुफा से बाहर आ गए।

नर-नारियों के समूह-के-समूह योगीराज गोबिंदपाद और बालसंन्यासी शंकर को देखने के लिए आने लगे।

ओंकरनाथ एक बड़ा तीर्थ बन गया। बालसंन्यासी शंकर को दिव्य दृष्टि से देखकर योगीराज गोबिंदपाद ने जान लिया था। यह बालक अवतार अंश है। अद्वैत ब्रह्मविद्या का उपदेश देने के लिए इसका अवतरण हुआ है।

यही वह बालसंन्यासी है जिसको अद्वैत-ब्रह्मविद्या का उपदेश करने के लिए

मैंने सहस्त्र वर्ष समाधि अवस्था में व्यतीत किए।

यही बालसंन्यासी शंकर, वेदव्यास रचित ब्रह्मसूत्र का भाष्य लिखकर संसार में अद्वैत-ब्रह्मविद्या का प्रचार करेगा।

मन-ही-मन सोचते हुए योगी गोबिंदपाद शंकर की ओर देखकर मुस्कुराए, शंकर उनके चरणों में मस्तक झुकाए बैठा था।

उन्होंने प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, 'शंकर! तुझे कैसे ज्ञात हो गया, मैं तेरी ही प्रतीक्षा कर रहा था।'

बालसंन्यासी शंकर ने योगी गोबिंदपाद के चरणों में झुकते हुए कहा, 'गुरुदेव! मैं तो आपको वर्षों पहले गुरु मान चुका हूं, अब मुझे दीक्षा देकर अपना शिष्य बना लीजिए।'

'अद्वैत-वेदांत अति प्राचीन है शंकर! महर्षि वादनारायण व्यास ने ब्रह्मसूत्र की रचना करके अद्वैत-वेदांत की दर्शनरूप में प्रतिष्ठा की थी। और फिर अपने पुत्र शुकदेव को अद्वैत-वेदांत की शिक्षा दी थी।

शुकदेव ने अपने शिष्य गौड़पाद को यह ज्ञान दिया, 'अपने गुरु गौड़पाद से ही मैंने अद्वैत-वेदांत का उपदेश लिया था।'

'अब आप मुझे अपना शिष्य बनाकर ज्ञान दीजिए', शंकर नें त्रमता से झुकते हुए कहा, 'इसी कारण आपकी शरण में आया हूं।'

योगीराज ने शंकर को अपना शिष्य बना लिया, वृद्ध संन्यासी भी योगीराज के शिष्य बन गए।

योगीराज गोबिंदपाद ने शंकर को पहले हठयोग की शिक्षा दी। जब हठयोग में शंकर ने पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर ली, तब योगीराज ने उसे राजयोग की शिक्षा दी। थोड़े वर्ष में ही शंकर ने हठयोग और राजयोग में पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर ली और उसमें अलौकिक शक्ति आ गई।

बड़े-बड़े योगी वर्षों साधना करके जिन योग शक्तियों को प्राप्त करते हैं संन्यासी शंकर दो वर्ष में ही निपुण हो गए।

गोबिंदपाद अपने शिष्य शंकर की प्रतिभा, योग्यता देखकर अधिक प्रसन्न हुए।

दूर श्रवण, दूर दर्शन, आकाशमार्ग कहीं भी पहुंच जाना, देह परिवर्तन (दूसरी देह में प्रवेश) आदि अलौकिक शक्तियों के शंकर अधिकारी हो गए।

गोबिंदपाद अपने छोटे बालसंन्यासी शिष्य, प्रतिभाशाली शिष्य को और भी यत्न से ज्ञान योग की शिक्षा देने लगे।

श्रवण, मनन, निदिध्यासन, ध्यान, धारणा, समाधि का रहस्य सिखाकर, राजयोगी ने शंकर को साधन क्रमानुसार उच्चस्तर में प्रतिष्ठित कर दिया।

ध्यानबल से समाधि में लीन होकर शंकर का मन, नई दिव्यानुभूति आनंद अनुभव करने लगा।

ब्रह्मज्योति व्याप्त हो गई, मुख पर अनूठा तेज झलकने लगा।

शंकर को अब इतना अभ्यास हो चुका था कि उनका मन अब सहज ही समाधि अवस्था में पहुंच जाता था।

योगीराज गोबिंदपाद ने देखा, शंकर पूर्णरूप से ब्राह्मी स्थिति अवस्था में पहुंच चुका है, तब उन्हें अधिक ही प्रसन्नता हुई।

शंकर इतनी सारी अलौकिक शक्तियों का स्वामी होकर गुरु के प्रति और भी श्रद्धावान् हो गया।

प्रत्येक समय उनकी सेवा के लिए तैयार रहता, गुरु की स्तुति में संन्यासी शंकर ने अनेक प्रसिद्ध श्लोकों की रचना की।

शंकर को साधना, भक्ति, ज्ञान की शिक्षा देकर, योगीराज गोबिंदपाद फिर समाधि अवस्था में लीन रहने लगे।

वर्षा ऋतु आरंभ हो चुकी थी। चारों ओर हरियाली छाकर, प्रकृति की अनूठी शोभा हो गई थी। नर्मदा नदी का जल लहराता हुआ तट का चुम्बन लेने लगा था।

ओंकारनाथ की शोभा और अधिक बढ़ गई थी। ग्रामवासी हर्ष से वर्षा का स्वागत करते हुए नाच-गा रहे थे।

तभी जोर की वर्षा हुई, नर्मदा का जल बढ़ने लगा। लगातार वर्षा के कारण जल का वेग नर्मदा के तट को तोड़कर आगे बढ़ने लगा।

चारों ओर जल-ही-जल दिखाई देने लगा। ग्रामवासी घबराकर अपने पशु और परिवार को लेकर सुरक्षित स्थान की ओर चले गए।

संन्यासी शंकर के गुरु, गोबिंदपाद उस समय समाधि में लीन थे।

नर्मदा का जल प्रवाह बाढ़ का रूप धारण कर चुका था, खेतों को जलमग्न करता झोपड़ी मकान को धराशायी करता, आगे-ही-आगे बढ़ता जा रहा था। वर्षा लगातार हो रही थी।

नर्मदा जल लहरें लेता-लेता, थल को जल से पूर्ण करता, गुफा की ओर बढ़ने लगा।

गुरुजी समाधि अवस्था में हैं, योगीराज गोबिंदपाद समाधि में है, यदि गुफा में जल आ गया तो उनकी समाधि तो भंग होगी ही, जीवन की भी हानि हो जाएगी।

योगीराज के शिष्यों को चिंता होने लगी—किस प्रकार गुरुजी की समाधि भी भंग न हो और उन्हें सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दें।

योगीराज के शिष्यों ने शंकर की ओर देखते हुए कहा, 'बाल संन्यासी! नर्मदा बाढ़ का जल गुफा के समीप आ गया है, गुरुजी समाधि अवस्था में हैं, अब हम क्या करें, गुरुजी की समाधि भी भंग न हो, ऐसा कोई उपाय दिखाई नहीं देता।'

'बन्धु! इस प्रकार क्यों घबरा रहे हो,' शंकर ने योगीराज के शिष्यों को सान्त्वना देते हुए कहा, 'गुरुजी की गुफा में यह जल नहीं पहुंचेगा।'

'देखो! देखो!! बाढ़ का जल गुफा के समीप पहुंच चुका है', योगीराज के शिष्यों ने घबराते हुए कहा, 'अब तो गुरुजी की समाधि भंग करनी ही होगी।'

'नहीं! गुरुजी की समाधि भंग नहीं होगी', कहते हुए शंकर ने एक घड़ा लाकर द्वार पर रख दिया।

सभी आश्चर्य से देखते रह गए—नर्मदा का जल घड़े के भीतर जाते ही बाढ़ प्रवाह समाप्त हो गया।

गुफा के अंदर थोड़ा-सा भी जल नहीं आया। गुरुजी उसी प्रकार समाधि में लीन रहे।

संन्यासी भक्त, श्रद्धालु आश्चर्य से उस बालसंन्यासी के अलौकिक चमत्कार को देखते रह गए।

# 8

वर्षा समाप्त हो चुकी थी। बाढ़ का भय भी दूर हो चुका था। नर्मदा का जल हिलोरें लेता हुआ, आगे बढ़ा जा रहा था।

ग्रामनिवासियों ने अपने-अपने निवास स्थान पर आकर फिर से अपना-अपना कार्य संभाल लिया था।

सुनसान हुए ग्राम में अब फिर से चहल-पहल आरंभ हो गई थी।

'बाढ़ के कारण योगीराज गोबिंदपाद की समाधि भंग हो गई होगी', कई श्रद्धालु भक्तों ने बूढ़े संन्यासियों से पूछा, 'सुना है गुफा के समीप तक नर्मदा की बाढ़ का जल आ गया था।'

'हमारे गुरुजी की समाधि भंग नहीं हुई थी', बूढ़े संन्यासियों ने मुस्कराते हुए कहा, 'तुमने वह बालसंन्यासी देखा है।'

'देखा है महात्मन्! उसके मुख पर अनूठा ही तेज बरसता है। सब कहते हैं किसी देव अंश ने हम जैसों का उद्धार करने को इस मृत्युलोक में जन्म लिया है।'

'तुम ठीक कह रहे हो, गुरुजी की उस पर इसी कारण विशेष कृपा है।'

'अरे भाई तुम तो बाढ़ के विषय में पूछ रहे थे, वह बात बीच में ही छोड़ दी', दूसरे भक्त ने बूढ़े संन्यासी की ओर देखते हुए कहा, 'क्या योगीराज की समाधि भंग नहीं हुई।

'नहीं हुई भाई, हमारे गुरुजी की समाधि भंग नहीं हुई, उस अलौकिक शक्ति वाले बालसंन्यासी ने ही बाढ़ का जल गुफा के अंदर जाने से रोक दिया। एक घड़ा (कुंभ) गुफा के द्वार पर रख दिया था।'

'क्या कह रहे हो संन्यासीजी, एक घड़ा गुफा के द्वार पर रखने से नर्मदा की बाढ़ का जल गुफा के भीतर नहीं गया।'

'तुम भीतर जाने की बात कर रहे हो, घड़े के समीप आकर नर्मदा की बाढ़ का जल ही समाप्त हो गया।' दूसरा संन्यासी मुस्कराया।

'सचमुच विश्वास करने योग्य घटना नहीं थी, पर हमने तो प्रत्यक्ष अपनी आंखों से देखा है', बूढ़े संन्यासी ने मुस्कराते हुए कहा, 'अब हमारे सत्संग का समय हो रहा है, अब हम जा रहे हैं, तुम्हें अवकाश मिले तब उधर आ जाना।'

'उस अलौकिक शक्ति के चमत्कारी बालसंन्यासी को देखने के लिए तो हम सदैव तैयार हैं महात्मन्।'

'उसे देखते हुए हमारी आंखें तृप्त ही नहीं होतीं', दूसरे श्रद्धालु भक्त ने बूढ़े संन्यासी के चरण छूते हुए कहा, 'अब चलूं महात्मन् आप सबके समीप आकर सत्संग करके, फिर संसारी बातों में मन नहीं लगता।'

'गृहस्थी को अपना कर्त्तव्य भी पूरी निष्ठा से करना चाहिए भाई, कर्त्तव्य पालन करना हमारा धर्म है, इसी से मानव का उद्धार होता है।'

'यही शास्त्रों में भी लिखा है।' कहते हुए बूढ़े संन्यासी अपने निवास-स्थान पर चले गए।

श्रद्धालु भक्त उस अलौकिक चमत्कारी बालसंन्यासी के दर्शन करके उसके विषय में बातें करते अपने घर की ओर चल पड़े।

अभी तक बालसंन्यासी शंकर के विषय में सुना था, अब तो प्रत्यक्ष दर्शन भी कर लिए।

कितना छोटा-सा बालक है, लगभग दस-ग्यारह वर्ष की आयु होगी, पर मुंह पर इतना तेज है, बड़ी आयु वाले संन्यासियों के मुख पर भी वैसा तेज नहीं, भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है 'जब-जब धर्म की हानि होती है तब उसका पुनः उद्धार करने को मैं अवतार लेता हूं।' कहीं यह वही तो नहीं सोचते हुए श्रद्धालु भक्त फिर दर्शन की लालसा लिए चले गए।

योगीराज गोबिंदपाद जब समाधि से उठे, उन्होंने देखा, उनका बालसंन्यसासी शंकर उनके चरणों में समाधि अवस्था में बैठा हुआ है।

योगीराज ने शंकर के सिर पर प्यार से हाथ फेरा, शंकर ने आंखें खोलीं और अपने गुरु के चरणों में नतमस्तक हो गया।

गुरुजी की समाधि खुल गई, सभी संन्यासी एकत्र हो गए, उन्होंने बारी-बारी से गुरु के चरणों में मस्तक झुकाया।

'सब ठीक रहा, कोई गड़बड़ तो नहीं हुई', योगीराज ने मुस्कराते हुए पूछा, 'कोई नई सूचना तो नहीं।'

'गुरुदेव! आप तो दिव्य दृष्टि से सब-कुछ जान लेते हैं', शंकर ने मुस्कराते हुए कहा, 'अबकी बार नर्मदा ने गांव वालों की अधिक हानि की।'

'गुरुजी! बाढ़ का जल तो गुफा के समीप पहुंच चुका था। शंकर ने कुंभ (घड़े) को गुफा के समीप रखकर बाढ़ के जल को गुफा के भीतर आने से रोक दिया।'

'गुरुजी! बाढ़ का जल कुंभ में समा गया', दूसरे संन्यासी ने योगीराज गोबिंदपाद की ओर देखते हुए कहा, 'ग्रामवासी फिर से अपने निवाव-स्थान में आकर अपने-अपने कार्यों में लग गए हैं।

'इस बालसंन्यासी शंकर में अनूठी शक्ति छिपी हुई है गुरुजी,' तीसरे संन्यासी ने शंकर की ओर देखते हुए कहा, 'सारी आयु व्यतीत हो गई, हममें अब भी वह शक्ति नहीं आई।'

'अभ्यास करते रहो, वह शक्ति भी आ जाएगी', गुरुजी ने मुस्कराते हुए कहा, 'संन्यासी बनने से सारी सिद्धियां नहीं आ जातीं साधना और लगातार अभ्यास से एकाग्रचित्त से अपने कार्य में सफलता मिलती है।'

'आप ठीक कह रहे हैं गुरुजी, पर अब मैं लगातार अभ्यास कर रहा हूं।'

'अब तुम्हारा साधना का समय हो गया, तुम जाओ', योगीराज ने सभी शिष्य संन्यासियों को बाहर जाने का संकेत करते हुए शंकर को वहीं ठहरने का संकेत किया।

सभी संन्यासी शिष्य बाहर की ओर चले गए, तब योगीराज ने शंकर के मस्तक पर प्यार से हाथ फेरते हुए कहा, 'वत्स मैंने अपने गुरु गौड़पाद से सुना था, तुम मृत्युलोक में आकर धर्म का पुनरुद्धार करोगे....व्यास कृत ब्रह्मसूत्र पर भाष्य रचना करोगे....।

पाखंड भरे मतों की पोल खोलकर....अद्वैत वेदांत को उच्च आसन पर प्रतिष्ठित करने में सफल होगे।

मेरे गुरु गौड़पाद ने भी अपने गुरु शुकदेव के मुख से सुना था, उस विशिष्ट कार्य साधन के लिए ही तुम्हारा जन्म हुआ है।

मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूं। तुम सब वेदार्थ ब्रह्मसूत्र भाष्य में लिपिबद्ध कर दो।'

संन्यासी बालशंकर की आंखों में हर्ष के आंसू छलछला आए, उन्होंने फिर अपने गुरु के चरणों में मस्तक झुका दिया।

योगी गोबिंदपाद यह जान चुके थे, अब शंकर की शिक्षा समाप्त हो चुकी है।

तब उन्होंने एक दिन शंकर को एकांत में बुलाया। शंकर ने आकर उनके

चरण छूकर वंदना की।

योगीराज गोबिंदपाद ने शंकर को आशीर्वाद देते हुए कहा, 'शंकर! अब तुम्हारे मन में किसी प्रकार का संदेह तो नहीं रह गया है। कोई जिज्ञासा हो तो बताओ।'

'गुरुदेव!' शंकर ने नम्रता से झुकते हुए कहा, 'मुझे आपने पूर्ण मनोरथ कर दिया। आपकी कृपा से सब कुछ प्राप्त हो गया है....आप अनुमति दें तो मैं एकाग्रचित्त होकर चिर निर्वाण लाभ करूं।'

शंकर की चिर निर्वाण की इच्छा सुनकर योगीराज गोबिंदपाद ने मौन रहकर कुछ सोचा—

फिर शंकर की ओर देखते हुए बोले, 'बत्स वैदिक धर्म के संस्थापन के लिए देवाधिदेव शंकर के अंश से तुम्हारा जन्म हुआ है।

अद्वैत ब्रह्मज्ञान का उपदेश करने के लिए मैं अपने गुरुदेव की आज्ञा से सहस्र वर्ष से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था।

अब मेरा कार्य समाप्त हो गया, मैं समाधियोग से स्वस्वरूप में लीन हो जाऊंगा....तुम काशीधाम जाओ। वहां तुम्हें भवानी पति के दर्शन होंगे।

'वो जिस प्रकार का तुम्हें आदेश दें, उसी प्रकार तुम उसका पालन करना। तुम जिस कार्य के लिए आए हो भवानी पति बता देंगे।'

शंकर मस्तक झुकाए चुपचाप अपने गुरु की बातें सुन रहे थे।

उनके गुरु अब उनसे बिछुड़ने वाले हैं यह सोचकर उनकी आंखों में आंसू छलछला आए।

उन्होंने मुंह मोड़कर हाथ से आंसू पोंछ डाले और योगीराज गोबिंदपाद से आज्ञा लेकर बाहर चले आए।

दूसरे दिन योगीराज गोबिंदपाद ने अपने सभी शिष्यों, संन्यासियों को बुलाया, और सभी को साधना, उपदेश देकर आशीर्वाद दिया।

फिर शांत होकर बैठ गए और समाधि-योग द्वारा देहत्याग कर दी।

शिष्यों ने अपने योगीराज गुरु पर श्रद्धा के पुष्प चढ़ाकर नर्मदा जल में उनका अंतिम संस्कार कर दिया।

सूनी गुफा देखकर शंकर की आंखों से अश्रुधारा बह चली।

फिर अपने योगीराज गुरु का अंतिम आदेश मानकर वो वहां से चलने की तैयारी करने लगे।

# 9

: अपने गुरु गोबिंदपाद से अधिक ही प्रेम करते थे।

उनके देह-त्याग से शंकर को अधिक दुख हुआ।

थोड़े समय पश्चात् वो अपने गुरु के आदेश को स्मरण करके वाराणसी की चल पड़े।

कई संन्यासी भी तीर्थयात्रा करने को शंकर के साथ चल पड़े।

उन दिनों सवारी का साधन कठिन था, घोड़े पर या घोड़ागाड़ी, बैलगाड़ी पर अपनी यात्रा करते थे।

जिन्हें यह साधन नहीं मिलते थे वे पैदल यात्रा करते थे। दुर्गम पर्वतीय मार्गों ो यात्री पैदल ही यात्रा करते थे।

संन्यासी शंकर अपने संन्यासी यात्रियों के साथ पैदल ही यात्रा के लिए चल

दिन में वह सब यात्रा करते, रात्रि को किसी देवालय या साधु की कुटी में म करके प्रातःकाल फिर आरंभ कर देते।

इसी प्रकार शंकर सहित सभी यात्री विंध्यारण्य और प्रयाग तीर्थ की यात्रा करते ाराणसी पहुंच गए।

वाराणसी मोक्षदायनी आत्मबोधरूपा कहलाती थी।

संन्यासी शंकर ने एक एकांत निर्जन स्थान मणिकर्णिका के निकट रहने के पसंद किया।

सभी संन्यासी वहीं रहने लगे। प्रतिदिन नित्यकर्मों से निपटकर गंगा-स्नान फिर श्री विश्वनाथ व अन्नपूर्णा के दर्शन करते।

और ब्रह्मध्यान में लीन रहते। संन्यासी शंकर को यहां आनंद अनुभव हो रहा

था। मन स्वतः ही ब्रह्म आनंद में लीन रहता था।

वाराणसी में बालसंन्यासी आया है....चारों ओर यह चर्चा होने लगी।

ग्यारह वर्ष की अल्प अवस्था का इतना तेजस्वी ज्ञानी प्रतिभाशाली, संन्यासी, वाराणसी में मणिकर्णिका के निकट ठहरा हुआ है।

यह सुनते ही श्रद्धालु भक्तों की भीड़ एकत्र होने लगी।

शंकर उन श्रद्धालु भक्तों को अद्वैत ब्रह्म तत्त्व का उपदेश देते।

उनके चारो ओर जिज्ञासुओं की भीड़ एकत्र हो जाती।

वह अपनी मधुर वाणी, शिक्षाप्रद तर्कों द्वारा उनका समाधान करते।

उनका ब्रह्मतेज से चमकता मुख सभी को अपनी ओर आकर्षित करता प्रतीत होता था।

विभिन्न दर्शनों के ज्ञाता, भिन्न-भिन्न मत वाले संन्यासी शंकर से शास्त्रार्थ करने आने लगे।

संन्यासी शंकर सभी को युक्ति और प्रणाम देकर समाधान कर देतें।

बालसंन्यासी का अगाधज्ञान विद्वत्ता, प्रतिभा, शास्त्रज्ञान, अनूठी मेधा शक्ति देखकर बड़े-बड़े विद्वान आश्चर्य से दांतों तले उंगली दबाने लगे।

चारों ओर बालसंन्यासी शंकर की विद्वता-प्रतिभा की चर्चा होने लगी।

उस समय भारत में अनेक प्रकार के पाखंड भरे मत फैले हुए थे।

अंधविश्वास और पाखंड भरे मतों में विद्याहीन नर-नारी फंसे हुए थे।

जिन्हें धूर्त साधु संन्यासी, कुमार्ग पर चलने की प्रेरणा देतें थें।

एक बालसंन्यासी ब्रह्म विद्या पर उपदेश देने आया हुआ है।

सुनकर अनेक सम्प्रदायों के साधक, विद्वान, संन्यासी बालशंकर से वाद-विवाद करने के लिए आए।

पर संन्यासी की (युक्तिपूर्ण) पूतिभा, विद्वत्ता, ज्ञान, युक्तिपूर्ण अकाट्य युक्तियों के आगे वह नत मस्तक होकर पराजय स्वीकार कर लेते थे।

कई श्रद्धालु इतने प्रभावित हुए, वह संन्यासी शंकर के शिष्य बन गए।

चोल देश का सनंदन नामक ब्राह्मण युवक, शास्त्र अध्ययन और तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिए सद्गुरु की खोज करते-करते काशी वाराणसी आया।

उसने सुना, मणिकर्णिका के समीप एक बालसंन्यासी आया हुआ है। उसमें अलौकिक शक्ति व असामान्य प्रतिभा है।

यह सूचना सुनते ही सनंदन, संन्यासी बालशंकर के निवास-स्थान पर पहुंच गया।

उस समय बालसंन्यासी शंकर पद्मासन लगाए श्रद्धालु भक्तों को अद्वैत ब्रह्मविद्या का उपदेश दे रहे थे।

उनकी मधुर वाणी श्रद्धालुओं के हृदय में अनूठा आनंद भर रही थी। युवक सनंदन उस बालसंन्यासी को देखता रह गया।

इतनी अल्प आयु और इतनी प्रतिभा ज्ञान अवश्य यह बालक अवतार अंश है। सोचते हुए सनंदन उस बालसंन्यासी शंकर के चरणों में झुक गया।

और शंकर की ओर देखते हुए कहने लगा, 'महात्मन्! मैं अधिक समय से सद्‌गुरु की खोज में भटक रहा था।'

'अब आप मुझे अपनी शरण में लेकर अपना शिष्य बना लीजिए।'

'यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो अवश्य पूर्ण होगी', शंकर ने मुस्कराकर सनंदन के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, 'अब विश्राम करो।'

'सनंदन की आंखों में हर्ष के आंसू छलछला आए, उसने दूसरे दिन ही संन्यासी शंकर से दीक्षा ले ली।

'सनंदन, आचार्य शंकर का प्रथम शिष्य था। अपने गुरु शंकराचार्यजी के चरणों में आश्रय पाकर सनंदन ने अपने को धन्य माना और लगन परिश्रम से गुरु की सेवा करने लगा।

सनंदन शास्त्रज्ञाता और मेधावी था। थोड़े समय में ही सद्‌गुरु से और ज्ञान प्राप्त करके अधिक प्रतिभाशाली बन गया।

प्रत्येक समय सनंदन अपने गुरु की सेवा के लिए तत्पर रहता था।

गुरु शंकराचार्य भी उससे अधिक प्रेम करते थे।

सनंदन छाया की भांति प्रत्येक समय गुरु के साथ रहता।

गुरु समाधि में लीन हो जाए, तो वह उनके समीप ही बैठा रहता।

सभी शिष्य सनंदन की गुरु भक्ति को जातने थे।

अपने गुरु शंकराचार्य जी का जीवन उसने कई बार बचाया था।

अपने प्राणों को संकट में डालकर अपने गुरु के प्राणों की रक्षा की थी।

गुरु प्रेमी शिष्य सनंदन को सभी श्रद्धालु भक्त श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे।

कई विद्वान प्रतिभाशाली विद्वानों को शास्त्रार्थ में संन्यासी शंकर ने पराजित कर दिया था।

कई श्रद्धालु आचार्य शंकर या शंकराचार्य जी, संन्यासी शंकर को कहते थे।

आचार्य शंकर को देव-कार्य साधन के लिए ब्रह्मानुभूति में रहना था।

ज्ञानियों की अद्वैत भूमि पर जो निगुर्ण ब्रह्म परमात्मा है वही द्वैत भूमि पर सगुण ईश्वर है।

साधक जब पूर्ण अवस्था को पहुंच जाता है तब कहता है, साकार मेरा पिता, निराकार मेरी मां है।

शंकराचार्य जी कहते थे, सगुण अपासना निगुर्ण तक पहुंचने की सीढ़ी है।

अद्वैत ज्ञान ही सभी साधनाओं की परम उपलब्धि है। अंतिम अवस्था है।

शंकर अपने शिष्यों को उपदेश देते-देते इष्ट के ध्यान में खो जाते।

कभी इष्ट के ध्यान में मग्न होकर स्तुति करते—

'हे नाथ! मेरे और तुम्हारे बीच जो भेद है....उसे जानते हुए भी मैं तुम्हारा हूं। तुम मेरे नहीं।'

समुद्र और तरंग एक होने पर भी समुद्र की तरंगें कहलाती हैं।

पर तरंगें समुद्र को अंश कहने का दावा नहीं कर सकतीं।

शंकराचार्य स्तुति करते हुए समाधि अवस्था में लीन हो जाते।

गुरु प्रेमी सनंदन उनके समीप बैठकर उनकी देखभाल करता रहता। शंकराचार्य। के और दूसरे शिष्य सनंदन को बड़ी कठिनाई से वहां से उठाकर उसका आवश्यक नित्य कर्म करवाते थे।

कई परिहास में सनंदन को गुरु का दीवाना भी कह देते थे।

सनंदन सभी का परिहास झेलता पर गुरु सेवा से विरक्त नहीं होता।

उसे न खाने की सुध थी ना ही सोने की....शंकराचार्य ही जब समाधि अवस्था से उठते तो उसे कठिनाई से विश्राम कराते।

उसे समझाते हुए कहते, 'सनंदन, इस नाशवान शरीर से प्रेम क्या करना, प्रेम उससे करो जो, नाशवान नहीं है।'

'गुरुदेव, आत्मा नाशवान कहां है मैं तो उससे ही प्रेम करता हूं जो नाशवान नहीं है।'

सनंदन का विद्वत्तापूर्ण ज्ञान भरा उत्तर सुनकर, छोटे से गुरु पर प्रतिभा, विद्वत्ता, ज्ञान में बड़े गुरु मुस्करा देते।

सभी श्रद्धालु सनंदन की गुरु भक्ति की प्रशंसा करते थे।

पर सनंदन को प्रशंसा से हर्ष नहीं होता, उसे अहंकार तनिक भी नहीं था।

वह अपना जीवन गुरु के चरणों में समर्पण कर चुका था।

# 10

ाश में कहीं-कहीं तारे टिमटिमाकर अंधकार दूर करने का यत्न कर रहे थे।

मन में अनूठी सिहरन भरने वाली प्रातःकाल के आगमन की सूचना देने वाली न चलने लगी थी।

शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित अपने आवश्यक कार्यों से निबटने, स्नानादि ने के लिए मणिकर्णिका घाट की ओर जा रहे थे।

सूर्य निकलने में अभी देर थी। चारों ओर अंधकार छा रहा था।

शंकराचार्य लम्बे-लम्बे डग भरते हुए मणिकर्णिका घाट की ओर जा रहे थे।

अचानक ही किसी स्त्री का विलाप सुनकर वह ठिठककर खड़े हो गए और ओर देखने लगे।

एक स्त्री अपने पति का शव लिए बैठी हुई रो रही थी।

शंकराचार्य का हृदय करुणा से भर उठा वह उसके समीप आए और सांत्वना हुए बोले, 'देवी! जरा शव को एक ओर हटा लो, तो हम स्नान के लिए आगे जाएं।'

स्त्री ने शंकराचार्य की ओर देखा और बोली, 'महात्मन्! आप शव को हटने कह दीजिए।'

'मां, कहीं शव भी हट सकता है, शव में हटने की शक्ति कहां है। उसे आप ओर हटा दीजिए, हमें स्नानादि कार्यों के लिए देर हो रही है।'

'महात्मन्! आपके मत में तो शक्ति निरपेक्ष ब्रह्म ही जगत का कर्त्ता है, फिर क्त के बिना शव क्यों नहीं हट सकता।' कहते हुए वह स्त्री शव सहित अंतर्धान गई।

शंकर ने उस स्त्री की ज्ञान भरी बातें सुनकर ध्यान से उस ओर देखा, पर वहां

न स्त्री थी ना ही शव था।

यह क्या लीला थी, शंकर ने मन-ही-मन सोचा, आहा यह तो आद्या शक्ति महामाया की लीला थी।

अनूठे आनंद हर्ष से शंकर का मन भर गया।

मैंने मां भवानी को पहचाना नहीं। भवानी शक्ति की महिमा ही दिखाने आई थीं।

सोचते हुए शंकर वहीं बैठकर मां भवानी की स्तुति करने लगे, 'हे भवानी! ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इंद्र, चन्द्र, सूर्य उन सबमें महान आपको ही मानता हूं।

मैंने आपकी शरण ली है, आप ही मेरी गति हैं। आप ही एकमात्र आश्रय हैं।

माता भवानी मैं आपकी शरण में आया हूं, आप ही विवाद, विपत, प्रमाद, प्रवास, जल में अग्नि व पर्वत पर शस्त्राघात से अरण्य में सर्वत्र मेरी रक्षा करें, आपका शरणागत हूं।' स्तुति करते, हर्ष विभोर होकर शंकराचार्य सोचने लगे।

विश्वेश्वर वंद्यादेवी भगवती ने मुझ पर कृपा करके अपने अस्तित्व का परिचय दिया है।

इस विश्व की सृष्टि-स्थित-प्रलयकारिणी देवी ही मुक्ति प्रदायिनी हैं।

उन्हीं की लीला से इस जगत का विकास हुआ है। उन्हीं के स्नेहमय वक्ष में जगल की स्थिति है। वे ही ब्रह्माण्ड़ में व्याप्त हैं।

शंकर आनंद में भरे मणिकर्णिका घाट पर स्नान करके अपने निवास-स्थल पर आ गए।

पर उनका मन अनूठे आनंद से भर रहा था, उनके चिंतन में अंतर आ गया।

उन्होंने अनुभव किया कि जीव और ब्रह्म अभिन्न हैं, निर्विशेष ब्रह्म केवल दृष्टामात्र है....जगत की रचना तो आद्याशक्ति महामाया ने की है।

आचार्य शंकर समाधि योग द्वारा अद्वैत ब्रह्मज्ञान में प्रतिष्ठित हुए थे। किंतु जीवभूमि पर व्यावहारिक क्षेत्र में 'सर्व ब्रह्ममय जगत' यह ज्ञान और दृष्टि तब भी उन्हें पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं हुई थी।

देवकार्य साधन के लिए शंकर का जन्म हुआ था। निर्विकल्प समाधि में आत्मानंद संभोग करके ही उनका कर्त्तव्य पूरा नहीं होता था।

सब प्राणियों में ब्रह्मानुभूति एवं सर्वत्र ब्रह्म दृष्टि लेकर ही उन्हें संसार में व्यवहार करता था।

'सर्व खल्विदं ब्रह्म' रूप महावाक्य का उनके जीवन में सार्थक होना था व अद्वैत—ब्रह्मात्म विज्ञान उनके भीतर मूर्ति रूप होना था।

इसी कारण व्यावहारिक क्षेत्र में शंकर में ब्रह्मात्म विज्ञान के परिपूर्ण विकास

के लिए भवानी पति शंकर ने एक और अद्भुत लीला रची।

शंकराचार्य प्रतिदिन मणिकर्णिका घाट पर स्नान करने जाते थे। उस समय भली प्रकार दिन नहीं निकलता था।

प्रतिदिन की भांति शंकराचार्य जब स्नान करने के लिए गंगा के मणिकर्णिका घाट की ओर चले, तब उन्हें एक कुरूप चांडाल चार कुत्तों को साथ लिए, उसी ओर आता दिखाई दिया।

शंकराचार्य ने मार्ग रुका हुआ देखकर उस चांडाल से कहा, अरे चांडाल तुम इन जंजीर से बंधे हुए अपने कुत्तों को लेकर एक ओर खड़े हो जाओ, हमें आगे निकल जाने दो।

चांडाल चुपचाप आगे की ओर बढ़ता रहा।

शंकराचार्य ने फिर दोबारा चांडाल को संकेत करते हुए कहा, 'अरे चांडाल तुम मार्ग से हट जाओ, हमें स्नानादि आवश्यक कार्यों के लिए देर हो रही है।'

'महात्मन,! किसे हटने को कहते हो?' चांडाल ने हंसते हुए संस्कृत भाषा में कहा।

'आप किसे हट जाने को कह रहे हैं आत्मा को या देह को, आत्मा तो सर्वव्यापी निष्क्रिय और सतत शुद्ध स्वभाव है।

यदि देह को हटाने को कह रहे हो तो वह जड़ है—वह कैसे हट सकता है और तुम्हारी देह से किसी और की देह किस अंश से भिन्न है यह भी बताओ।

एकमेवा द्वितीयम् ब्रह्मतत्त्व में प्रतिष्ठित होने का मिथ्या अभिमान करते हो!

तत्त्व दृष्टि से क्या ब्राह्मण और चांडाल में कोई भेद है!

जल में प्रतिबिम्बित सूर्य और सुरा में (शराब में) प्रतिबिम्बित सूर्य में कोई भेद है?

क्या यही तुम्हारा ब्रह्मज्ञान है—चांडाल के इन ज्ञान भरे वचनों को सुनकर शंकर लज्जित हो गए।

उन्होंने सोचा, अवश्य यह देवलीला है....एक चांडाल इतनी विद्वत्तापूर्ण वार्तालाप नहीं कर सकता।

उन्होंने हाथ जोड़कर उसकी स्तुति की जो सब भूतों के प्रति समज्ञानी है, वही मेरे गुरु हैं, उनके चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम करता हूं।

अचानक ही शंकर ने सामने देखा ना चांडाल था ना ही वहां कुत्ते थे।

सूर्य एवं अग्नि के समान दिव्य पुरुष महादेव चारों वेद अपने हाथ में लिए उसके सम्मुख खड़े हैं।

शंकराचार्य हर्ष में भर गए और उन्होंने देवाधिदेव के चरणों में नतमस्तक होकर हाथ जोड़कर स्तुति की—(संस्कृत में) जो समस्त जीवों के पति, पापनाशक, परमेश्वर, गजचर्मधारी और रमणीय हैं....जिनके जटाजूट में गंगा का जल प्रवाहित हो रहा है उन्हीं अद्वितीय महादेव की मैं वंदना करता हूं। स्मरण करता हूं।

हे विभो, हे विश्वमूर्ते! मैं बारम्बार प्रणाम करता हूं। हे चिदानंद मूर्ते, तुमको मैं बारम्बार प्रणाम करता हूं। हे वेदज्ञानगम्य, तुमको मैं बारम्बार प्रणाम करता हूं।

महेश्वर शंकर की स्तुति से प्रसन्न होकर उसके सिर पर हाथ रखते हुए बोले, 'वत्स! मैं तुमसे प्रसन्न हूं, मैं तुमसे जगत में वैदिक धर्म की पुनः प्रतिष्ठा कराने की इच्छा रखता हूं।

तुम वेदांत की निर्दोष व्याख्या द्वारा भ्रामक मतवादों का खंडन करके व्यासकृत ब्रह्मसूत्र पर भाष्य की रचना करो। और वेदांत का मुख्य तात्पर्य जो ब्रह्मज्ञान है उसकी प्रतिष्ठा करके वैदिक धर्म का सर्वसाधारण में प्रचार करो।

जगत के सर्व विध कल्याण के लिए ही तुमने मेरे अंश से जन्म ग्रहण किया है।

'जब तुम्हारा कार्य पूर्ण हो जाएगा, तब तुम मुझ में ही मिल जाओगे।'

कहते हुए महादेव अंतर्धान हो गए। शंकर देवाधिदेव के दर्शन करके हर्ष में भर गए, गंगा-स्नान करके वापिस अपने निवास-स्थान पर आए। पर उनके कानों में महादेव की देववाणी गूंज रही थी।

तुम ब्रह्मसूत्र पर भाष्य रचना करो। किस प्रकार देवादेश का पालन किया जाए शंकराचार्य ने एकाग्र चिंतन करके सोचा।

ब्रह्मसूत्र की भाष्य रचना करने के लिए बदरिकाश्रम जाना ठीक रहेगा।

यह निर्णय करके एक दिन विश्वेश्वर और वाराणसी की अंनपूर्णा को प्रणाम करके अपने शिष्यों सहित शंकराचार्य बदरिकाश्रम की ओर चल पड़े।

# 11

संन्यासी शंकर की इस समय बारह वर्ष की अवस्था हो चुकी थी। पर ज्ञान प्रतिभा बड़े-बड़े विद्वान पंडितों से अधिक थी।

छोटी आयु के संन्यासी शंकर बदरिकाश्रम की ओर जा रहे हैं। सुनकर श्रद्धालु मानव मार्ग में खड़े हो जाते।

श्रद्धा से फल-फूल भेंट करते, बालसंन्यासी शंकर के दर्शन करके अपने को धंय समझते ।

बारह वर्ष के संन्यासी शंकर जब बड़े-बड़े विद्वानों के सिर पर हाथ रखकर उन्हें आशीर्वाद देते—

तब दर्शनों को एकत्र हुए श्रद्धालुओं के नेत्रों में प्रेम, श्रद्धा, हर्ष से आंसू छलछला आते।

संन्यासी शंकर थोड़ी देर ठहरकर अपने नियत मार्ग की ओर चल पड़ते।

श्रद्धालु अपलक उस तेजस्वी संन्यासी की ओर देखते हुए आपस में वार्तालाप करते।

'देखा बंधु! योग साधना में कितनी शक्ति है। एक छोटा-सा बालक, ज्ञान-प्रतिभा से बड़े-बड़े विद्वानों को पराजित कर रहा है।'

'हां मित्र, साधना-तपस्या में यदि शक्ति नहीं होती, तब कौन इस कठोर व्रत को अपनाता।'

'तुमने सुना नहीं', तीसरे श्रद्धालु ने अपने साथी की ओर देखते हुए कहा, 'ज्ञानी अद्वैत ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात किस भाव से संसार में रहते हैं।'

'बंधु! इसका आदर्श संन्यासी शंकर के जीवन से मिलता है, संन्यासी शंकर के शिष्य से हमने सुना था....।'

'क्या सुना था मित्र!' चौथे श्रद्धालु ने उत्सुकता से अपने साथी की ओर देखते हुए कहा, 'हमें भी तो बताओ।'

'विद्याज्ञान का आश्रय लेकर, भक्ति, दया और वैराग्य का सम्बल लेकर, बालसंन्यासी शंकर का जीवन उद्देश्य, लोक शिक्षा धर्म का पुनरुद्धार करने और....।'

'और क्या?' बीच में बात काटते हुए पांचवें श्रद्धालु ने कहा, 'मैंने तो यह भी सुना है बंधु, जीव कोटि के साधक व ईश्वर कोटि साधक व आधिकारक मानवों के जीवन भी भिन्न होते हैं बंधु।'

'ठीक सुना मित्र! जीवकोटि भजन-साधन तीव्र तपस्या द्वारा अधिक-से-अधिक आत्मज्ञान की प्राप्ति तक पहुंचते हैं।

निर्विकल्प समाधि से वे अधिक दिन जीव भूमि पर नहीं रह पाते, जीव कोटि के साधक पूर्ण रूप से ज्ञान लाभ प्राप्त करने के पश्चात अधिक दिन जीवित नहीं रह पाते। उनकी आत्मा अखंड ब्रह्मस्वरूप में लीन हो जाती है।'

'तब तो वह लोक संग्रह रूप कार्य नहीं कर पाते होंगे।'

'हां बंधु! बालसंन्यासी शंकर के शिष्य ने बताया था, जो आधिकारिक पुरुष हैं, उनका देह धारण देव कार्य साधन व जीवजगत के कल्याणार्थ होता है।'

'जब-जब धर्म की हानि होती है तभी ऐसे महान पुरुष धर्म का पुनरुद्धार करने के लिए जन्म लेते हैं।'

'बंधु! यह आधिकारिक महामानव भगवत इच्छानुसार समाधि भूमि से उतरकर, जितने दिन जीवलोक में रहते हैं, उतने दिन उनकी कामना जीवजगत का कल्याण साधन रहती है।'

'हां मित्र! यदि वह केवल समाधि अवस्था में रहें तो लोकशिक्षा नहीं दे सकते।'

'बंधु! हमारे देवी-देवताओं के मंदिर, पूजा-स्थल, तीर्थ-स्थानों की महिमा को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए ही संन्यासी बालशंकर ने स्वयं तीर्थस्वरूप होते हुए भी तीर्थयात्रा की, तीर्थों का महत्त्व बताया, यह महान आत्माएं जीवकल्याण के लिए ही इस मृत्युलोक में जन्म लेती हैं।'

'सच, इनके दर्शन करके प्रेरणा भरे उपदेश सुनकर, हम तो अपने को धन्य मानते हैं बंधु।'

'अपने आप ही उनके चरणों में झुक जाने को मन करता है मित्र, सच, सत्संग और महान आत्माओं के दर्शन से कितना आनंद मिलता है अब जाना मित्र।'

'बंधु! यदि और थोड़ी देर बालसंन्यासी शंकर के समीप बैठ जाते तो तुम्हारा

मन उनसे पृथक होने को नहीं करता, उनमें इतना आकर्षण है।'

'लो वह आंखों से ओझल हो गए। श्रद्धालु भक्त ने लम्बी सांस लेते हुए कहा, 'न जाने अब कब दर्शन होंगे।'

'मुझे तो अब भी उनका ब्रह्मतेज से चमकता मुख नेत्रों के सामने दिखाई दे रहा है।'

'हमारे पूर्व संस्कार उतने अच्छे थे....जो ऐसी महान आत्मा महान पुरुष के दर्शन हो गए मित्र।'

'हमारे धन्य भाग्य हैं, जो उन जैसे महान पुरुष के दर्शन हुए, पर हम संसारी जीवों को तो गृहस्थी का भी तो कर्त्तव्य पूरा करना है, अब घर चलें। अब तो जाना ही है', कहते हुए श्रद्धालु भक्त, दर्शक अपने-अपने निवास-स्थल की ओर चले गए।

आचार्य शंकर केवल अद्वैत मत का प्रचार करने के लिए ही तो जगत में नहीं आए थे।

वैदिक धर्म की पुनः प्रतिष्ठा के लिए ही उनका आगमन हुआ था।

अद्वैत—ब्रह्मज्ञान के अधिकारी बिरले मानव ही होते हैं।

विभिन्न स्तरों के साधक व मुमुक्षुओं के लिए पूजा-अर्चनादि कर्म और द्वैत भाव की उपासना आदि का विधान भी शास्त्र में वर्णित है।

इसी कारण आचार्य शंकर बहुजन हिताय तीर्थ-स्थानों के पुनःउद्धार के लिए प्रवृत्त हुए थे।

आचार्य शंकर ने स्वयं तीर्थ कृत्यादि यात्रा करके इन सभी स्थानों की महिमा को बताया।

देवपूजा की वाणी सुनाकर अगणित नर-नारियों को पूजा-देवार्चना-वंदनादि का महत्त्व बताया।

आचार्य शंकर की तीर्थयात्रा धर्मस्थापन कार्य का एक अभिन्न अंग ही था।

बारह वर्ष के संन्यासी शंकर तीर्थ-स्थानों की महिमा दर्शाने, उनका महत्त्व बताने दुर्गम तीर्थ बदरिकाश्रम की ओर चले जा रहे थे।

मार्ग में जो भी तीर्थ-स्थान पड़ता, उसका महत्त्व शिष्यों को, श्रद्धालु भक्तों को समझाते, तीर्थों का दर्शन करते—देव-विग्रह की पूजा-अर्चना करते, शिष्यों से कराते।

पवित्र गंगा ज़ाह्नवी के किनारे-किनारे प्रयागादि तीर्थों का दर्शन करते अपने शिष्यों को उनका महत्व बताते, आचार्य शंकर हरिद्वार पहुंच गए।

प्राचीन काल से ही हरिद्वार मायापुरी ऋषिमुनियों की तपस्या भूमि रही है।

'हरिद्वार हिमालय का प्रवेश द्वार है', आचार्य शंकर ने मुस्कराकर अपने शिष्यों

की ओर देखते हुए कहा।

'एक ओर हिमालय पर्वतमाला है—पूर्व पश्चिम की ओर से मिली हुई शैवालिक की दो शाखाएं अनूठा दृश्य उत्पन्न कर रही हैं।'

'पुराणों के अनुसार आदिकाल में हरिद्वार में ही ब्रह्माजी ने विराट अनुष्ठान यज्ञ किया था।'

'गुरुदेव! इधर गंगा में ब्रह्मकुंड की बड़ी महिमा तीर्थ-यात्रियों ने बताई है।'

'हां कहते हैं राजा भगीरथ जब मृत्युलोक में गंगा ले आए, राजा श्वेत ने इसी स्थान पर ब्रह्माजी की बड़ी आराधना थी।'

'श्रद्धालु बताते हैं गुरुदेव, राजा की आराधना से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने राजा से वर मांगने को कहा, राजा ने यह वर मांगा, यह स्थान आपके नाम से प्रसिद्ध हो।'

'यह भी तो राजा ने वर मांगा था', दूसरे शिष्य ने अपने गुरु शंकराचार्य की ओर देखते हुए कहा, 'यहां पर आप भगवान विष्णु तथा महेश के साथ निवास करें।'

'यहां पर सभी तीर्थों का वास हो, यह भी राजा ने वर मांगा था', दूसरे शिष्य ने ब्रह्मकुंड की ओर बढ़ते हुए कहा, 'ब्रह्माजी ने कहा था, ऐसा ही होगा, इस कुंड में स्थान करने वाले ब्रह्मपद के अधिकारी होंगे। तभी से इसका नाम ब्रह्मकुंड पड़ा है।'

'वत्स, इन तीर्थों का इसी कारण महत्त्व है, यहां बड़े-बड़े तपस्वी ऋषि मुनियों ने तपस्या करके लोक-कल्याण के लिए भावना की है। पर उपकार, दया, धर्म में प्रीति जिस मानव में होगी, उसका उद्धार अवश्य होगा। खाली स्नान करने से तो शरीर अवश्य शुद्ध हो जाएगा....मन को शुद्ध करने के लिए साधना अवश्य करनी चाहिए।'

अपने गुरु शंकराचार्य की प्रेरणा उपदेश से भरी मधुर वाणी सुनकर, शिष्य ने झुककर शंकराचार्य के चरण छू लिए।

शंकराचार्य हरिद्वार तीर्थ के दर्शन करते, उनकी महिमा शिष्यों को सुनाते, प्रकृति की अनूठी शोभा निरखते ऋषिकेश की ओर चल पड़े।

# 12

हरिद्वार के प्रकृति दृश्य देखते, अपने शिष्यों को तीर्थ-स्थानों का महत्त्व बताते, आचार्य शंकर ऋषिकेश पहुंच गए।

उन्होंने सुना था प्राचीन समय में यज्ञ करके ऋषियों ने इस स्थान पर यज्ञेश्वर विष्णु की प्रतिष्ठा की थी।

मंदिर यज्ञेश्वर विष्णु का मंदिर कहलाता था। आचार्य शंकर उस मंदिर में यज्ञेश्वर विष्णु के दर्शन करने गए।

वह मंदिर सूना पड़ा था। विष्णु विग्रह पूजा-स्थल पर नहीं था। कोई पूजा-सामग्री भी मंदिर में नहीं थी।

शंकराचार्य और उनके शिष्यों को सूना मंदिर देखकर आश्चर्य हुआ। उन्होंने श्रद्धालु भक्तों व पुजारियों से पूछा, 'यहां मंदिर में विष्णु विग्रह नहीं है, ना ही पूजा का सामान है। मंदिर विष्णु विग्रह शून्य क्यों है।'

'महात्मन्! चीन देश के दस्यु के भय से पुजारियों ने विष्णु विग्रह को गंगाजी के भीतर एक स्थान में छिपा दिया था। थोड़े समय पश्चात् उस स्थान में विष्णु विग्रह को खोजने का यत्न किया, पर विष्णु विग्रह उस स्थान पर नहीं मिला।'

'हमें भी इसका अधिक दुख है', पुजारियों ने लम्बी सांस लेते हुए कहा, 'अभी तक हमें विष्णु विग्रह नहीं मिला। जिसके कारण मंदिर सूना है। जब मंदिर में विष्णु विग्रह ही नहीं तब पूजा की व्यवस्था किसके लिए करें।'

यह सुनकर, आचार्य शंकर एक स्थान में ध्यानमग्न होकर बैठ गए।

थोड़ी देर में उन्होंने आंखें खोलकर श्रद्धालु भक्त पुजारियों की ओर देखते हुए कहा, 'भक्तो! यदि देव विग्रह खोजकर पुनः इस मंदिर में उसकी प्रतिष्ठा कर दी जाए, तब क्या आप सब उसकी सेवा-पूजा आदि की व्यवस्था के लिए तैयार हैं।'

'महात्मन्! हम सब इसके लिए तैयार हैं', श्रद्धालु भक्त पुजारियों व ब्राह्मणों ने प्रसन्न होकर कहा 'आप हमारे पूज्य विष्णु विग्रह को ढूंढ़ दें, हम सब पूजा-अर्चना, सेवा आदि के लिए तैयार हैं।'

'मुझे उस स्थान पर ले चलो, जहां विष्णु विग्रह छिपाया गया था।' शंकराचार्य, श्रद्धालु भक्त पुजारियों के साथ-साथ चलते हुए बोले, संभव है वहां खोजने से अब विष्णु विग्रह मिल जाए।'

'यहां गंगा में विष्णु विग्रह छिपाया गया था। महात्मन, यह वह स्थान है', पुजारियों ने संकेत से शंकराचार्य को वह स्थान दिखाते हुए कहा।

'हम तो यहां बहुत खोज कर चुके, पर अभी तक हमें विष्णु विग्रह नहीं मिला।'

शंकराचार्य एक स्थान पर ध्यानमग्न होकर बैठे गए। थोड़ी देर में उठकर एक स्थान की ओर संकेत करते हुए बोले, 'इस स्थान में विष्णु विग्रह है, आप यहां खोज़ने का यत्न कीजिए।'

'हम अभी उस स्थान में विष्णु विग्रह की खोज करते हैं', कहते हुए कई श्रद्धालु गंगा में गोता लगाकर शंकराचार्य के बताए हुए स्थान में विष्णु विग्रह की खोज करने लगे।

थोड़ी देर में ही विष्णु विग्रह उन्हें मिल गया। श्रद्धालु भक्त पुजारी हर्ष में भर गए, शंकराचार्य की जय! यज्ञेश्वर विष्णु भगवान की जय! का घोष करते हुए श्रद्धालु भक्त विग्रह को मंदिर में ले आए।

शुभ दिन देखकर, मंदिर को स्वच्छ करके, पूजा का सभी सामान रखकर, कीर्तन, भजन, यज्ञ आदि सभी शुभ कार्य करके यज्ञेश्वर विष्णु भगवान की पुनः प्रतिष्ठा कर दी गई।

मंदिर में फिर से भक्तों की भीड़ एकत्र होने लगी। शंख, घंटे-घड़ियाल और कीर्तन की ध्वनि से मंदिर गूंज उठा।

शंकराचार्य कीर्तन-भजन पूजा के समय वहां जाते, फिर एकांत स्थान में आकर ध्यानमग्न हो जाते।

श्रद्धालु भक्त उनके दर्शन करके अनूठा आनंद अनुभव करते थे।

शंकराचार्य का मन, अब ध्यानावस्था में अधिक रहने लगा था।

शिष्य समय-समय पर उनका आवश्यक कार्य निबटाते रहते थे।

शंकराचार्य श्रद्धालु भक्तों को धर्म उपदेश भी देते थे। उनकी शंकाओं का समाधान भी करते पर एकांत होते ही ध्यानमग्न हो जाते।

थोड़ा समय ऋषिकेश में व्यतीत करके शंकराचार्य बदरीनाथ की ओर चल पड़े।

देवऋषियों की तपस्या भूमि हिमालय की तलहटी में बसे पवित्र तीर्थ-स्थान शंकराचार्य के मन में अनूठी अनिर्वचनीय भावों की सृष्टि कर रहे थे।

अब वो अधिक समय अंतर्मुख रहने लगे थे। उनके शिष्य ही धर्म-चर्चा करके पवित्र तीर्थों के महत्त्व के विषय में प्रश्न करके उन्हें बाहरी जगत की ओर आकर्षित करने का यत्न करते थे।

ऋषिकेश से थोड़ी दूर विदुरजी का तपस्या स्थल, व लक्ष्मण झूला देखते हुए शंकराचार्य गंगा को पार करके आगे बढ़े।

वनों से ढके ऊंचे पर्वत दुर्गम पथ पार करके शंकराचार्य व्यास आश्रम पहुंचे।

वहीं से श्रेष्ठ तीर्थ देव प्रयाग जाने का मार्ग है। अनकनंदा और भागीरथी का मिलन-क्षेत्र यही देव-प्रयाग है।

हिमालय के पांच प्रयागों में सबसे श्रेष्ठ-तीर्थ-स्थान है।

इस स्थान में राम-सीता, हर, पार्वती व गणेश आदि देवताओं व देवियों के मंदिर हैं।

शंकराचार्य ने सभी मंदिरों में देवी-देवताओं के दर्शन करके, पूजा-अर्चना की, फिर आगे की ओर चल पड़े।

हिमालय क्षेत्र में प्रवेश करते ही शंकराचार्य अंतर्मुख हो गए। शिष्य उनकी देह-रक्षा करते हुए साथ-साथ चल रहे थे।

चलने के समय ही, वह शिष्यों से वर्तालाप कर लेते थे। अधिक समय शंकराचार्य ध्यान में ही व्यतीत करते थे।

प्रातःकाल होते ही वह अपनी मंजिल की ओर चल पड़ते। सूर्य छिपने से पहले शिष्यों सहित किसी देवालय में विश्राम करते। फिर आगे की ओर चल पड़ते।

बिल्वकेदार को पार करके शंकराचार्य शिष्यों सहित श्रीनगर पहुंच गए।

श्रीनगर श्री क्षेत्र भी कहलाता था। प्राचीन समय में यह उत्तराखंड के राजाओं की राजधानी भी थी।

यहां अनेक मंदिर हैं, उनमें कमलेश्वर, शिव और श्री विष्णु मंदिर अधिक प्रसिद्ध हैं।

शंकराचार्य उन मंदिरों में गए, दर्शन किए, पुष्प फल चढ़ाकर पूजा-अर्चना की।

फिर विश्राम करने लगे, तभी कई ब्राह्मण उनके दर्शनों को आए। शंकराचार्य

ने आदर से उन्हें बिठाकर तीर्थ-स्थल विषय पर वार्तालाप किया।

'महात्मन्! इस क्षेत्र में तांत्रिकों द्वारा नरबलि दी जाती है। जिसके कारण हम सब दुखी हैं।' ब्राह्मणों ने शंकराचार्य की ओर देखते हुए कहा, 'अब हम आपकी शरण में आए हैं, आप ही हमें इस विषय में सुझाव दें।'

'क्या तांत्रिकों द्वारा नरबलि होने पर उसका कोई विरोध नहीं करता, नरबलि जैसा घोर पाप युक्त कर्म होता है उसे चुपचाप देखते रहते हैं।'

शंकराचार्य ने ब्राह्मणों की ओर देखते हुए कहा, 'इसका क्या कारण है?'

'महात्मन्! श्री यंत्रशिला, राजराजेश्वरी, कंस मर्दिनी, चामुंडा और महिष मर्दिनी—इन पांच सिद्ध पीठों में तांत्रिकों का अधिकार है। यहां देवी के सामने नरबलि देते हैं—यही प्रथा उन्होंने चलाई है, उसे अभी तक कोई रोक नहीं सका।'

'महात्मन्!' ब्राह्मणों के मुखिया ने नम्रता से शंकराचार्य के सामने झुकते हुए कहा, 'आप ही इस कुप्रथा को रोक सकते हैं।'

'हम यदि उन्हें इस दुष्कर्म से रोकते हैं तो तांत्रिक मरने-मारने को तैयार हो जाते हैं। कहते हैं, हमारे धार्मिक कार्यों में बाधा डालने वाले तुम कौन होते हो। हम सब तो उनके कार्यों से दुखी हैं, पर कुछ भी नहीं कर सकते।'

'तुम सब उन तांत्रिकों के गुरुओं को मेरे पास शास्त्रार्थ के लिए भेजो।' शंकराचार्य ने ब्राह्मणों को समझाते हुए कहा, 'संभव है शास्त्रार्थ द्वारा वह पराजित होकर इस दुष्कर्म को छोड़ दें।'

'महात्मन्! हम यह यत्न करेंगे,' कहते हुए ब्राह्मण शंकराचार्य के चरण छूकर अपने निवास-स्थान की ओर चल पड़े, उन्होंने शंकराचार्य की विद्वत्ता-ज्ञान की चर्चा अपने साथियों से कीं।

बड़े भारी विद्वान ज्ञानी शास्त्रज्ञाता छोटी आयु के संन्यासी शंकराचार्य यहां आए हुए हैं—सारे नगर में इसकी चर्चा होने लगी।

तांत्रिकों ने भी सुना वह छोटी आयु का संन्यासी हमारे धर्म गुरुओं से शास्त्रार्थ के लिए तैयार है तब वह अधिक प्रसन्न हुए।

भला हम जैसों से कैसे विजयी हो सकता है, पराजित होकर देवी के सामने अपनी बलि देगा।

सोचते हुए तांत्रिकों के समूह-के-समूह शंकराचार्य से शास्त्रार्थ के लिए शास्त्रार्थ-स्थल पर आए।

शंकराचार्य ने आदर से सभी को बैठने के लिए स्थान दिया। शास्त्रार्थ आरंभ हुआ।

तांत्रिक गुरुओं ने अपने धर्म में बलि प्रथा का होना धार्मिक तत्त्व बताया।

शंकराचार्य ने धर्मतत्त्व की यथार्थ व्याख्या करके शास्त्र प्रमाणों द्वारा बलि प्रथा का विरोध दिखाया, बलि का यथार्थ अर्थ समझाया।

तांत्रिक गुरु नरबलि का ठोस प्रमाण न दे सके, धर्म ग्रंथों में नरबलि का कहीं उल्लेख नहीं, वह जान गए थे। शंकराचार्य ने ठोस यथार्थ प्रमाण द्वारा व्याख्या करके तांत्रिकों के नरबलि दुष्कर्म की भर्त्सना करते हुए उन्हें पराजित कर दिया।

तांत्रिक धर्म के वास्तविक रूप का परिचय पाकर, उस छोटे संन्यासी की ओर देखते रह गए।

तांत्रिक अभी तक अपने को अधिक धर्म ज्ञाता समझे बैठे थे, यह छोटा-सा अनुभवहीन संन्यासी क्या हमसे विजयी हो सकेगा, यही सोचकर उन्होंने शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया था।

पर जब शंकराचार्य ने धर्म तत्त्व की यथार्थ प्रमाण द्वारा व्याख्या करके नरबलि जैसे वीभत्स कर्म की, तो तांत्रिकों के गुरु सिर झुकाकर बैठ गए।

उन्होंने पराजय स्वीकार कर ली, विजयी को अधिकार था वो जो चाहे उनसे व्यवहार करे।

शंकराचार्य ने सभी दर्शकों के सामने तांत्रिकों से नरबलि की वीभत्स प्रथा को बंद कराने की शपथ दिलाई।

श्रद्धालु स्रोता दर्शकों ने हर्ष में भरकर शंकराचार्य का जयघोष किया।

शास्त्रार्थ-स्थल जयघोष से गूंज उठा। उन्होंने वह शिलाखंड जिस पर खड़ा करके मनुष्य की बलि दी जाती थी नदी में डुबो दिया।

धर्म के नाम पर कितना बड़ा क्रूर कर्म किया जाता था। भला आद्यशक्ति जो समस्त प्राणियों की जननी है, अपनी संतान का रुधिर-पान करके या मस्तक की भेंट लेकर प्रसन्न होगी।

कभी नहीं! कभी नहीं!! तेजस्वी संन्यासी की वाणी तांत्रिकों के हृदय को बेधती चली गई।

पंडित, ब्राह्मण, दर्शक आश्चर्य से उस छोटे-से तेजस्वी ज्ञानी संन्यासी की ओर देखते रह गए।

जिसने इतने भारी तांत्रित गढ़ की ईंट अपने शास्त्र प्रमाणों द्वारा हिला दी।

तांत्रिकों ने संन्यासी शंकराचार्य के सामने की हुई शपथ का पालन किया।

फिर कभी वहां देवी के सामने नरबलि नहीं दी गई।

# 13

तांत्रिकों से नरबलि प्रथा बंद करवाकर शंकराचार्य रुद्रप्रयाग होते हुए नंदप्रयाग आए।

नंदप्रयाग की गणना हिमालय के प्रसिद्ध तीर्थों में होती है।

बालसंन्यासी शंकराचार्य, नंदप्रयाग में तीर्थ-यात्रा करते हुए आए हैं।

यह सूचना सुनते ही श्रद्धालु भक्तों की भीड़ शंकराचार्य के दर्शनों को आने लगी।

शंकराचार्य प्रेम से श्रद्धालुओं को बिठाते, उन्हें वैदिक धर्म पालन का उपदेश देते।

श्रद्धालुभक्त, तेजस्वी बाल संन्यासी की ज्ञान भरी मधुर वाणी मंत्र-मुग्ध से सुनते और उनके बताए धर्म मार्ग पर चलने का यत्न करते।

नंदप्रयाग में अपने श्रद्धालुओं को धर्म मार्ग पर चलने की प्रेरणा देकर, शंकराचार्य वहां से आगे की ओर चले।

यहां से बदरीक्षेत्र आरंभ हो जाता है। अलकनंदा और मंदाकनी नदियों का मिलन होता है। अनूठा दृश्य दिखाई देता है।

महर्षि वशिष्ठ ने शिव को प्रसन्न करने के लिए यहीं घोर तपस्या की थी। उन्होंने यहीं उन्हें वरदान दिया था।

वशिष्ठेश्वर शिव की महर्षि वशिष्ठ ने ही मंदिर में प्रतिष्ठा की थी।

उससे थोड़ी देर विरहीगंगा और विरहेश्वर महादेव का मंदिर है।

प्राचीन काल में सती के वियोग से व्याकुल होकर भोलानाथ शिव ने यहीं तपस्या की थी।

शंकराचार्य पवित्र तीर्थ-स्थानों का देवी-देवताओं के मंदिरों का दर्शन करते,

शिष्यों को तीर्थों का महत्त्व समझाते हुए अपनी मंजिल की ओर जा रहे थे।

लोकोत्तर महामानव अपने मन को निर्गुण निर्विकल्प भूमि से उतारकर सगुण ब्रह्मभाव का आश्रय लेते हैं।

अरूप के प्रतिष्ठान से उतरकर रूप की भूमि में साधक को मन लगाने का साधन बताते हैं।

शंकराचार्य अपने श्रद्धालु भक्तों व शिष्यों को अधिकारी अनुसार सगुण-निर्गुण साधना का महत्त्व समझाते हुए, प्रकृति दृश्य देखते आगे बढ़ रहे थे।

वह चलते-चलते गरुड़गंगा के तट पर पहुंच गए। इस स्थान पर परमभक्त गरुड़ ने भगवान विष्णु के लिए घोर तपस्या की थी।

हिमालय इन्हीं महामानवों की तपस्या भूमि रही है। इसी कारण हिमालय को देवात्मा कहा है।

शंकराचार्य ने शिष्यों को समझाते हुए कहा, जिस स्थान पर कोई महामानव साधना करके सिद्धि लाभ करता है उस स्थान में उसकी अनुभूति की भावधारा दीर्घकाल तक रहती है।

उसके पश्चात होने वाले साधक उसी भावधारा से अपने आध्यात्मिक जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा पाते हैं।

शंकराचार्य अपने शिष्यों को धार्मिक स्थलों का महत्त्व समझाते, पवित्र तीर्थों के विषय में बताते हुए दुर्गम यात्रा कर रहे थे।

मार्ग में अनेक पर्वतमालाओं को उन्हें पार करना पड़ा। घने बीहड़ वनों में विश्राम के लिए ठहरना पड़ा।

पर वह साहस धैर्य से आगे ही बढ़ते चले जा रहे थे।

मार्ग में विश्राम के लिए शंकराचार्य ज्योतिर्धाम ठहरे। श्रद्धालु भक्तों ने सुना, शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित ज्योतिर्धाम पधारे हैं। तब वह अपने साथियों सहित उस तेजस्वी संन्यासी के दर्शन को आए।

ब्रह्मतेज से चमकना मुख, मधुर वाणी और ज्ञान के भंडार उस छोटी आयु वाले बालसंन्यासी शंकराचार्य के दर्शन करके वह अधिक प्रसन्न हुए।

ज्योतिर्धाम के राजा अधिक धर्मपरायण और साधु संतों का आदर करने वाले थे।

उन्होंने शंकराचार्य की प्रतिभा शास्त्र ज्ञान के विषय में सुना तो अपने कर्मचारी दरबारियों सहित शंकराचार्य के दर्शन करने आए।

उस तेजस्वी संन्यासी की ज्ञान, प्रतिभा, शास्त्र ज्ञान को देखकर राजा

बालसंन्यासी शंकराचार्य से अधिक ही प्रभावित हुए।

इतनी छोटी आयु में इतना ज्ञान, बड़े-बड़े विद्वान पंडित भी इनकी प्रतिभा ज्ञान के आगे झुक रहे हैं।

राजा ने छोटी आयु के संन्यासी शंकराचार्य के चरणों में श्रद्धा के पुष्प चढ़ाए और उनके चरण छूते हुए शिष्य बनाने की प्रार्थना की।

शंकराचार्य ने धर्मपरायण राजा को दीक्षा देकर अपना शिष्य बना लिया और उन्हें वैदिक धर्म के विषय में ज्ञान करवाकर वैदिक धर्म का अनुयायी बना दिया।

ज्योतिर्धाम के राजा ने अधिक आग्रह करके शंकराचार्य को ज्योतिर्धाम ठहराया।

उन्होंने कहा, 'गुरुदेव! आप यहां थोड़े दिन और ठहरकर, हमें अपने दर्शनों का सेवा का अवसर देकर हमे कृतार्थ करें।

शंकराचार्य ने राजा का आग्रह मान लिया और थोड़े दिन वहां निवास किया। श्रद्धालु जनता समूह-के-समूह उन तेजस्वी बालसंन्यासी के दर्शन करने आती और उनके ब्रह्मतेज से चमकते मुख को अपलक देखती रह जाती।

थोड़े दिन ज्योतिर्धाम निवास कर श्रद्धालु जनता को वैदिक धर्म पर चलने की प्रेरणा देते हुए शंकराचार्य विष्णुप्रयाग पहुंचे।

वहां से धौलिगंगा, ब्रह्मकुंड, विष्णुकुंड, शिवकुंड और गणेश तीर्थादि अनेक पवित्र प्रसिद्ध तीर्थों का दर्शन करते हुए, शंकराचार्य पांडुकेश्वर पहुंच गए।

शंकराचार्य ने उस स्थान का महत्त्व अपने शिष्यों को बताया।

राजा पांडु ने यहां घोर तपस्या की थी और आराधना करके, आशुतोष शिव के दर्शन यहीं किए थे।

इसी कारण इस स्थान के महादेव का नाम पाण्डुकेश्वर है।

संन्यासी शंकराचार्य अद्वैत-ब्रह्मानुभूति के उच्च स्तर तक पहुंच चुके थे।

अगाध ज्ञान, शास्त्रज्ञान, प्रतिभा के अधिकारी भी बन चुके थे।

अभी उनकी आयु बारह वर्ष की थी। पर देवकार्य-साधन के लिए लगभग तीन महीने तक वह यात्रा करते रहे।

पथ-कष्ट सहते हुए नद, नदी, हिंसक जीव-जंतुओं से भरे वन व दुर्गम गिरि-कंदराओं को पार करते हुए वह आगे-ही-आगे बढ़ते रहे।

चलते-चलते बदरीक्षेत्र के समीप पहुंच गए। शिष्य हर्ष में भर गए और अपने गुरु शंकराचार्य को संकेत से दिखाते हुए कहने लगे, 'देखिए गुरुदेव! उज्ज्वल सफेद

हिम से ढके हुए वह नर और नारायण पर्वत दिखाई दे रहे हैं।'

'इस पुण्य भूमि का अनूठा सौंदर्य है वत्स', शंकराचार्य ने मुस्कराते हुए कहा, 'इसी स्थान पर नर और नारायण ऋषियों ने तपस्या की थी।'

'गुरुदेव! हिम शिखर की घाटी की गोद से निकलकर इस ओर आती हुई अलकनंदा नदी हिमालय का संदेश सुनाती हुई-सी प्रतीत हो रही है।'

'उधर देखो, बदरीनारायण मंदिर के समीप ही तप्त कुंड है', शंकराचार्य ने शिष्यों को संकेत से दिखाते हुए कहा।

प्रकृति की यह लीला देखो, उधर बर्फ से ढकी ऊंची चोटियो वाले नरनारायण पर्वत, शीश उठाए बीते हुए युग की गाथा सुनाते हुए प्रतीत हो रहे हैं।

इधर हिमालय की गोद से निकलकर बर्फ की शिलाओं को सूर्य की किरणों से जल में परिवर्तन कराकर अपने में समेटती हुई यह अलकनंदा नाम की नदी, नद नालों को मिलाने, आगे की ओर बढ़ी जा रही है।

वह संदेश देती प्रतीत होती है, जीवन में कुछ अच्छे कार्य करने हैं तो आगे बढ़ो, रुको नहीं।

'एक ओर बर्फ-सी शीतल नदी और उससे थोड़ी दूर ऊंचाई पर गर्म जल का कुंड, प्रकृति का कैसा अनूठा दृश्य है गुरुदेव।'

'चलो पहले तप्त कुंड में स्नान करके मार्ग की थकान उतार लें', कहते हुए शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित तप्त कुंड में स्नान करने के लिए चल पड़े।

'इस पुण्य भूमि के अनूठे सौंदर्य ने मन में अनूठा ही आनंद भर दिया है, गुरुदेव!' सनंदन ने स्नान करके शंकराचार्य के वस्त्र एक ओर बैठकर धोते हुए कहा, 'ऐसा अनूठा दृश्य और कहीं नहीं मिल सकता।'

'कितना शांत और मन को शांति दिलाने वाला वातावरण है सनंदन।'

'यहां नर नारायण ऋषियों ने तपस्या की, इस पवित्र भूमि पर अपने आप ही मन उस सृष्टिकर्त्ता के ध्यान में मग्न होने लगता है गुरुदेव।'

'एक ओर हिम का शीतल जल अंक में संजोए अलकनंदा शांत बह रही है।'

'दूसरी ओर तप्त कुंड जिसमें उबलता हुआ जल प्रकृति की अनूठी लीला दर्शा रहा है।'

'हां सनंदन, प्रकृति नदी प्रत्येक पल अनूठी लीला दिखाती है, अभी सूर्य की किरणें ऊंचे बर्फ से ढके पर्वत शिखरों पर पड़कर इंद्रधनुषी छटा दिखा रही थी। अभी आकाश में काले बादल छाकर कालिमा बिखेर गए।

'मानव के जीवन में इसी प्रकार कभी हर्ष का प्रकाश मन पर छा जाता है, कभ
दुख की कालिमा मन को कलुषित कर देती है गुरुदेव!'

'मानव को सुख में परदुख नहीं भूलना चाहिए, और दुख में रोदन करके दूस
को भी दुखी नहीं करना चाहिए।'

'गुरुदेव यही आप सब संत-महात्मा कहते हैं।'

'सनंदन मानव की पहचान ही दुख में होती है, मानव को परखने की सच्च
कसौटी दुख है।

'सनंदन गुरुदेव के सामने बड़ी-बड़ी बातें करने लगे हो, भला दुख में कौ
ऐसा साहसी होगा जो घबरा न जाए। और सुख में किसे प्रसन्नता नहीं होगी।' समी
बैठे सनंदन के गुरु भाई ने सनंदन की बात काटते हुए कहा, 'सुख में सभी मान
को सुख मिलता है और दुख में दुख।'

'बंधु! सच्चा साधक महात्मा वही है, जिसे दुख विचलित न कर सके, औ
सुख में मानवता को भूल न जाए।'

'सनंदन ठीक कह रहा है दुख मानव को परखने की कसौटी है', शंकराचार
ने सनंदन की ओर देखते हुए कहा। 'इसका प्रत्यक्ष प्रमाण सनंदन है।'

'गुरुदेव! आपकी कृपा दृष्टि सनंदन पर ही अधिक रहती है', तीसरे शिष्
ने लम्बी सांस लेते हुए कहा, 'सनंदन भाग्यशाली है।'

'वत्स, तुम सब मेरे लिए समान हो....याद रखो, किसी से ईर्ष्या करना भ
साधना में बाधा डालना है। चलो अब हम सब स्नान कर चुके....श्री बदरीविशाल
के मंदिर में नारायण विग्रह के दर्शन करने चलें।' कहते हुए शंकराचार्य सभ
शिष्यों सहित श्री बदरीविशाल के मंदिर में नारायण विग्रह के दर्शन करने चल
पड़े।

# 14

शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित बदरी विशाल मंदिर में नारायण विग्रह के दर्शन करने गए। पर वहां मंदिर में नारायण प्रतिमा नहीं थी। उस स्थान पर शालिग्राम शिला को भगवान नारायण मानकर पूजा की जाती थी।

शंकराचार्य ने भी पूजा की, पर उनका मन प्रसन्न नहीं हुआ। उन्होंने श्रद्धालु भक्तों से पूछा, 'मंदिर नारायण प्रतिमा से शून्य क्यों है? मंदिर में नारायण विग्रह नहीं है तो कहां है? हमने तो सुना था इस पुण्य-क्षेत्र में भगवान चारों युगों में निवास करते हैं।'

'महात्मन्! चीनी दस्युओं के अत्याचार से हमारे पूर्वजों ने समीप के किसी कुंड में श्री नारायण विग्रह छिपा दिया था। उसके पश्चात तो अनेक बार विग्रह की खोज की गई, पर नारायण विग्रह नहीं मिला।

तब श्रद्धालु भक्तों ने शालिग्राम शिला को ही भगवान मानकर, पूजादि कार्य करने आरंभ कर दिए।'

शंकराचार्य ने श्रद्धालु भक्तों से शालिग्राम पूजन के विषय में सुना और ध्यानमग्न हो गए।

थोड़ी देर बाद उन्होंने आंखें खोलीं और श्रद्धालु भक्तों की ओर देखते हुए कहा, 'श्रद्धालु भक्तों, यदि किसी प्रकार नारायण विग्रह को खोज लिया जाए, तब आप सब क्या विग्रह को पुनः प्रतिष्ठा कर यथाविधि पूजादि कार्य करने को तैयार हैं।'

'महात्मन्! हम सब नारायण विग्रह की आदर से प्रतिष्ठा करेंगे, पूजा सेवादि के लिए भी हम तैयार हैं।'

'यदि नारायण विग्रह मिल जाए तो हम सब अपने को धन्य समझेंगे महात्मन्!'

शंकराचार्य थोड़ी देर ध्यानमग्न रहे, फिर उठकर नारदकुंड की ओर चले।

सभी शिष्य, पुजारी, श्रद्धालु, दर्शक, यात्री उनके पीछे-पीछे चले।

नारद कुंड के समीप आकर, शंकराचार्य थोड़ी देर ध्यानमग्न हुए और फिर कुंडजल में उतर गए।

कुंड के साथ अलकनंदा का संयोग है....श्रद्धालु भक्त यह जानते थे। शंकराचार्य को नारदकुंड में उतरते देखकर वह घबराकर चिल्लाए, 'महात्मन्! कुंड में मत उतरिए....अलकनंदा का कुंड से सम्बंध है।'

'यह स्रोत जल, नदी के अथाह जल में खींच ले जाएगा। यतीवर यहां प्राणों का संकट है। आप कुंड से बाहर आ जाइए।'

सभी श्रद्धालु भक्त शंकराचार्य के कुंड से बाहर निकलने के लिए प्रार्थना करने लगे। पर शंकराचार्य तो नारायण विग्रह को खोजने के लिए ही जलकुंड में उतरे थे। खाली हाथ बाहर नहीं आए।

नारायण की एक चतुर्भुजी मूर्ति हाथ में लेकर जल से बाहर आ गए। पर विग्रह तो खंडित था। दक्षिण हाथ ही कई अंगुलियां खंडित थी।

खंडित मूर्ति की तो पूजा नहीं की जा सकेगी, सोचते हुए शंराचार्य ने वह नारायण विग्रह जल में विसर्जित कर दिया।

और पुनः कुंड में गोता मारा, और फिर एक नारायण विग्रह जल से निकाल लाए। अब भी नारायणमूर्ति की हाथ की कई अंगुलियां खंडित थीं।

शंकराचार्य ने मूर्ति को फिर जल में विसर्जित कर दिया और गहरा गोता मारा और एक नारायण विग्रह हाथ में लेकर जल के बाहर आए। पर उस विग्रह की वही दक्षिण हाथ की अंगुलियां खंडित थीं।

शंकराचार्य विग्रह हाथ में लेकर सोचने लगे, यह क्या दैवी माया है। तीनों बार विग्रह खंडित निकला। क्या किया जाए।

तभी आकाशवाणी हुई, 'शंकर तुम सोच न करो, इसी नारायण विग्रह की प्रतिष्ठा करो कलियुग में इस विग्रह की ही पूजा होगी।'

शंकराचार्य हर्षविभोर हो गए, भक्तिभाव से जनहितकारी, भुवन-मंगल नारायण विग्रह को कंधे पर रखकर बाहर निकल आए।

श्रद्धालु भक्तों, शिष्यों के जयघोष की ध्वनि चारों ओर गूंज उठी। चतुभुर्ज नारायण की मुर्ति कंधे पर रखे हुए, शंकराचार्य मंदिर में प्रविष्ट हुए।

श्रद्धालु भक्तों, पुजारियों ने शास्त्रविधि अनुसार अभिषेक कार्य करके, धूपदीप आदि सुगन्ध पदार्थ जलाकर यथाविधि पूजा-आरती करके, सबको प्रसाद दिया।

सभी श्रद्धालु मानव इस अलौकिक घटना को देखकर आश्चर्य में भर गए।

शंकराचार्य ने मंदिर की पूजा सेवा के लिए नामपुरि ब्राह्मण नियुक्त कर दिया और शिष्यों सहित व्यास आश्रम की ओर चले पड़े।

बदरी विशाल मंदिर से थोड़ी दूर एक पर्वत पर प्राचीन समय में व्यास आश्रम स्थित था।

यह एक बड़ी भारी गुफा थी। गुफा से थोड़ी दूर ही अलकनंदा और केशव गंगा का संगम-स्थल केशव प्रयाग है।

वहां से चारों ओर हिम से ढकी पर्वत चोटियां दिखाई देती हैं।

कहते हैं, इस एकांत निर्जन स्थान में बादनारायण ने लक्ष श्लोकी महाभारत की रचना की थी।

गुफा के समीप ही दक्षिण भाग में सरस्वती देवी का और वाम भाग में गजानन गणपति का मंदिर है।

इसके विषय में एक किंवदंती है। व्यासदेव ने मृत्युलोक वासी मनुष्यों के लिए उपयोगी लाख श्लोकों की महाभारत रचना मन-ही-मन करी। फिर सोचने लगे, इस ग्रंथ को शिष्यों को पढ़ाकर इसका संसार में प्रचार करें पर बिना लिपिबद्ध किए यह संभव नहीं, व्यासजी यह सोच ही रहे थे, तभी ब्रह्माजी आए। व्यासजी ने उनका स्वागत करके आसन पर बिठाया।

ब्रह्माजी को व्यासजी ने महाभारत रचना के विषय में बताया, बिना लिपिबद्ध किए यह संसार में उपयोगी नहीं हो सकता।

ब्रह्माजी ने सुझाव दिया, तुम गणेशजी का स्मरण करो, वह आपके इस ग्रंथ के लिपिकार होंगे।

व्यास देव ने तुरंत ही गणेशजी का स्मरण किया, गणेशजी स्मरण करते ही व्यास देव के समीप आए और बोले, 'मैं आपके ग्रंथ का लिपिकार बनने को तैयार हूं पर... ।'

'पर क्या कठिनाई है पूज्य, यह तो बताइए।' व्यासदेव ने गणेशजी के आगे नम्रता से झुकते हुए कहा, 'संभव है वह कठिनाई न हो।'

'व्यासजी! लिखते समय मेरी लेखनी क्षण भर के लिए भी नहीं रुकेगी, यदि आप शीघ्र श्लोक न बोल सकें, मेरी लेखनी रुक गई, तो मैं आगे नहीं लिख सकूंगा।'

व्यासजी ने मन-ही-मन सोचा, मेरी इस रचना में आठ हजार कूट श्लोक हैं, जिनका अर्थ मेरा पुत्र शुकदेव जानता है या मैं जानता हूं।

व्यासजी ने मन-ही-मन यह सोचते हुए गणेशजी से कहा, 'पूज्य! जो कुछ भी

मैं कहूंगा, उसके अर्थ समझे बिना आप नहीं लिखिएगा।'

'ठीक है हमें स्वीकार है, देवी सरस्वती को भी साक्षीरूप में यहां बुला लीजिए।'

देवी सरस्वती आकर एक ओर आसन पर बैठ गईं व्यासजी ने श्लोक बोलने आरंभ किए, गणेशजी लिपिबद्ध करने लगे।

सर्वशास्त्र निपुण गणेशजी को कूट श्लोकों के अर्थ समझने में थोड़ा-सा समय लगता।

इतने समय में व्यासजी कई नए श्लोकों की रचना कर लेते। इस प्रकार संपूर्ण महाभारत लिखा गया। साक्षी रूप में सरस्वती देवी भी वहां उपस्थित रहीं।

उसी प्राचीन स्मृति में वह प्रतिमाएं बनाई गई हैं।

व्यास तीर्थ में आने के पश्चात शंकराचार्य ने कुछ दिन ध्यान अवस्था में व्यतीत किए।

फिर उनकी प्रवृत्ति भाष्य रचना की ओर हुई। भूलोक, देवलोक ब्रह्मसूत्र के भाष्य की रचना प्रारंभ हुई।

उन्होंने यहां रहकर चार वर्ष में पचासों जनकल्याण के लिए रचनाएं कीं।

ब्रह्मसूत्र भाष्य, गीता भाष्य, विष्णु सहस्रनाम भाष्य अनेक भाष्य ग्रंथों की रचना की, सभी रचनाएं संस्कृत में थीं।

विवेक चूड़ामणि, प्रबोध सुधाकर उपदेश साहस्त्री आदि अनेक प्रसिद्ध ग्रंथों की शंकराचार्य ने रचना की।

ज्यों-ज्यों भाष्य रचना होती, शंकराचार्य वह रचित अंश अपने शिष्यों को भी पढ़ाते जाते।

भाष्य रचना के पश्चात, शिष्य व साधकों को योग साधना का उपदेश भी देते थे।

भाष्य पाठ, शास्त्र मीमांसा और योग साधना की शिक्षा लेकर शंकराचार्य के साधक शिष्यों के मन उच्च आध्यात्मिक भावना में लीन रहने लगे थे।

उन सभी शिष्यों में सनंदन नाम का शिष्य अधिक उच्च कोटि का साधक था।

शंकराचार्य की सेवा में दिन-रात व्यतीत कर देता था। शंकराचार्य भी उससे अधिक प्रेम करते थे।

जिसके कारण और शिष्य सनंदन से ईर्ष्या करने लगे और उस अवसर की तलाश मे रहने लगे, किस प्रकार सनंदन को आश्चर्य की दृष्टि में गिरा दिया जाए।

# 15

शंकराचार्य स्नानादि नित्यकर्मों से निबटकर भाष्य सूत्रों की रचना में लगे हुए थे।

ब्रह्मसूत्र, द्वादश उपनिषद्, भगवत् गीता, विष्णु सहस्रनाम और सनत्सुजातीय आदि सोलह प्रसिद्ध ग्रंथों की भाष्य रचना पूरी हो चुकी थी।

समस्त भाष्य शंकराचार्य ने शिष्यों को पढ़ा दिए थे।

विभिन्न साधनाओं के साथ शम, दम, तितिक्षा, उपरति, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि की शिक्षा द्वारा शंकराचार्य अपने शिष्यों को आध्यात्मिक क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त करवा रहे थे।

कई शिष्य इतना ज्ञान प्राप्त कर लेने पर भी ईर्ष्या-द्वेष नहीं छोड़ सके थे। शंकराचार्य की सनंदन पर अधिक कृपा है। इसी कारण वह सनंदन से ईर्ष्या करने लगे थे।

शंकराचार्य ने ईर्ष्या भाव उनके मन से निकालने का निर्णय कर लिया।

एक दिन अपने नित्य कर्मों से निबटकर शंकराचार्य शिष्यों को ध्यान, धारणा व एकाग्रता सच्ची लगन से क्या नहीं हो सकता यह समझा रहे थे।

सनंदन किसी आवश्यक कार्य से अलकनंदा के दूसरे तट पर गया हुआ था।

अलकनंदा पर पुल बना हुआ था। पुल पर से ही दूसरे तट पर जाते थे।

क्योंकि अलकनंदा में तो हिमखंड पड़े रहते थे। जिससे मनुष्य अलकनंदा में तैरकर भी दूसरे तट पर नहीं जा सकता था।

शंकराचार्य के शिष्य अपने गुरु से साधना विषय में पढ़ रहे थे, पर उनके मन में और ही विचार आ रहे थे।

सनंदन आज गुरु सेवा छोड़कर अलकनंदा के दूसरे तट पर क्यो गया है, अवश्य कोई भेद है।

मैं कहूंगा, उसके अर्थ समझे बिना आप नहीं लिखिएगा।'

'ठीक है हमें स्वीकार है, देवी सरस्वती को भी साक्षीरूप में यहां बुला लीजिए।'

देवी सरस्वती आकर एक ओर आसन पर बैठ गई व्यासजी ने श्लोक बोलने आरंभ किए, गणेशजी लिपिबद्ध करने लगे।

सर्वशास्त्र निपुण गणेशजी को कूट श्लोकों के अर्थ समझने में थोड़ा-सा समय लगता।

इतने समय में व्यासजी कई नए श्लोकों की रचना कर लेते। इस प्रकार संपूर्ण महाभारत लिखा गया। साक्षी रूप में सरस्वती देवी भी वहां उपस्थित रहीं।

उसी प्राचीन स्मृति में वह प्रतिमाएं बनाई गई हैं।

व्यास तीर्थ में आने के पश्चात शंकराचार्य ने कुछ दिन ध्यान अवस्था में व्यतीत किए।

फिर उनकी प्रवृत्ति भाष्य रचना की ओर हुई। भूलोक, देवलोक ब्रह्मसूत्र के भाष्य की रचना प्रारंभ हुई।

उन्होंने यहां रहकर चार वर्ष में पचासों जनकल्याण के लिए रचनाएं कीं।

ब्रह्मसूत्र भाष्य, गीता भाष्य, विष्णु सहस्रनाम भाष्य अनेक भाष्य ग्रंथों की रचना की, सभी रचनाएं संस्कृत में थीं।

विवेक चूड़ामणि, प्रबोध सुधाकर उपदेश साहस्त्री आदि अनेक प्रसिद्ध ग्रंथों की शंकराचार्य ने रचना की।

ज्यों-ज्यों भाष्य रचना होती, शंकराचार्य वह रचित अंश अपने शिष्यों को भी पढ़ाते जाते।

भाष्य रचना के पश्चात, शिष्य व साधकों को योग साधना का उपदेश भी देते थे।

भाष्य पाठ, शास्त्र मीमांसा और योग साधना की शिक्षा लेकर शंकराचार्य के साधक शिष्यों के मन उच्च आध्यात्मिक भावना में लीन रहने लगे थे।

उन सभी शिष्यों में सनंदन नाम का शिष्य अधिक उच्च कोटि का साधक था।

शंकराचार्य की सेवा में दिन-रात व्यतीत कर देता था। शंकराचार्य भी उससे अधिक प्रेम करते थे।

जिसके कारण और शिष्य सनंदन से ईर्ष्या करने लगे और उस अवसर ही तलाश मे रहने लगे, किस प्रकार सनंदन को आश्चर्य की दृष्टि में गिरा दिया जाए।

# 15

शंकराचार्य स्नानादि नित्यकर्मों से निबटकर भाष्य सूत्रों की रचना में लगे हुए थे।

ब्रह्मसूत्र, द्वादश उपनिषद्, भगवत् गीता, विष्णु सहस्रनाम और सनत्सुजातीय आदि सोलह प्रसिद्ध ग्रंथों की भाष्य रचना पूरी हो चुकी थी।

समस्त भाष्य शंकराचार्य ने शिष्यों को पढ़ा दिए थे।

विभिन्न साधनाओं के साथ शम, दम, तितिक्षा, उपरति, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि की शिक्षा द्वारा शंकराचार्य अपने शिष्यों को आध्यात्मिक क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त करवा रहे थे।

कई शिष्य इतना ज्ञान प्राप्त कर लेने पर भी ईर्ष्या-द्वेष नहीं छोड़ सके थे। शंकराचार्य की सनंदन पर अधिक कृपा है। इसी कारण वह सनंदन से ईर्ष्या करने लगे थे।

शंकराचार्य ने ईर्ष्या भाव उनके मन से निकालने का निर्णय कर लिया।

एक दिन अपने नित्य कर्मों से निबटकर शंकराचार्य शिष्यों को ध्यान, धारणा व एकाग्रता सच्ची लगन से क्या नहीं हो सकता यह समझा रहे थे।

सनंदन किसी आवश्यक कार्य से अलकनंदा के दूसरे तट पर गया हुआ था।

अलकनंदा पर पुल बना हुआ था। पुल पर से ही दूसरे तट पर जाते थे।

क्योंकि अलकनंदा में तो हिमखंड पड़े रहते थे। जिससे मनुष्य अलकनंदा में तैरकर भी दूसरे तट पर नहीं जा सकता था।

शंकराचार्य के शिष्य अपने गुरु से साधना विषय में पढ़ रहे थे, पर उनके मन में और ही विचार आ रहे थे।

सनंदन आज गुरु सेवा छोड़कर अलकनंदा के दूसरे तट पर क्यो गया है, अवश्य कोई भेद है।

मैं कहूंगा, उसके अर्थ समझे बिना आप नहीं लिखिएगा।'

'ठीक है हमें स्वीकार है, देवी सरस्वती को भी साक्षीरूप में यहां बुला लीजिए।'

देवी सरस्वती आकर एक ओर आसन पर बैठ गई व्यासजी ने श्लोक बोलने आरंभ किए, गणेशजी लिपिबद्ध करने लगे।

सर्वशास्त्र निपुण गणेशजी को कूट श्लोकों के अर्थ समझने में थोड़ा-सा समय लगता।

इतने समय में व्यासजी कई नए श्लोकों की रचना कर लेते। इस प्रकार संपूर्ण महाभारत लिखा गया। साक्षी रूप में सरस्वती देवी भी वहां उपस्थित रहीं।

उसी प्राचीन स्मृति में वह प्रतिमाएं बनाई गई हैं।

व्यास तीर्थ में आने के पश्चात शंकराचार्य ने कुछ दिन ध्यान अवस्था में व्यतीत किए।

फिर उनकी प्रवृत्ति भाष्य रचना की ओर हुई। भूलोक, देवलोक ब्रह्मसूत्र के भाष्य की रचना प्रारंभ हुई।

उन्होंने यहां रहकर चार वर्ष में पचासों जनकल्याण के लिए रचनाएं कीं।

ब्रह्मसूत्र भाष्य, गीता भाष्य, विष्णु सहस्रनाम भाष्य अनेक भाष्य ग्रंथों की रचना की, सभी रचनाएं संस्कृत में थीं।

विवेक चूड़ामणि, प्रबोध सुधाकर उपदेश साहस्त्री आदि अनेक प्रसिद्ध ग्रंथों की शंकराचार्य ने रचना की।

ज्यों-ज्यों भाष्य रचना होती, शंकराचार्य वह रचित अंश अपने शिष्यों को भी पढ़ाते जाते।

भाष्य रचना के पश्चात, शिष्य व साधकों को योग साधना का उपदेश भी देते थे।

भाष्य पाठ, शास्त्र मीमांसा और योग साधना की शिक्षा लेकर शंकराचार्य के साधक शिष्यों के मन उच्च आध्यात्मिक भावना में लीन रहने लगे थे।

उन सभी शिष्यों में सनंदन नाम का शिष्य अधिक उच्च कोटि का साधक था।

शंकराचार्य की सेवा में दिन-रात व्यतीत कर देता था। शंकराचार्य भी उससे अधिक प्रेम करते थे।

जिसके कारण और शिष्य सनंदन से ईर्ष्या करने लगे और उस अवसर की तलाश मे रहने लगे, किस प्रकार सनंदन को आश्चर्य की दृष्टि में गिरा दिया जाए।

## 15

शंकराचार्य स्नानादि नित्यकर्मों से निबटकर भाष्य सूत्रों की रचना में लगे हुए थे।

ब्रह्मसूत्र, द्वादश उपनिषद्, भगवत् गीता, विष्णु सहस्रनाम और सनत्सुजातीय आदि सोलह प्रसिद्ध ग्रंथों की भाष्य रचना पूरी हो चुकी थी।

समस्त भाष्य शंकराचार्य ने शिष्यों को पढ़ा दिए थे।

विभिन्न साधनाओं के साथ शम, दम, तितिक्षा, उपरति, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि की शिक्षा द्वारा शंकराचार्य अपने शिष्यों को आध्यात्मिक क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त करवा रहे थे।

कई शिष्य इतना ज्ञान प्राप्त कर लेने पर भी ईर्ष्या-द्वेष नहीं छोड़ सके थे। शंकराचार्य की सनंदन पर अधिक कृपा है। इसी कारण वह सनंदन से ईर्ष्या करने लगे थे।

शंकराचार्य ने ईर्ष्या भाव उनके मन से निकालने का निर्णय कर लिया।

एक दिन अपने नित्य कर्मों से निबटकर शंकराचार्य शिष्यों को ध्यान, धारणा व एकाग्रता सच्ची लगन से क्या नहीं हो सकता यह समझा रहे थे।

सनंदन किसी आवश्यक कार्य से अलकनंदा के दूसरे तट पर गया हुआ था।

अलकनंदा पर पुल बना हुआ था। पुल पर से ही दूसरे तट पर जाते थे।

क्योंकि अलकनंदा में तो हिमखंड पड़े रहते थे। जिससे मनुष्य अलकनंदा में तैरकर भी दूसरे तट पर नहीं जा सकता था।

शंकराचार्य के शिष्य अपने गुरु से साधना विषय में पढ़ रहे थे, पर उनके मन में और ही विचार आ रहे थे।

सनंदन आज गुरु सेवा छोड़कर अलकनंदा के दूसरे तट पर क्यो गया है, अवश्य कोई भेद है।

गुरुजी हमारे से अधिक सनंदन को ही योग्य समझते हैं।

जितनी कृपा-दृष्टि सनंदन पर है—उतनी कृपादृष्टि गुरुजी की हम पर नहीं है।

शंकराचार्य शिष्यों के मन के भाव जान चुके थे। सनंदन इन सबसे श्रेष्ठ है यह नादान यह नहीं जानते, नाहक उससे ईर्ष्या करते हैं।

इन शिष्यों के मन से ईर्ष्या के भाव नष्ट करने ही होंगे, सनंदन की श्रेष्ठता की परीक्षा लेनी होगी।

शंकराचार्य ने मन-ही-मन यह निर्णय कर लिया। जब शिष्य ध्यान-साधना के विषय में शिक्षा ले चुके, तब अचानक ही शंकराचार्य ने सनंदन को पुकारा, 'सनंदन! सनंदन!! तुम कहां हो यहां आओ।'

''गुरुदेव! सनंदन तो अलकनंदा के दूसरे तट पर किसी कार्य से गया है, यहां नहीं है।' शिष्यों ने शंकराचार्य की ओर देखते हुए कहा, 'आप हमें बताइए क्या कार्य करना है।'

शंकराचार्य ने इन शिष्यों की बात अनसुनी कर दी और फिर बाहर की ओर मुख करके सनंदन को आवाज दी, 'सनंदन! सनंदन!! कहां हो आ जाओ, सनंदन जल्दी आ जाओ।'

'न जाने गुरुजी को क्या हो गया है', शिष्यों ने एक-दूसरे की ओर देखते हुए कहा, 'सनंदन बहुत दूर है, गुरुजी की आवाज वहां तक नहीं पहुंच सकती।'

सनंदन में साधना और गुरु-कृपा द्वारा इतनी सिद्धि शक्ति आ गई थी। उसने अपने गुरु शंकराचार्य की इतनी दूर की आवाज भी सुन ली।

गुरुजी पुकार रहे हैं सनंदन आ जाओ सनंदन! जल्दी आ जाओ!!

अवश्य गुरुजी को कोई विशेष कार्य है इसी कारण मुझे शीघ्र बुला रहे हैं।

पर अलकनंदा के पुल पर से जाने में तो अधिक समय लगेगा और अलकनंदा में तैरकर नहीं जा सकते, उसके अंदर हिमखंड पड़े हैं, जिसके कारण शरीर को ठंड भी लग सकती है।

मगर इस समय यह क्या सोचना, गुरुजी ने जल्दी बुलाया है, मुझे जल्दी ही जाना चाहिए, सोचते हुए सनंदन अलकनंदा के हिमखंड से भरे गहरे अथाह शीतल जल में कूद पड़े।

पास खड़े श्रद्धालु शिष्य चिल्लाए—सनंदन नदी में हिमखंड पड़े हैं, अथाह शीतल जल है, उसके अंदर मत जाओ।

सनंदन ने नहीं सुना और तैरकर आगे बढ़ने लगा, बर्फ के टुकड़े, शीतल जल

उसके शरीर को सुन्न कर रहे थे। पर वह तैरता हुआ दूसरे तट पर जाने का यत्न कर रहा था।

सच्ची लगन वाले साधक को प्रकृति भी सहयोग देती है। अलकनंदा के अंदर कमल पुष्प तैरने लगे।

सनंदन ने उन पर पांव रखकर नदी पार कर ली और तेजी से भागता हुआ आकर गुरु के चरणों में गिर पड़ा।

'क्या आज्ञा है गुरुदेव!' सनंदन ने शंकराचार्य के चरण छूते हुए कहा, 'शीघ्र बतलाइए, दूर के कारण मुझे आने में थोड़ा विलम्ब हो गया।'

'ठीक समय पर आ गए', कहते हुए शंकराचार्य ने दूसरे शिष्यों की ओर देखा. ...वो लज्जा से गर्दन झुकाए बैठे थे।

'देखा तुमने', शिष्यों ही ओर देखते हुए शंकराचार्य ने कहा, 'तुम में ऐसा कार्य करने का साहस है, क्या तुम ऐसा कार्य कर सकते हो, जिसमें प्राण संकट में फंसें।'

'इसकी सच्ची लगन ने ही यह सिद्धि दिलाई है। इतने प्रवाह वाली, हिमखंडों से भरी....शीतल जल की नदी अलकनंदा को सनंदन पार करके यहां आ गया।'

सनंदन के सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए शंकराचार्य ने कहा, 'यही इस पर भगवती की कृपा है।'

'क्षमा करें गुरुदेव! सचमुच हम सनंदन की साधना शक्ति से परिचित नहीं थे।'

'हमे खेद है, ऐसे महान पुरुष से हमने ईर्ष्या की।'

'क्षमा मांगने से काम नहीं बनेगा, साधको, इतनी साधना-तपस्या के पश्चात भी यदि ईर्ष्या का अंकुर हृदय में पनपने लगा तो तपस्या साधना का सारा परिश्रम व्यर्थ जाएगा।'

'सच्चा साधक कभी दूसरों से ईर्ष्या-द्वेष नहीं करता।'

'इसका उदाहरण सनंदन है, तुम सब इसकी बुराई करते रहे, पर यह कभी किसी की बुराई नहीं करता।'

शंकराचार्य ने मुस्कराते हुए सनंदन के सिर पर प्यार से हाथ रखते हुए कहा, 'इसके विशेष गुण के कारण ही इसका नाम पद्मपाद रखता हूं और सभी शिष्यगण इसे पद्मपाद के नाम से ही बुलाएंगे।

शिष्यों को ज्ञात हो गया, गुरु कृपा के साधक को सभी असंभव कार्य सरल हो जाते हैं।

शंकराचार्य जैसे महापुरुष का शिष्य बनना, शुभ कर्मों के फल से ही प्राप्त हुआ है।

पद्मपाद ने अपने गुरु की स्तुति करते हुए उनके चरण छुए और शिष्यों ने शंकराचार्य के चरण छूकर क्षमा मांगी।

शंकराचार्य ने सभी के सिर पर प्यार से हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया और कहा, 'जो मन में ईर्ष्या-भावनाएं हैं उन्हें मिटा दो और पद्मपाद जैसे बनने का यत्न करो। तभी तुम्हारा यह दुर्लभ मनुष्य-जीवन सार्थक होगा।'

शिष्यों के मन में अब मानव-सेवा की भावना जागृत हो गई थी।

भाष्यादि लोक कल्याण करने वाले ग्रंथों का साधारण जनता में किस प्रकार प्रचार किया जाए, उनके मन में अब यह विचार उठने लगे थे। उन्होंने शंकराचार्य को इस विषय में बताया।

शंकराचार्य का जन्म ही धर्म के पुनःउद्धार और लोक-कल्याण के लिए हुआ था। वह शिष्यों सहित जनमानव में वैदिक धर्म के महत्त्व को समझाने के लिए और उस पथ पर चलने की प्रेरणा देने के लिए चल पड़े।

उस समय शंकराचार्य की सोलह वर्ष की अवस्था थी। पर प्रतिभा-ज्ञान, बड़ी-बड़ी आयु वाले विद्वानों से अधिक था।

चार वर्ष में अनेकों मानव धर्म उपयोगी ग्रंथों की रचना कर, अनेक ग्रंथों का भाष्य, अनुवाद करके, शंकराचार्य शिष्यों सहित बदरीक्षेत्र से ज्योतिधर्म की ओर चल पड़े। ज्योतिधर्म का राजा तो इनका अनुयायी बन चुका था।

जब उसने सुना, शंकराचार्य बदरीक्षेत्र से ज्योतिर्धाम पधार रहे हैं। तब उसके हर्ष का ठिकाना न रहा।

उसने स्थान-स्थान पर यज्ञशाला कीर्तन-भजन के स्थान बनवाए और अपने गुरु शंकराचार्य के स्वागत की तैयारी कराने लगा।

# 16

ज्योतिर्धाम शंकराचार्य पधार रहे हैं—प्रत्येक स्थान पर यह चर्चा होने लगी।

नगरवासी प्रसन्नता से उनके स्वागत की तैयारी करने लगे।

ऐसे तेजस्वी छोटी आयु के विद्वान संन्यासी के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त होगा।

जिसने बड़ी आयु के ज्ञानी विद्वान पंडितों को शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया।

श्रद्धालु भक्त उनकी विद्वत्ता की चर्चा करते हुए उनके आने की प्रतीक्षा करने लगे।

जैसे ही शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित ज्योतिर्धाम पहुंचे, ज्योतिर्धाम का राजा सुंधवां अपने कर्मचारी दरबारियों सहित उनके स्वागत के लिए आया और उनके चरण छूकर, एक एकांत सुंदर स्थल पर उन्हें ले गया।

नगरवासियों ने बाजार-हाट में पताकाएं बंदनवार बांधीं, केले के खम्बे लगाकर सजाया गया, कीर्तन-स्थल अनूठी शोभा से भर गया।

शंकराचार्य के नगर में आते ही स्थान-स्थान पर सत्संग-भजन-कीर्तन होने लगे। मंदिर-आंगन विद्वान पंडितों के इष्ट श्लोकों से, प्रार्थनाओं से गूंजने लगे।

जीर्ण मंदिरों का राजा सुंधवां ने पुनः निर्माण कराया, वहां पुजारी द्वारा शास्त्र विधि अनुसार पूजा-अर्चना होने लगी।

शंकराचार्य के शिष्य पद्मपाद और प्रभृति श्रद्धालुओं में धर्म उपदेश देकर उनके हृदय में विशेष धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने लगे।

पद्मपाद भाष्य ग्रंथों को और भी सरल रोचक भाषा में श्रद्धालुओं को समझाते थे।

श्रद्धालुओं में धर्म के प्रति अब इतनी रुचि हो गई थी, सत्संग-स्थल पर पहले ही पहुंच जाते।

तेजस्वी संन्यासी शंकर के दर्शन करके उनके प्रेरणादायक धर्म उपदेशों को मंत्रमुग्ध से चुपचाप सुनते और उनके बताए नियमों पर चलने का यत्न करते।

ज्योतिर्धाम में महान तेजस्वी ज्ञानी संन्यासी शंकर पधारे हैं। दूर-दूर तक श्रद्धालु भक्तों द्वारा यह समाचार पहुंच गया।

समूह-के-समूह श्रद्धालु भक्त दर्शनार्थी सत्संग-स्थल पर एकत्र होने लगे।

विभिन्न समुदाय के अनेक साधु-साधक शंकराचार्य के दर्शन करने आते... .उनके दर्शन करके धर्म विषय पर वार्तालाप करते। और अपनी शंकाओं का समाधान करवाकर संतुष्ट होकर चले जाते।

शंकराचार्य के शिष्य शंकराचार्य के भाष्य ग्रंथों की सरल व्याख्या करके समझाते, श्रद्धालु शंकराचार्य के शिष्य बनने के लिए उत्सुक होने लगे।

अपने को अधिक ज्ञानी विद्वान समझने वाले ब्राह्मण, पंडित, शंकराचार्य से शास्त्रार्थ करने के लिए दूर-दूर देशों से आने लगे।

वह शास्त्रार्थ करके शंकराचार्य से पराजित हो जाते और शंकराचार्य के शिष्य बन जाते।

शंकराचार्य के शिष्य शास्त्र मीमांसा—वेद की महिमा इतनी रोचक रीति से श्रद्धालुओं को सुनाते, दर्शक श्रोता मंत्र-मुग्ध से बैठे हुए सुनते रहते, अब उनमें धर्म के प्रति इतनी श्रद्धा हो गई थी।

सत्संग, वेदमहिमा, कीर्तन, भजन स्थान-स्थान पर होने लगे थे।

शंकराचार्य श्रद्धालु भक्तों को धर्म तत्त्व समझाते, अद्वैत, ब्रह्मतत्त्व की व्याख्या करते, विद्वान पंडित अपलक उनकी ओर देखते रह जाते।

ज्योतिर्धाम के राजा सुंधवां तो शंकराचार्य के अधिक ही श्रद्धालु भक्त बन गए थे। प्रत्येक समय वह गुरु की सेवा के लिए तैयार रहते थे।

शंकराचार्य चाहते थे, उनके भाष्य ग्रंथों की प्रतिलिपि तैयार हो जाए।

राजा सुंधवां ने बड़े-बड़े विद्वान पंडितों को भाष्य ग्रंथों की प्रतिलिपि के लिए बुलाया और उन्हें शंकराचार्य रचित भाष्य ग्रंथों की प्रतिलिपि तैयार करने का आदेश दे दिया।

विद्वान पंडित, बड़े परिश्रम से भाष्य ग्रंथों की प्रतिलिपि तैयार करने लगे।

शंकराचार्य भाष्य ग्रंथों की प्रतिलिपि देखकर अधिक प्रसन्न हुए और ज्योतिर्धाम नरेश को आशीर्वाद देते हुए बोले, 'राजन! यह कार्य तुमने बहुत अच्छा किया—अब सदाचार देवपूजा, विद्याज्ञान प्रचार के लिए हमारे शिष्य स्थान-स्थान पर जाना चाहते हैं, तुम उन्हें सहयोग देकर उनकी सहायता करो।'

'गुरुदेव! मैं तो आपके आदेश की प्रतीक्षा करता रहता हूं। सभी गुरु भाइयों को सदैव मेरा सहयोग मिलेगा, इस ओर से आप-निश्चिंत रहें।' राजा सुंधवां ने शंकराचार्य के चरण-स्पर्श करते हुए कहा, 'आप और आदेश दें।'

'गुरुदेव! ज्योतिर्धाम नरेश ने कई विद्वान पंडितों को देवालय की पूजा-अर्चना के लिए नियुक्त किया है। वह सत्संग-भजन-कीर्तन तो कराते ही हैं। श्रद्धालुओं को धार्मिक जीवन की भी शिक्षा देते हैं।'

'वह तो विद्या पढ़ने के लिए भी उत्साहित करते हैं। गुरुदेव', प्रभृति ने शंकराचार्य के समीप आकर उनकी चरणधूलि मस्तक से लगाते हुए कहा, 'मैं नगर में गया था वहीं नगरवासियों से ज्ञात हुआ ज्योतिर्धाम नरेश ने कई स्थानों में निज धन से यज्ञ होम का प्रबंध किया है।'

'यज्ञ अनुष्ठान के लिए भी धन का सहयोग दे रहे हैं।'

'यह तो तुमने बहुत ही अच्छा कार्य किया राजन', शंकराचार्य ने ज्योतिर्धाम नरेश की ओर देखते हुए कहा, 'मनुष्य जीवन तभी सार्थक होता है, जब इस जीवन से कुछ जन कल्याण के कार्य किए जाएं।

'नरेश ने जीर्ण मंदिरों का भी पुनः निर्माण कराया है गुरुदेव!' पद्मपाद ने मुस्कराते हुए कहा, 'विग्रह प्रतिष्ठा आपसे कराएंगे।'

'कई देवालय धर्म विरोधी मानवों ने नष्ट कर दिए थे। उन्हें फिर से ठीक करवाकर उन देवालयों में इष्ट विग्रह प्रतिष्ठित किए गए हैं।'

'राजन! तुम्हारी धर्म में श्रद्धा देखकर ही धर्म प्रचार कार्य तुम्हें सौंमा है।'

'अब धर्म कार्यों में रुचि दिलानी धर्म में श्रद्धा उत्पन्न कराना तुम्हारा कर्त्तव्य है।'

'आपकी कृपा से गुरुदेव, अब तो ग्रहस्थी भी पंच महायज्ञ पूजा आदि का यत्न करने लगे हैं। आपके यहां पधारने से ही सभी नागरिकों में अधिक परिवर्तन आ गया है।'

'राजन! आपने देवालयों में पूजा-अर्चना का प्रबंध कराने को भी अधिक धन का दान दिया है, पुजारी कह रहे थे, आपने उनके निवास और निर्वाह के लिए भी भूमि, धन दान में दिया है।'

पद्मपाद ने राजा सुंधवां की ओर देखते हुए कहा, 'आपको गुरुभाई बनाकर हमें गर्व है।'

'मैं अपने को भी भाग्यशाली समझता हूं....जो महामानव गुरुदेव मिले, पिछले शुभ कर्मों का फल ही इसे समझता हूं पद्मपादजी!'

'वैदिक धर्म का पुनः प्रतिष्ठिान हो रहा है, देखकर कितनी प्रसन्नता होती है।'

'यह सभी गुरुदेव ही कृपा है इनके चरणों की रज मस्तक से लगाकर हम भी अपना जीवन सफल मानते हैं प्रभृतिजी!'

'अब तुम सब गुरुगान ही किए जाओगे या कुछ ज्ञान की भी बातें करोगे,' शंकराचार्य ने अपने शिष्यों की ओर देखते हुए कहा।

'यहां आने का हमारा उद्देश्य पूरा हो चुका है, अब हम उत्तराखंड की ओर प्रस्थान करेंगे। और उत्तराखंड के तीर्थों का दर्शन करते हुए केदार क्षेत्र की ओर जाएंगे।'

'ज्यातिर्धाम से केदारधाम जाने का मार्ग अधिक कठिन है गुरुदेव!'

प्रभृति ने नम्रता से झुककर हाथ जोड़ते हुए कहा, 'बदरीधाम से केदार धाम का मार्ग अधिक दुर्गम है।'

'पथ की कठिनाई से घबराकर यात्री यदि साहस हार जाए, हारकर बैठ जाए, तब क्या यात्रा पूरी होगी।'

शंकराचार्य ने मुस्कराते हुए कहा, 'साहसी मानव ही दुर्गम पथ को पार करके अपने ध्येय में सफलता पाता है।'

'वत्स! प्रकृति की अनूठी शोभा तो ऐसे ही दुर्गम पथ पर देखने को मिलती है।'

'हिम से ढकी हुई ऊंची पर्वत की चोटियों पर जब सूर्य अपनी सुनहरी किरणों का जाल फैलाता है। तब कैसी इंद्रधनुषी छटा बिखर जाती है। उस मनोहारी दृश्य को देखकर नेत्र तृप्त ही नहीं होते प्रभृति, गुरुदेव के साथ चलकर उस अनूठे दृश्य को देखोगे, तब सब पथ की कठिनाई भूल जाओगे', पद्मपाद ने प्रभृति की ओर देखते हुए कहा, 'तुम जैसे साहसी के मुख से ऐसी बातें शोभा नहीं देतीं।'

'साधना का पथ भी क्या सरल है प्रभृति!' शंकराचार्य ने मुस्कराते हुए कहा, 'पर जो साहस करके उस पथ पर चल पड़ते हैं उन्हें कितना आनंद प्राप्त होता है, जिह्वा क्या उसे वर्णन कर सकती है। पर जो साधक कठिनाइयों से घबराकर साधना पथ को छोड़ देते हैं उन्हें वह सच्चा सुख और अनूठी शांति कहां मिलती है।'

'गुरुदेव! सच्ची लगन, साहस, धैर्य और परिश्रम साधक को सफलता के पथ पर ले जाते हैं, आपने बताया था।'

'हां पद्मपाद! तुम साधना पथ की सफलता किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है समझ चुके हो, अब तो इस साधना का महत्त्व दूसरों को भी समझाने योग्य हो गए हो।'

'गुरुदेव! आपकी कृपा दृष्टि जिस पर हो जाए वह क्या कभी असफल हो सकता है। देव, मुझे क्षमा करें, साधारण मानवों के पथ और साधना पथ में आकाश-पाताल का अंतर है, इसे आपके सम्पर्क में आने पर ही जान सकता हूं।'

'तुम उससे अधिक शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त कर चुके हो, पर कभी-कभी माया के प्रभाव में आकर अपना मुख्य उद्देश्य भूल जाते हो।'

'आपने जब हमारा उद्घार करने का बीड़ा उठा ही लिया गुरुदेव, फिर हमें क्यों चिंता हो।'

'अपना उद्घार करने के लिए इस समय हम सब ने जन्म नहीं लिया है। लोककल्याण और धर्म का पुनरुद्धार करने के लिए ही हम सब यहां आए हैं।'

'गुरुदेव अब कभी कायरों जैसी बात हमसे नहीं सुनेंगे, मैंने निर्णय कर लिया है। साधना मार्ग में कितनी कठिनाई आएं पर मैं आगे ही बढ़ता जाऊंगा, कभी पीछे नहीं हटूंगा।'

'तब तुम सब केदारधाम चलने की तैयारी करो, पहले उत्तराखंड के तीर्थों के दर्शन करते हुए केदारधाम जाएंगे।'

'हम सब निश्चित समय पर तैयार हो जाएंगे। ज्योतिर्धाम के नरेश सुंधवां भी हमारे साथ तीर्थ-यात्रा पर चलने का निर्णय कर चुके हैं। गुरुदेव....।'

'ठीक है जिसने तीर्थ यात्रा करनी है वह हमारे साथ चले, पर मार्ग का कठिन परिश्रम सहन करने की शक्ति उसमें होनी चाहिए', कहते हुए शंकराचार्य अपने साधना-स्थल पर चले गए।

# 17

ज्योतिर्धाम में वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित उत्तराखंड के तीर्थों के दर्शन करने चले पड़े।

बदरीधाम की तरह केदारक्षेत्र का भी अधिक महत्त्व है। यहां अनेक प्रसिद्ध तीर्थ हैं। जिनका वर्णन पुराणों में भी है।

ज्योतिर्धाम नरेश भी अपने श्रद्धालु कर्मचारियों सहित शंकराचार्य के साथ तीर्थ यात्रा के लिए चलने को तैयार हो गए।

पहाड़ी मार्ग में यात्रियों को यात्रा करने में कठिनाई न हो उसका प्रबंध ज्योतिर्धाम नरेश के कर्मचारी पहले ही कर देते थे।

मार्ग में ठहरने की व्यवस्था, खाने-पीने का प्रबंध भी, सुंधवां नरेश के सेवकगण करते चल रहे थे।

यात्री, शंकराचार्य के साथ दुर्गम पथ को पार करते हुए धर्मोपदेश सुनते हुए आगे बढ़ रहे थे।

ज्योतिर्धाम से केदारधाम जाने का मार्ग अधिक दुर्गम है, यह सब जानते थे। इसी कारण यात्री गणनंद प्रयाग के मार्ग से पंचकेदार और कल्पेश्वर तीर्थों के दर्शन करते हुए केदारधाम की ओर चले।

वह गोपश्वर, अनसूया देवी आदि स्थानों से होते हुए रुद्रनाथ नामक चतुर्थ केदार के स्थान पर पहुंच गए।

यहां पहुंचने से पहले ही शंकराचार्य की प्रसिद्धि वहां पहुंच गई थी।

श्रद्धालु मानवों के समूह शंकराचार्य के दर्शन को मार्ग में खड़े हो गए और आदर से उन्हें एकांत सुंदर स्थान में विश्राम के लिए ले गए।

शंकराचार्य ने उनकी प्रेम-श्रद्धा देखकर उन सभी को धर्मोपदेश देकर धार्मिक

पथ पर चलने की प्रेरणा दी।

सभी, शंकराचार्य जैसे विद्वान शास्त्रज्ञाता तेजस्वी संन्यासी के दर्शन करके अपने को धन्य मानने लगे।

आपस में एक-दूसरे से कहने लगे—बंधु! हमारे पिछले जन्म के कोई शुभ संस्कार हैं, जो ऐसे महान तेजस्वी संन्यासी के दर्शन हुए।

इतनी छोटी आयु में इतना शास्त्रज्ञान प्राप्त करना किसी अवतार अंश का ही कार्य हो सकता है।

बड़े-बड़े विद्वान पंडित शंकराचार्य से वार्तालाप करके उनके अथाह शास्त्रज्ञान के आगे नतमस्तक हो गए।

चतुर्थ केदार में विश्राम करके, श्रद्धालुओं को धर्मोपदेश देते हुए शंकराचार्य तुंगनाथ नामक तृतीय केदार के समीप पहुंचे।

उसकी ऊंचाई बारह हजार बहत्तर (12072) फिट के लगभग बताते हैं।

ऊंचे-ऊंचे पर्वतों पर स्थित तुंगनाथ का सुंदर मनोहारी प्रकृति दृश्य अनूठा ही था।

वहां से हिम पर्वतों की अनूठी छटा देखने को मिलती है।

उत्तर की ओर पश्चिम से पूर्व की ओर तक हिमालय की अनगिनत श्वेत हिम से भरी चोटियों को यात्री, मंत्र मुग्ध-सा देखता रह जाता है।

इतना अनूठा, प्रकृति नटी का लीला सौंदर्य रूप और कहीं देखने को नहीं मिलता।

दूर से ऐसा प्रतीत होता है, प्रकृति नटी ने महायोगी केदार और बदरीनाथ के लिए हिम की श्वेत पुष्प शय्या बिछाई है और स्वयं हरिहर की सेवा के लिए उनके चरणों में नीचे मुक्तकेश फैलाकर श्यामल सुंदर रूप में प्रकृति ध्यानमग्न बैठी है।

यहां का अनूठा प्रकृति रूप देखकर शंकराचार्य अंतर्मुखी हो गए। उनका मन अनूठे आनंद से भर गया। उन्हें अपने शरीर की भी सुध नहीं थी।

उनके शिष्य उनके आवश्यक नित्यकर्म कराते, उनकी देह की रक्षा करते हुए, साथ-साथ चल रहे थे।

बड़े शास्त्रज्ञाता, विद्वान संन्यासी शंकराचार्य तुंगनाथ की ओर जा रहे हैं—

यह समाचार एक-दूसरे से सुनकर बड़े पंडित विद्वान ब्राह्मण शंकराचार्य के दर्शन करने के लिए वहां आए।

शंकराचार्य विश्राम कर रहे थे। बड़े विद्वान ब्राह्मण पंडितों को उन्होंने आदर से बिठाया।

ब्राह्मण पंडितों ने शंकराचार्य से धर्मोपदेश देने के लिए प्रार्थना की।

शंकराचार्य ने धर्मतत्त्व समझाकर व्याख्या करते हुए उन्हें धर्मोपदेश दिया।

विद्वान पंडित छोटे-से शास्त्रज्ञाता तेजस्वी संन्यासी के दर्शन करके ही अधिक प्रभावित हुए थे। उनके धर्मोपदेश सुनकर तो वह उनके अनुयायी बन गए। और उन्होंने अपने देवविग्रहों के समीप ही शंकराचार्य की पाषाण-प्रतिमा बनवाकर वहां स्थापित कर दी।

शंकराचार्य अपने धर्मोपदेश से श्रद्धा भक्तों को कृतार्थ करते हुए आगे की ओर चल पड़े।

तुंगनाथ से शंकराचार्य पहले तो शोणितपुर पहुंचे फिर गुप्तकाशी, माध्यमेश्वर (द्वितीय केदार), महिष मर्दिनी, शाकंभरी, वियोगी नारायण के दर्शन करते हुए शोणप्रयाग, मुंडहीन गणेश आदि स्थानों के दर्शन करके गौरी कुंड पधारे।

गौरी कुंड, गर्मजल का बहुत बड़ा कुंड है। गौरी कुंड गौरी का तपस्या-स्थल कहलाता है। किसी समय उन्होंने यहां घोर तपस्या की थी।

गर्म जल में स्नान करते ही तीर्थयात्रियों की सारी थकान दूर हो गई।

गर्म जल से स्नान कर यात्रा की थकान उतारकर तीर्थ-यात्री आगे चल पड़े। अब केदार क्षेत्र आरंभ हो गया था।

मार्ग में चीरवाल भैरव और भीमसेन चढ़ाई पार करके शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित केदार-क्षेत्र पहुंच गए।

केदारधाम अधिक ही ऊंचाई पर है, यहां पर यात्रियों को श्वांस लेने में अधिक ही कष्ट होने लगा।

पर वहां का शांत मनोहर वातावरण उन्हें आगे बढ़ने की प्रेरणा दे रहा था।

हिम से लदी ऊंची चोटियां, पर्वतमालाओं से घिरा केदारधाम का वातावरण शांत था।

कहते हैं केदारनाथ जाग्रत देवता हैं—श्रद्धा से स्मरण करते ही आशुतोष शिव भक्तों से शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं।

पद्मपाद ने प्रभृति के साथ-साथ चलते हुए कहा, 'यहां शिवभोले की न्यारी लीला है, प्रभृति!'

'भाई पद्मपाद मुझे तो श्वांस लेने में कठिनाई हो रही है, यह लीला देखते-देखते कहीं अपनी जीवनलीला ही समाप्त न हो जाए।'

'तुम सदैव ही ऐसी हारी-हारी बात क्यों करते हो, तुमसे छोटी आयु के हमारे गुरुदेव कितनी तेजी से आगे बढ़े चले जा रहे हैं।'

'उनमें योग-शक्ति, साधना-शक्ति हमसे कहीं अधिक है। भाई पद्मपाद उनकी समानता हम कैस कर सकते हैं।'

'ठीक कह रहे हो प्रभृति, गुरुदेव जैसे बनने के लिए हमें कई जन्म लेने पड़ेंगे।' अभी पद्मपाद और कुछ कहना चाहता था।

तभी शंकराचार्य एक स्थान पर खड़े हो गए और पीछे मुड़कर पद्मपाद और प्रभृति को संकेत से बुलाकर दिखाते हुए कहा, 'देखो पद्मपाद! यहां अनेक तीर्थ हैं और गाथाएं हैं, पुराणो में उनका वर्णन है—जिस स्थान पर हम खड़े हैं, कहते हैं पांच पांडव, युधिष्ठिर और उनके भाई अर्जुन, नकुल, सहदेव, भीम जब महाप्रस्थान के लिए जा रहे थे, इसी मार्ग से केदार धाम भी आए थे, यहां वह स्थान है।'

'कितनी ऊंचाई है गुरुदेव! चढ़ना कितना कठिन है, कहते हैं केदारधाम की ऊंचाई ग्यारह हजार सात सौ तरेपन (11753) फीट है।'

'हां पद्मपाद, बदरीनारायण से इस स्थान की अधिक ऊंचाई है और इसी कारण बदरीनारायण से यहां अधिक ठंड।'

चारों ओर बर्फ के कारण शीतलहर चल रही है।

'यहां अधिक ही ठंड है गुरुदेव', प्रभृति ने कठिनता से श्वांस लेते हुए कहा, 'श्वास लेने में भी अधिक ही कठिनाई हो रही है।'

'यहां तो सभी की ऐसी दशा हो रही है', ज्योतिर्धाम नरेश ने कठिनाई से श्वांस लेते हुए कहा, 'मेरे कई कर्मचारी तो भली प्रकार श्वांस न लेने के कारण बेसुध-से हुए जा रहे हैं।'

'तुम थोड़ी देर उस पाषाण शिला पर बैठो', शंकराचार्य ने ज्योतिर्धाम नरेश को अपने शिष्य व कर्मचारियों सहित बैठने का संकेत करते हुए कहा।

'हम थोड़ी देर उस ओर की शिला पर बैठते हैं', यह कहते हुए शंकराचार्य एक छोटी शिला पर बैठकर ध्यानमग्न हो गए।

पद्मपाद शंकराचार्य के चरणों के समीप ही बैठ गया।

थोड़ी देर ध्यानमग्न रहने के पश्चात ही शंकराचार्य ने आंखें खोलीं और मुस्कराकर पद्मपाद की ओर देखते हुए बोले, 'पद्मपाद उधर थोड़ी दूर पर जो बर्फ से ढका हुआ स्थान दिखाई दे रहा है, वहां खुदाई कराओ।'

तीर्थ यात्रा करते-करते गुरुदेव को इस स्थान की खुदाई कराने की क्या

आवश्यकता हुई—सोचते हुए सुंधवां नरेश ने अपने कर्मचारियों को गुरुदेव के बताए हुए स्थान पर खोदने का आदेश दे दिया।

बर्फ और पत्थरों को हटा-हटाकर राजा के कर्मचारी उस स्थान को खोदने लगे।

थोड़ी देर खोदने के पश्चात ही वहां गर्म जल की धारा ऊपर की ओर तेजी से निकली।

शीत से ठिठुरे यात्रियों के हर्ष का ठिकाना न रहा, उनमें जैसे नई प्राण-शक्ति आ गई—इतने ऊंचे पर्वत पर गर्म जल का स्रोत गुरुकृपा से ही मिला है।

शंकराचार्य का जयघोष करते हुए केदारनाथ के जयघोष से उन्होंने केदारधाम गुंजा दिया।

गर्म जल से ठिठुरे शरीर को गर्मी पहुंचाकर तीर्थयात्री केदारधाम की ओर चल पड़े।

# 18

केदारधाम में आकर शंकराचार्य अधिक समय अंतर्मुखी रहने लगे। प्रतिदिन केदारनाथ के मंदिर में जाते और वहां बैठकर पूजा करते-करते ध्यानमग्न हो जाते।

उनके शिष्य भी अपनी आवश्यकताओं से निबटकर मंदिर में आ जाते और साधना में लीन हो जाते।

कहते हैं यहां पर शंकराचार्य लगभग एक माह तक ठहरे थे। अवकाश के समय श्रद्धालु शिष्य उनसे धर्मोपदेश सुनते।

कीर्तन-भजन करते और इष्ट ध्यान में लीन रहने का यत्न करते। निर्जन एकांत स्थान में कीर्तन-भजन की ध्वनि गूंजती रहती।

सभी तीर्थ-यात्रियों को अनूठा आनंद अनुभव हो रहा था। कुछ समय यहां व्यतीत करके तीर्थ-यात्रियों सहित शंकराचार्य गंगोत्री की ओर चल पड़े।

गंगोत्री स्थान समुद्र स्तर से लगभग दस हजार (10,000) फुट की ऊंचाई पर है।

यह अधिक ही दुर्गम पथ था। ऊंचे पर्वतों की कठिन चढ़ाई। कहीं हिंसक जंतुओं से भरे भयानक जंगल थे। पर साहसी सब विघ्न-बाधाओं को पार करते तीर्थयात्रा पूरी करने के लिए चल पड़े।

पहले गौरी कुंड की ओर चले, गौरीकुंड से होती हुई केदारगंगा भागीरथी से मिलती है। बड़ा अनूठा दृश्य है।

केदारगंगा भागीरथी मिलन देखते हुए तीर्थयात्री त्रियोगी नारायण, बूढ़ा केदार होते हुए, यात्रा-कष्ट को सहन करते हुए आगे बढ़े जा रहे थे।

घने जंगलों में हिंसक जंतुओं के बोलने के भयानक शब्द सुनाई दे रहे थे। शीत लहर शरीर को सुन्न किए दे रही थी पर शंकराचार्य अपने शिष्यों को शिक्षाप्रद गाथाएं सुनाते, धर्मोपदेश देते, साहस बंधाते हुए आगे ही बढ़ते जा रहे थे। ज्योतिर्धाम

नरेश के कर्मचारी युवक साहसी संन्यासी शंकराचार्य की ओर आश्चर्य से देखते रह जाते थे।

एक ओर भयानक घाटियां, दूसरी ओर शीश गर्व से उठाए ऊंचे-ऊंचे पर्वत थे, कहीं हिम से ढकी हुई चोटियों पर सूर्य की किरणें पड़ते ही उसके ताप से बर्फ के टुकड़े लुढ़कते हुए यात्रियों के हृदय को धड़का जाते।

कहीं बर्फ से ढकी पाषाण शिला पर पांव रखते ही आगे बढ़ने की बजाय, पांव फिसलकर प्राणों को ही संकट में डाल देता।

शंकराचार्य मुस्कराते हुए हाथ में दंड संभाले आगे चल रहे थे।

यदि कोई संकट आए, तो सबसे पहले वह उसे सहें, शंकराचार्य के हृदय में यह भावना भरी हुई थी।

पद्मपाद अपने गुरु की जीवन रक्षा के लिए पहले से ही शीश हथेली पर लिए तैयार था।

कई संकट भरे स्थानों में प्राणों को संकट में डालकर दुर्गम पथ पर अपने गुरु के प्राणों की रक्षा की थी।

ऐसा गुरु-प्रेमी शिष्य हजारों मानवों में से कोई विरला ही होता है।

ज्योतिर्धाम नरेश यह जान गये थे। पद्मपाद पर इसी कारण गुरु-कृपा अधिक है? वह अपना सर्वस्व गुरु को समर्पण कर चुका है।

बिना समर्पण किए त्याग किए बिना भी कोई साधक साधना पथ पर खरा उतरा है। पर पद्मपाद तो जितना कष्टों की परीक्षा कसौटी पर कसा गया, उतना ही और खरा निकला।

'क्या सोच रहे हो सुंधवां नरेश', शंकराचार्य ने मुड़कर सुंधवां नरेश को अपने पास बुलाते हुए कहा, 'पथ की कठिनाई आगे चलने से रोक रही है क्या?'

'गुरुदेव! आपके सामने कठिनाई ठहर नहीं सकती', ज्योतिर्धाम नरेश सुंधवां ने आकाश की ओर देखते हुए कहा, 'सूर्य छिपनेवाला है विश्राम की कहां व्यवस्था हो यही सोच रहा था।'

'पद्मपाद उधर गुफाओं में और टूटे देवालय खण्डहरों में ठहरने का प्रबंध करने गये हैं।' प्रभृति ने सामने देखते हुए कहा, 'वह इधर ही आ रहे है।'

'एक रात्रि तो विश्राम करना है', कहते हुए शंकराचार्य शिष्यों सहित पद्मपाद के बताए हुए विश्राम्-स्थल की ओर चल पड़े।

सूर्य निकलते ही यात्री अपना आवश्यक कार्य निबटाकर तीर्थ-यात्रा आरम्भ कर देते।

दिन छिपने से पहले सभी तीर्थ यात्री गुफाओं में प्राचीन मंदिरों के खण्डहरों में रात्रि व्यतीत कर देते थे।

इस प्रकार यात्रा करते, विश्राम करते हुए तीर्थ यात्री भागीरथी उद्गम स्थल की ओर बढ़े चले जा रहे थे।

दुर्गम गिरि संकट (दर्रा) पंचाली की कठिन चढ़ाई ग्यारह हजार तीन सौ चौंसठ फीट है।

कई दिन लगातार चलने के पश्चात गंगोत्री में सूर्यकुण्ड, विष्णुकुण्ड, ब्रह्मकुण्ड तीर्थों के दर्शन करते हुए शंकराचार्य, शिष्यों सहित, विशाल भागीरथ शिला के पास पहुंचे।

यह वह शिला है जिस पर बैठकर भागीरथ ने गंगाजी को मृत्युलोक में लाने के लिए तपस्या की थी।

गंगाजी प्रसन्न होकर भागीरथ प्रयत्न से ही मृत्युलोक में आयी थीं। इसी कारण गंगा पहले भागीरथी कहलाईं।

गंगा की मृत्युलोक में आने की कथा पद्मपाद ने तीर्थयात्रियों को सुनाई।

चलते-चलते भागीरथी नदी दिखाई देने लगी। न जाने कितने युगों से भागीरथी कठिन शिलाखण्डों को उखाड़कर चंचल तरंगों से उनके टुकड़े-टुकड़े करती हुई, लगातार आगे बढ़ती जा रही है।

न जाने कितने सुन्दर नगर गंगा ने नाम रखा कर अपने तटों पर बसाए थे।

उनके गौरव प्रसिद्धि विस्तार देखा था और उन्हें समय के फेर से नष्ट होते भी देखा था।

गंगा अब भी कितने गांव, नगर, महानगरों को पवित्र करती हुई, वन-उपवन में हरियाली सौन्दर्य भरती हुई अनेक से मिलने के लिए निरंतर आगे-ही-आगे बढ़ती जा रही है।

चारों ओर पर्वत मालाएं हैं। मैदान में गंगा बनी भागीरथी के तटों पर अनेक प्रकार के वृक्ष झूमते रहते हैं, उन पर अनेक प्रकार के पक्षी चहचहाते रहते हैं।

पक्षी अपनी वाणी में इसका गुणगान करते रहते हैं। भागीरथी गंगादेवी लहराती, बलखाती, पर्वत-स्थल से आगे की ओर बढ़ी जा रही है।

'गुरुदेव! गंगाजी की महिमा पुराणों में भी बताई गयी है।' पद्मपाद ने अंजुली में जल लेकर अपने गुरु के चरण धो दिये।

शंकराचार्य ने हाथ-मुंह धोकर जलपान किया और प्रसन्न होकर तट पर बैठकर गंगा की स्तुति करने लगे।

'हे सुखदायिनी, माता भागीरथी वेदों में आपके पवित्र सलिल (जल) की महिमा का वर्णन है– मैं आपकी अनंत महिमा नहीं जानता....हे कृपामयी! मैं अज्ञानी हूं, मेरी रक्षा कीजिए।

हे माता! आपके अमल सलिल का जिसने पान किया है वह अवश्य ही परमपद को प्राप्त होगा, जो आपका भक्त है उसे देखने तक का अधिकार यम को नहीं है।

हे भगवती! मेरे रोग शोक, पाप-पुण्य, कुमति-कलाप हरण कीजिये, हे त्रिभुवनश्रेष्ठे वसुधातस्वरूपे, आप ही एकमात्र मेरी गति हैं।

हे भुवनेश्वरी, त्रिभुवन पावनि, सर्वजन प्रशसिते देवि! जलमयि, जह्नु सुते!' जो मनुष्य प्रतिदिन इस पवित्र गंगा स्तोत्र का पाठ करता है अवश्य ही उसे सर्वत्र जय लाभ होता है।

हाथ जोड़कर आंखें मींचकर, ध्यान में मग्न शंकराचार्य भागीरथी की स्तुति कर रहे थे।

उनके श्रद्धालु भक्त श्रद्धा से उनकी ओर देख रहे थे और मन-ही-मन सोच रहे थे–

गुरुदेव की गंगा भक्ति मर्मस्पर्शी है, ब्रह्मज्ञ गुरुदेव ने गंगा के माहात्म्य का कीर्तन किया है। जिनके हृदय में गंगा भक्ति है उन्हें सदा सुख तथा मोक्ष का लाभ होता है।

शंकराचार्य स्तवन गान द्वारा भागीरथी गंगा की स्तुति-वंदना करके आगे की ओर चल पड़े।

वहां के पर्वतों पर वृक्ष क्या घास भी नहीं थी। लगातार बर्फ गिरने से पथ भी दुर्गम हो गया था।

साहसी ही उधर यात्रा का साहस करते थे। चारों ओर बर्फ-ही-बर्फ दिखाई दे रही थी। शीत के कारण हाथ-पांव सुन्न हुए जा रहे थे।

शंकराचार्य शिष्यों सहित गंगोत्री से गंगाजी की उत्पत्ति स्थान गौमुख के दर्शन करने जा रहे थे।

# 19

गंगोत्री का मार्ग दुर्गम था। पर गौमुखी का मार्ग तो और भी दुर्गम हो गया था।

ऊंचे-ऊंचे पर्वत हिम से ढके हुए, कहीं वृक्ष का चिह्न नहीं, चारों ओर बर्फ-ही-बर्फ दिखाई दे रही थी। पर साहसी तीर्थयात्री गंगाजी के उद्‌गम स्थल के दर्शनों की लालसा से आगे बढ़ने का यत्न कर रहे थे।

कइयों के पांव सूज गये थे, कई श्रद्धालुओं की नाक से रुधिर निकलने लगा था।

इन सब संकटों को सहते-ठिठुरते हुए आगे बढ़े जा रहे थे।

जय गंगा मैया की जय! भक्तों का उद्धार करने वाली सुरसरि भागीरथी गंगा मैया की जय! श्रद्धालुओं के जयघोष सन्नाटा तोड़ते हुए पर्वतीय स्थान में गूंज उठे।

सामने ही गौमुखाकृति स्थान से प्रबल स्रोत के आकार में सुरसरि भागीरथी हिमालय की गोद से निकलकर आगे बढ़े जा रही थी।

बड़े-बड़े हिमशिला खण्ड के उस स्रोत जल के साथ बहे जा रहे थे।

शंकराचार्य ने शिष्यों सहित थोड़ी देर आंखें मींचकर पतितपावनी पवित्र भागीरथी की स्तुति की और मुस्कराकर शिष्यों की ओर देखा—

'गुरुदेव! प्रकृति ने यहां कैसा अनूठा भयानक रूप धरा है। चारों ओर बर्फ-ही-बर्फ है। यहां वृक्ष क्या कहीं घास भी नहीं दिखाई देती।'

'वत्स ऊपर पर्वतों पर जमी हुई बर्फ, सूर्य के ताप से पिघलकर गौमुख से निकलती जलधारा में मिल जाती है और आगे बढ़ते हुए, यही जलधारा भागीरथी गंगा कहलाती है।'

शंकराचार्य ने शिष्यों को समझाते हुए कहा, 'यह राजा भागीरथ की तपस्या का फल भागीरथी—भागीरथी गंगा कहलाती हुई अनेक ग्राम-नगरों को पवित्र करती,

तट पर अनेक पवित्र तीर्थों का उद्गम-स्थल बनाती हुई आगे बढ़ती जाती है।'

इससे मिलने के लिए अनेक प्रसिद्ध नदियां आकर मिल जाती हैं।

हजारों मीलों का पथ पार करती हुई गंगा भागीरथी गंगासागर स्थान पर जाकर समुद्र से मिल जाती है।

'गुरुदेव! राजा भागीरथ के अथक प्रयत्न और तपस्या से गंगाजी मृत्युलोक में आईं और उसके पूर्वजों का अपने पवित्र जल से उद्धार करके भागीरथ का नाम भी अमर कर गईं।'

'हां, प्रभृति युग-युग से भागीरथी गंगा की धारा निरंतर दूसरों को लाभ पहुंचाने के लिए आगे-ही-आगे बढ़ रही है। और शिक्षा दे रही है चाहे कितना की कष्ट उठाना पड़े, दूसरों को लाभ पहुंचाने के लिए आगे बढ़ो।'

कितनी बाधाएं आएं रुको नहीं, चलते रहो, आगे बढ़कर दूसरों को लाभ पहुंचाते चलो। चाहे तुम्हारा अस्तित्व मिट जाए।

'गुरुदेव! भगीरथी गंगा गौमुख से छोटी धारा के रूप में आगे बढ़ती है, आगे बढ़कर विस्तार बढ़ाती जाती है। तट, उपवन, वनों को फल-फूल हरियाली देकर उन्हें लाभ पहुंचाकर आगे बढ़कर यही उपदेश देती प्रतीत होती है आगे बढ़ो, सबकी भलाई के लिए।'

'ठण्डे जल में हाथ-मुंह धोकर मेरे तो हाथ सुन्न हो गये', प्रभृति ने पद्मपाद की ओर देखते हुए कहा, 'तुम न जाने उधर पर्वत की हिम से भरी चोटियों की ओर क्या देख रहे हो?'

'यहां से शीघ्र ही जाना पड़ेगा', पद्मपाद ने मुड़कर प्रभृति की ओर देखते हुए कहा, 'कहीं धूप न निकल आए, हिमशिखरों से बड़ी-बड़ी हिम चट्टानें टूटकर गिरने लगेंगी, मैं यही देख रहा था प्रभृति।'

'प्रकृति का रूप किसी स्थान पर कितना मनलुभावना होता है और किसी स्थान पर कितना भयानक।'

'बड़ी कठिनाई से गौमुखी गंगा के दर्शन हुए थे, अभी मार्ग की थकान भी नहीं उतरी कि फिर चलने के लिए कह रहे हो।'

'अधिक देर यहां ठहरना, सभी यात्रियों के लिए संकट मोल लेना है, यहां से शीघ्र ही चलो।' कहते हुए शंकराचार्य अपना दण्ड संभालकर आगे की ओर चल पड़े।

'भगवती भागीरथी गंगा के दर्शन करके हम तो धन्य हो गये', जय गंगा मैया! जय पतित पावनी भागीरथी! जयघोष करते हुए तीर्थयात्री वापस चल पड़े।

'जरा लम्बे-लम्बे डग भरो बंधुओं, धूप निकल आएगी तो सूर्यताप से हिम की

बड़ी-बड़ी चट्टानें टूटकर गिरेंगी। पथ और संकट भरा हो जाएगा।

पद्मपाद ने सभी तीर्थयात्रियों को जल्दी-जल्दी चलने को कहा और शंकराचार्य के समीप पहुंचकर उनके साथ-साथ चलने लगा।

'हमारे बड़े भाग्य थे जो गौमुखी गंगा के दर्शन हो गए।' गंगोत्री आकर यात्री विश्राम करने लगे।

'बंधु, दोबारा गौमुखी जाने का साहस नहीं हो सकेगा', पांवों के छालों पर पहाड़ी जड़ी का लेप करते हुए दूसरा तीर्थयात्री बोला, 'मार्ग में कितने संकट, कितनी बाधाएं आईं।'

'तभी तुम हार गए बंधु', मुझे देखो अपने सूजे हुए हाथ-पावों को दिखाते हुए तीसरे तीर्थयात्री ने ठंडी सांस भरी, 'बड़ी कठिनाई से इष्ट का सुमिरन करता हुआ यहां तक आ सका हूं।'

'गुरुदेव! कितने शांत बैठे हैं। दुर्गम पथ पर कितनी बार प्राणों पर संकट आ गया।'

'पद्मपाद ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर गुरुदेव के प्राणों की रक्षा की है बंधु।'

'सच, पद्मपाद जैसा साहसी मिलना कठिन है और ऐसा गुरुभक्त भी कोई विरला ही होता है बंधु!' चौथे यात्री ने पहले तीर्थयात्री की बात काटते हुए कहा, 'तभी तो उस पर गुरुकृपा भी अधिक है।'

'भोजन तैयार है सभी यात्री भोजन करके विश्राम करें', ज्योतिर्धाम नरेश के सेवकों ने तीर्थयात्रियों को भोजन के लिए भोजन-स्थल पर चलने के लिए कहा और स्वयं भोजन की व्यवस्था करने चले गए।

शंकराचार्य उस समय दूध, फल लेते थे—तीर्थयात्री जब पथ की दुख गाथा सुना रहे थे तब वह वहां दूसरी ओर बैठे हुए सुन रहे थे। उनकी दशा देखकर शंकराचार्य को अधिक दुख हो रहा था। वह मन-ही-मन एक निर्णय कर रहे थे।

सभी तीर्थयात्री गौमुख पथ की यात्रा करके दर्शन नहीं कर सकते। बड़ा कठिन संकट भरा पथ है।

इतने दुर्गम पथ पर जाना सहज नहीं है—गंगोत्री में ही गंगादेवी का मंदिर बनवाकर, मूर्ति प्रतिष्ठित की जाए।

यही सोचते, निर्णय करते शंकराचार्य ने रात्रि व्यतीत कर दी।

प्रातःकाल होते ही ज्योतिर्धाम नरेश अपने गुरु की चरण-वंदना करने आए।

शंकराचार्य के मुख पर उदासी छा रही थी। कमल के समान खिले मुख पर

आज उदासी के बादल कैसे छा गए। सोचते हुए सुंधवां नरेश ने शंकराचार्य के चरण छूकर चरणरज मस्तक से लगाकर शंकराचार्य की ओर देखते हुए कहा, 'क्षमा करें गुरुदेव! आज मुख पर उदासी क्यों छाई हुई है?'

'राजन! इस गौमुख तीर्थयात्रा में तीर्थयात्रियों को जो कटु अनुभव हुआ है, मार्ग में जो संकट आए हैं, उनसे मुझे अधिक ही दुख पहुंचा है।'

मैं चाहता हूं तीर्थयात्रियों के लिए यहां गंगोत्री में मंदिर बनवाकर गंगादेवी की मूर्ति प्रतिष्ठित कर दी जाए।

वहीं शिवलिंग व यमुना, सरस्वती देवियों की भी मूर्ति स्थापित कर दी जाए। और तीर्थयात्रियों को यह समझा दिया जाए।

गंगोत्री में गंगादेवी और शिवजी का दर्शन करके वह गौमुखी दर्शन का फल पा जाएंगे।

'गुरुदेव, आपका यह सुझाव तो तीर्थयात्रियों के लिए अधिक ही लाभदायक है। सच मेरे मन में भी यह विचार कई बार आया था। तीर्थ यात्रियों का गौमुखी जाना सरल नहीं है।' पर उस समय और भी कोई उपाय नहीं ज्ञात था। सुंधवां नरेश ने मुस्कराते हुए कहा—'मैं कारीगरों को बुलाकर मंदिर का निर्माण आरंभ करवाता हूं।'

राजा सुंधवां ने अपने कर्मचारियों से कारीगरों को बुलवाकर मंदिर का निर्माण कार्य आरंभ करवा दिया।

रात-दिन लगातार सैकड़ों कारीगरों ने कार्य करके सुंदर मंदिर का निर्माण कर दिया।

शंकराचार्य ने प्रसन्न होकर अपने हाथ से गंगाजी और शिवजी की मूर्ति की प्रतिष्ठा की। यमुनाजी सरस्वती देवियों की मूर्तियों को भी प्रतिष्ठित किया गया।

राजा भागीरथ की प्रतिमा भी स्थापित की गई। शंकराचार्य अधिक प्रसन्न हुए, अब तीर्थ यात्रियों को गौमुखी जाने का कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा। गंगाजी का गंगोत्री में ही दर्शन हो जाएगा।

सभी तीर्थयात्री नए मंदिर में गंगा, यमुना, सरस्वती, शिवभोले के दर्शन करके, पूजा-अर्चना करके, प्रसन्नता से फूले न समाए, जयघोष से मंदिर गूंज उठा। उनकी तीर्थयात्रा सफल हो चुकी थी।

# 20

गंगोत्री में गंगाजी के मंदिर की स्थापना करके, देवियों की मूर्ति प्रतिष्ठित करके शंकराचार्य ने उत्तरकाशी जाने का निर्णय कर लिया।

ज्योतिर्धाम नरेश भी उत्तरकाशी तक उनके साथ आए।

उत्तरकाशी प्राचीन तीर्थ है। सैकड़ों ऋषि-मुनि, साधु-संन्यासी, योगियों ने मुक्ति की कामना से यहां तपस्या की थी।

काशी के सभी देवी-देवताओं का यहां निवास है।

उत्तरकाशी उत्तराखंड का मुख्य तीर्थस्थान है प्राचीन मंदिर है। प्रसिद्ध विश्वनाथजी का मंदिर है।

देवासुर संग्राम के समय छुटी हुई शक्ति भी यहीं देखने योग्य है। (मंदिर के सामने का त्रिशूल)

उत्तरकाशी, भागीरथी, असि, वरुणा नदियों के बीच में बसा है।

उत्तरवाहिनी गंगा उस पवित्र तीर्थ में अर्धचंद्राकर रूप में बहती हुई उसके सौंदर्य और महत्त्व को बढ़ा रही है।

पर्वतमालाओं से घिरा उत्तरकाशी का शांत वातावरण साधक को अनूठी अनुभूति दिलाता है।

शंकराचार्य अब सोलह वर्ष के हो चुके थे। उनकी जन्म-कुंडली के अनुसार उनकी आयु पूरी हो चुकी थी।

जिन महान कार्यों के लिए उन्होंने देह धारण की थी, वह कार्य पूरे हो चुके थे। यह अब उन्हें अनुभव हो चुका था।

अब वह अधिक समय समाधि अवस्था में व्यतीत करने लगे थे।

ज्योतिर्धाम नरेश शंकराचार्य के साथ-साथ तीर्थयात्रा करते हुए आए थे।

आज उदासी के बादल कैसे छा गए। सोचते हुए सुंधवां नरेश ने शंकराचार्य के चरण छूकर चरणरज मस्तक से लगाकर शंकराचार्य की ओर देखते हुए कहा, 'क्षमा करें गुरुदेव! आज मुख पर उदासी क्यों छाई हुई है?'

'राजन! इस गौमुख तीर्थयात्रा में तीर्थयात्रियों को जो कटु अनुभव हुआ है, मार्ग में जो संकट आए हैं, उनसे मुझे अधिक ही दुख पहुंचा है।'

मैं चाहता हूं तीर्थयात्रियों के लिए यहां गंगोत्री में मंदिर बनवाकर गंगादेवी की मूर्ति प्रतिष्ठित कर दी जाए।

वहीं शिवलिंग व यमुना, सरस्वती देवियों की भी मूर्ति स्थापित कर दी जाए। और तीर्थयात्रियों को यह समझा दिया जाए।

गंगोत्री में गंगादेवी और शिवजी का दर्शन करके वह गौमुखी दर्शन का फल पा जाएंगे।

'गुरुदेव, आपका यह सुझाव तो तीर्थयात्रियों के लिए अधिक ही लाभदायक है। सच मेरे मन में भी यह विचार कई बार आया था। तीर्थ यात्रियों का गौमुखी जाना सरल नहीं है।' पर उस समय और भी कोई उपाय नहीं ज्ञात था। सुंधवां नरेश ने मुस्कराते हुए कहा—'मैं कारीगरों को बुलाकर मंदिर का निर्माण आरंभ करवाता हूं।'

राजा सुंधवां ने अपने कर्मचारियों से कारीगरों को बुलवाकर मंदिर का निर्माण कार्य आरंभ करवा दिया।

रात-दिन लगातार सैकड़ों कारीगरों ने कार्य करके सुंदर मंदिर का निर्माण कर दिया।

शंकराचार्य ने प्रसन्न होकर अपने हाथ से गंगाजी और शिवजी की मूर्ति की प्रतिष्ठा की। यमुनाजी सरस्वती देवियों की मूर्तियों को भी प्रतिष्ठित किया गया।

राजा भागीरथ की प्रतिमा भी स्थापित की गई। शंकराचार्य अधिक प्रसन्न हुए, अब तीर्थ यात्रियों को गौमुखी जाने का कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा। गंगाजी का गंगोत्री में ही दर्शन हो जाएगा।

सभी तीर्थयात्री नए मंदिर में गंगा, यमुना, सरस्वती, शिवभोले के दर्शन करके, पूजा-अर्चना करके, प्रसन्नता से फूले न समाए, जयघोष से मंदिर गूंज उठा। उनकी तीर्थयात्रा सफल हो चुकी थी।

## 20

गंगोत्री में गंगाजी के मंदिर की स्थापना करके, देवियों की मूर्ति प्रतिष्ठित करके शंकराचार्य ने उत्तरकाशी जाने का निर्णय कर लिया।

ज्योतिर्धाम नरेश भी उत्तरकाशी तक उनके साथ आए।

उत्तरकाशी प्राचीन तीर्थ है। सैकड़ों ऋषि-मुनि, साधु-संन्यासी, योगियों ने मुक्ति की कामना से यहां तपस्या की थी।

काशी के सभी देवी-देवताओं का यहां निवास है।

उत्तरकाशी उत्तराखंड का मुख्य तीर्थस्थान है प्राचीन मंदिर है। प्रसिद्ध विश्वनाथजी का मंदिर है।

देवासुर संग्राम के समय छुटी हुई शक्ति भी यहीं देखने योग्य है। (मंदिर के सामने का त्रिशूल)

उत्तरकाशी, भागीरथी, असि, वरुणा नदियों के बीच में बसा है।

उत्तरवाहिनी गंगा उस पवित्र तीर्थ में अर्धचंद्राकर रूप में बहती हुई उसके सौंदर्य और महत्त्व को बढ़ा रही है।

पर्वतमालाओं से घिरा उत्तरकाशी का शांत वातावरण साधक को अनूठी अनुभूति दिलाता है।

शंकराचार्य अब सोलह वर्ष के हो चुके थे। उनकी जन्म-कुंडली के अनुसार उनकी आयु पूरी हो चुकी थी।

जिन महान कार्यों के लिए उन्होंने देह धारण की थी, वह कार्य पूरे हो चुके थे। यह अब उन्हें अनुभव हो चुका था।

अब वह अधिक समय समाधि अवस्था में व्यतीत करने लगे थे।

ज्योतिर्धाम नरेश शंकराचार्य के साथ-साथ तीर्थयात्रा करते हुए आए थे।

'राज्यकार्य देखे हुए अधिक समय व्यतीत हो गया, अब वापस ज्योतिर्धाम जाना चाहिए', सोचते हुए वह शंकराचार्य से ज्योतिर्धाम जाने की आज्ञा मांगने के लिए आए।

शंकराचार्य ने उनके सिर पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया।

'राजन! तुम उत्तराखंड में वैदिक धर्म का पुनः संस्थापन कार्य करना, यही मेरा आशीर्वाद है, धर्मकार्यों में सफलता प्राप्त करो।'

सुंधवां नरेश शंकराचार्य का आशीर्वाद लेकर उनके चरण छूकर वापस ज्योतिर्धाम चले गए।

अवकाश के समय ज्योतिर्धाम नरेश नाटक लिखते थे। उन्होंने कई नाटकों की रचना करके अपने गुरुदेव को दिखाने के लिए रखे थे।

शंकराचार्य अब अधिक समय तक समाधि अवस्था में रहने लगे थे।

उन्हें खाने-पीने आवश्यक कार्यों की भी सुध नहीं थी।

शिष्यों को चिंता हुई, गुरुजी की जन्मकुंडली में सोलह वर्ष की आयु है। कहीं गुरुजी अंतिम यात्रा की तैयारी तो नहीं कर रहे हैं।

हे इष्टदेव हमें ऐसा मंत्र बता दो, जिसके जाप से हमारे गुरुदेव की आयु दीर्घ हो जाए। हम अपने प्राण देकर भी अपने गुरुदेव की आयु दीर्घ होने की कामना करेंगे।

शंकराचार्य को अब अपने शरीर की भी सुध नहीं थी।

घंटों समाधि अवस्था में व्यतीत कर देते थे। उनके शिष्य ही उनके आवश्यक कार्यों का ध्यान रख रहे थे। और ऐसी युक्ति सोच रहे थे, जिससे उनके गुरुदेव का ध्यान (जीवभूमि) बाहर की ओर आकर्षित हो।

पद्मपाद ने प्रभृति को समझाते हुए कहा, 'गुरुदेव को भाष्य में रुचि है, यदि भाष्यादि को पढ़ाने के लिए गुरुदेव को कहें तो संभव है वह थोड़ी देर को जीवभूमि पर उतरकर भाष्य पढ़ाने को तैयार हो जाएं।'

यह उक्ति सभी को अच्छी लगी, जब शंकराचार्य समाधि अवस्था से जागृत हुए तब पद्मपाद ने उनके चरण छूते हुए कहा, 'गुरुदेव! हमें भाष्यादि पढ़ा दिया करें, तो हमारे समय का भी सदुपयोग हो जाए और दूसरों से शास्त्रार्थ करने योग्य भी हो जाएं।'

'ठीक है हम तुम्हें ब्रह्मसूत्र भाष्य पढ़ाया करेंगे', शंकराचार्य ने पद्मपाद का आग्रह मानकर सभी शिष्यों को पढ़ाना आरंभ कर दिया।

शिष्य भी अधिक उत्साह से पढ़ने लगे।

एक दिन प्रातःकाल शंकराचार्य अपने शिष्यों को शारीरिक सूत्रभाष्य पढ़ा रहे थे। तभी एक वृद्ध ब्राह्मण वहां आया और शिष्यों से बोला, 'यहां एक संन्यासी

ब्रह्मसूत्र पढ़ाते हैं। वह कहां हैं? क्या बता सकते हो।'

'महात्मन! आप यहां बिराजिए', शिष्यों ने वृद्ध ब्राह्मण को आसन देते हुए कहा, 'समस्त शास्त्र जिन्हें कंठस्थ हैं, वही यहां हमारे गुरु शंकराचार्य विराजमान हैं।'

शिष्य ने संकेत से शंकराचार्य को उस वृद्ध ब्राह्मण को दिखाते हुए कहा, 'इन्होंने समस्त भेदाभेद का खंडन करके शारीरिक सूत्र का जो भाष्य लिखा है वही हमें पढ़ा रहे हैं।'

वृद्ध ब्राह्मण आसन पर नहीं बैठा। शंकराचार्य की ओर देखते हुए बोला, 'ये लोग तुम्हें तो वेदव्यास रचित ब्रह्मसूत्र का भाष्यकार मानते हैं।'

'तुम यह बताओ, तृतीय अध्याय के प्रथम पाद के प्रथम सूत्र का तात्पर्य क्या है?'

'जिन आचार्यों को सूत्र की व्याख्या ज्ञात है, उन्हें मैं प्रणाम करता हूं।' शंकराचार्य ने नम्रता से कहा, 'सूत्रवत होने का मुझे गर्व नहीं है। आपने जो प्रश्न उठाया है उसका उत्तर देता हूं।'

इतना कहकर शंकराचार्य ने उस सूत्र की ठीक-ठीक व्याख्या करके, बूढ़े ब्राह्मण को सुना दी।

ब्राह्मण ने व्याख्या का खंडन करके और प्रश्न पूछा, शंकराचार्य ने तुरंत ही उसका उत्तर दे दिया।

बूढ़ा ब्राह्मण एक के बाद दूसरा प्रश्न कर रहा था। शंकराचार्य तुरंत ही उसका उत्तर दे देते थे।

इसी प्रकार आलोचना प्रसंग में सारा ब्रह्मसूत्र, चार वेद, कर्मकांड, ज्ञानकांड, विविधि शास्त्र, विभिन्न मतों की चर्चा भी चलने लगी।

प्रश्न-पर-प्रश्न वृद्ध ब्राह्मण किए जा रहा था और शंकराचार्य उसका तुरंत उत्तर देते जा रहे थे।

वृद्ध ब्राह्मण और शंकराचार्य की विद्वत्ता स्मृति-शक्ति अंतर्दृष्टि को देखकर सभी शिष्य आश्चर्य से दोनों विद्वानों को देखते रह गए।

दोपहर हो चुकी थी, बूढ़ा ब्राह्मण यह कहकर बाहर की ओर चला गया, 'कल फिर शास्त्रार्थ के लिए आऊंगा।'

सात दिन तक बूढ़े ब्राह्मण का शंकराचार्य जी से लगातार शास्त्रार्थ चला।

ब्राह्मण ने अनेक जटिल प्रश्न किए, शंकराचार्य ने सबका यथार्थ उत्तर दिया।

सातवें दिन शास्त्रार्थ समाप्त करके वृद्ध ब्राह्मण चले गए।

सभी शिष्य दोनों विद्वानों की ज्ञान-प्रतिभा को आश्चर्य से देखते रह गए।

उन्हें यह भी ज्ञात हो गया, गुरुदेव अथाह ज्ञान के भंडार हैं।

पद्मपाद ने बूढ़े ब्राह्मण को शास्त्रार्थ समाप्त करके जाते हुए देखा और अपने गुरु शंकराचार्य की ओर देखते हुए उनसे पूछा, 'गुरुदेव! आपकी तरह ही यह विद्वान ब्राह्मण अधिक प्रतिभाशाली है, कहीं वेदव्यास ही ब्राह्मण वेश धारण करके गुरुदेव की परीक्षा लेने तो नहीं आए हैं।'

'हां मुझे भी ऐसा ही ज्ञात होता है पद्मपाद व्यास जी ही यहां आए थे।'

शंकराचार्य ने मुस्कराकर पद्मपाद की ओर देखते हुए कहा, 'अब जब वह आएं तो उनका परिचय पूछ लेना।'

वृद्ध ब्राह्मण फिर नियत समय पर आए और शंकराचार्य से एक जटिल प्रश्न पूछा।

शंकराचार्य ने उठकर वृद्ध ब्राह्मण की चरणवंदना की और उन्हें आग्रह करके आसन पर बिठाया।

फिर नम्रता से झुकते हुए कहा, 'महात्मन्! आपके प्रश्न का उत्तर देने से पहले मैं आपका परिचय जानना चाहता हूं।

हम सबका विचार है, आप वेदव्यास कृष्ण द्वैपायन हैं। संभव है आप किसी देवकार्य के लिए छद्म वेश में हमें छलने आए हैं।

यदि आप महामुनि कृष्ण द्वैपायन ही हैं तो कृपा करके अपना असली रूप दिखाइए। मैं आदिगुरु की वंदना करके कृतार्थ हो जाऊं।'

'तुम्हारा अनुमान सत्य है शंकर', बूढ़े ब्राह्मण ने प्रसन्न होकर अपना असली रूप शंकराचार्य को दिखाकर उनके सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए कहा, 'मैं वेदव्यास ही हूं।'

शंकराचार्य हर्ष में भरकर उनके चरणों में झुक गए, उनके चरणों की रज अपने मस्तक से लगाकर उनकी स्तुति करने लगे।

'हे ऋषिवर द्वैपायन आपके श्री चरणों के दर्शन करके मेरा जीवन धन्य हो गया।

आपने परोपकार के लिए आत्मोत्सर्ग किया है। हे मुनिवर! आपने जीव-कल्याण के लिए जिन लोकहित कार्यों का साधन किया, वे संसार में चिरकाल तक अमर रहेंगे।

आपने अष्टादश पुराण, महापुराण, उपपुराणों का संकलन किया है।

आपने वेद को चार भागों में विभक्त किया है, आपके लिए संसार में अज्ञात कुछ भी नहीं है, आप हमारे आदि गुरु हैं। हम सबका प्रणाम स्वीकार कीजिए।'

महर्षि वेदव्यास शंकराचार्य की स्तुति, नम्रता, ज्ञान से अधिक प्रसन्न हुए और मुस्कराकर शंकराचार्य की ओर देखते हुए बोले, 'तुम्हारी विद्वत्ता-प्रतिभा का परिचय पाकर मैं अधिक ही प्रसन्न हूं शंकर! तुम्हारे अतिरिक्त मेरे प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं

दे सकता था।

मेरे सूत्रों का तुमने भाष्य लिखा है सुनकर मैं तुम्हें देखने आया था।

मुझे ज्ञात था शंकर भगवान, शंकररूप में मेरे सूत्रों की भाष्य रचना करेंगे।'

'महर्षि! यह भाष्य ग्रंथ आपके चरण कमलों में अर्पित करता हूं।' यह कहते हुए भाष्य ग्रंथ महर्षि के चरणों में रख दिए।

महर्षि भाष्य ग्रंथों को देखकर प्रसन्न हो गए और मुस्कराते हुए बोले, 'शंकर! सूत्रों में मेरे अस्फुट मनोभावों को भाष्य में तुमने जिस प्रकार प्रयोग किया है कोई और नहीं कर सकता।

गोबिंदपाद और उनके गुरु गौड़पाद आदि मेरे ही शिष्य-सम्प्रदाय के हैं।

गौड़पाद ने मेरे पुत्र शुक से शास्त्रादि की शिक्षा ली थी। श्रुति व स्मृति की भाष्य रचना करने का भार भी तुम्हारे ऊपर है।'

'मैंने वह भी आपकी इच्छा पूर्ण की है'—श्रुति व स्मृति के भाष्यों को वेदव्यास के सामने रखकर शंकराचार्य मुस्कराए, 'इन्हें आप देख लीजिए।'

'तुमने अपनी योग्यता-अनुसार ही यह कार्य किया है शंकर', एकाग्रता से श्रुति, स्मृति के भाष्य को पढ़कर, वेदव्यास प्रसन्न होते हुए बोले, 'तुमने यह कार्य इतना सुचारु रूप से किया है और कोई इस प्रकार नहीं कर सकता था।'

'महर्षि अब तो सभी कार्य समाप्त हो गए, मेरी इच्छा है आपके सामने ही समाधि योग द्वारा शरीर छोड़ दूं....शंकराचार्य ने वेदव्यास के चरण छूते हुए कहा, 'आज्ञा दीजिए।'

'अभी तुम्हारा कार्य समाप्त नहीं हुआ है'—वेदव्यास ने थोड़ी देर ध्यान में लीन होकर आंखें खोलते हुए कहा, 'अभी तो भारत के प्रसिद्ध पंडितों को शास्त्रार्थ में पराजित करके उन्हें अपना अनुयायी बनाना है।'

वेदव्यास ने शंकराचार्य के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए कहा, 'तुम्हारी आयु सोलह वर्ष और बढ़ गई है।

तुम बत्तीस वर्ष की आयु तक विभिन्न मतों के पाखंडों की पोल खोलकर ब्रह्मात्म विज्ञान की प्रतिष्ठा कराओगे।

महान कर्मकांडी कुमारिलभट्ट को शास्त्रार्थ में पराजित करना पहला कार्य होगा समस्त कार्य समाप्त करके तुम अपने स्वरूप में लीन हो जाओगे।' कहते हुए आदिगुरु वेदव्यास सभी के देखते-देखते अदृश्य हो गए।

पद्मपाद और सभी शिष्य हर्ष में भरे हुए थे, उनके गुरु शंकराचार्य की आयु सोलह वर्ष बढ़ गई।

# 21

महर्षि वेदव्यास के अदृश्य होने के पश्चात शंकराचार्य सोचने लगे, किसी प्रकार कुमारिलभट्ट का पता लगाया जाए।

किसी को भी यह ज्ञात नहीं था, कुमारिलभट्ट कहां रहते हैं।

शंकराचार्य को कुमारिलभट्ट के विषय में सोचते देखकर, शंकराचार्य के शिष्य भी अधिक चिंतित हुए।

'गुरुजी आजकल खोए-खोए रहते हैं।' शिष्य परस्पर कहते, 'किस प्रकार कुमारिलभट्ट का पता लगा जाए, वह कहां रहते हैं, तब गुरुजी की उदासी दूर हो जाए!'

'कई दिनों से एक ब्राह्मण गुरुजी से शास्त्र व्याख्या सुनने के लिए आता है', प्रभृति ने गुरुभाइयों की ओर देखते हुए कहा, 'संभव है उससे कोई पता लग जाए।'

'उससे पद्मपाद भाई इस विषय में बात करके देखें संभव है, समस्या का हल निकल आए।'

'ठीक है, मैं पद्मपाद भाई से कहता हूं आज जब वह ब्राह्मण, आचार्य से, शास्त्र व्याख्या के विषय में वार्तालाप कर चुके, तब हम उससे हम विषय में बात करेंगे', वह अभी और कुछ कहना चाहता था तभी वह ब्राह्मण शंकराचार्य से शास्त्र व्याख्या सुनने के लिए आ गया।

जब शास्त्र व्याख्या सुन चुका, तब पद्मपाद ने ब्राह्मण को अपने समीप बुलाकर आदर से बिठाते हुए उससे कुमारिलभट्ट के विषय में पूछा, 'ब्राह्मण देवता! क्या आपको कुमारिलभट्ट के विषय में कुछ ज्ञात है। वह कहां रहते हैं, क्या करते हैं?'

'क्या आपको उनके विषय में ज्ञात नहीं'—ब्राह्मण ने शंकराचार्य के शिष्यों की

ओर देखते हुए कहा।

'आर्य भूमि में वैदिक धर्म की पुनः स्थापना के लिए जिन्होंने शरीर धारण किया है, उस महान आत्मा के विषय में तुम्हें कुछ भी ज्ञात नहीं।'

'ब्राह्मण देवता! यहां हम सब अपनी शिक्षा-साधना में लगे हैं, यहां से कहीं दूर यात्रा के लिए नहीं गए, इसी कारण हमें उन महान आत्मा के विषय में ज्ञात नहीं।'

प्रभृति ने नम्रता से ब्राह्मण देवता से कहा, 'कृपया आप ही उन महान आत्मा के विषय में बताने की कृपा करें।'

'सुनो! दक्षिण भारत के चोल प्रदेश में धर्मात्मा ब्राह्मण के घर कुमारिलभट्ट का जन्म हुआ।

छोटी आयु में ही उन्होंने इतना ज्ञान प्राप्त कर लिया, वेदों के प्रसिद्ध ज्ञाता विद्वान के रूप में उनकी प्रसिद्धि चारों ओर फैल गई।'

ब्राह्मण ने मुस्कराकर प्रभृति की ओर देखते हुए कहा—'कुमारिलभट्ट प्रातः स्मरणीय मानव हैं।'

वेद विरोधी, विभिन्न धर्मवालों को शास्त्रार्थ में पराजित करके उन्होंने वैदिक कर्मकांड की पुनः प्रतिष्ठा की, वो तो महान विद्वान हैं।

इस समय अधिक वृद्ध हो गए हैं। इस कारण प्रयागधाम में निवास कर रहे हैं।'

'हम आपके अधिक आभारी हैं ब्राह्मण देवता, आपने इतने महान दिग्विजयी विद्वान का परिचय हमें बताया।'

'उनके विषय में और भी आपको ज्ञात हो या किसी श्रद्धालु से सुना हो, वह भी बताइए', पद्मपाद ने ब्राह्मण को धन्यवाद देते हुए कहा, 'हमें उन महान मानव के जीवन विषय में सुनने की और भी तीव्र इच्छा हो गई है।'

'कुमारिलभट्ट महान मानव हैं। वेदों की प्रतिष्ठा करना उनका ध्येय है। यह तो तुम जान ही गए।' ब्राह्मण ने शंकराचार्य के शिष्यों की ओर देखते हुए कहा, 'एक समय बौद्धमत के विषय में जानने के लिए भी कुमारिलभट्ट बौद्धमत के अनुयायी बने।'

'धर्मकीर्ति कुमारिलभट्ट के भ्रातृपुत्र हैं, उन्होंने बौद्धाचार्य धर्मपाल से बौद्ध धर्म की दीक्षा लेकर विशेष धर्मयोग्यता प्राप्त कर ली थी और अपने घर आकर धर्मकीर्ति ने कुमारिलभट्ट से शास्त्रार्थ किया।

शास्त्रार्थ में यह शर्त रखी गई, जो शास्त्रार्थ में पराजित होगा, उसे विजयी का

धर्म ग्रहण करना पड़ेगा।

उस समय कुमारिलभट्ट, धर्मकीर्ति से शास्त्रार्थ में पराजित हो गए और उन्हें बौद्ध धर्म अपनाना पड़ा। पर उनके मन में अब भी वैदिक धर्म के प्रति अधिक श्रद्धा थी। वह उस अवसर की खोज में थे, जब फिर से वैदिक धर्म का झंडा फहराएं।

धर्मपाल व उनके अनुयायी जब वेदों की निंदा करते, तब कुमारिलभट्ट अत्यंत दुखी होते।

उस समय प्रत्येक धर्मावलम्बी अपने धर्म को ही सत्य व सर्वश्रेष्ठ मानता था।

अपने गुरु धर्मपाल के मुख से वेदों की निंदा सुनकर कुमारिलभट्ट को अधिक दुख हुआ और उन्होंने बौद्धमत की त्रुटि के विषय में संकेत कर दिया।

बौद्धाचार्य, धर्मपाल क्रोध में भर गए और उन्होंने बौद्ध भिक्षुओं को आदेश दिया—

'कुमारिलभट्ट को ऊंचे भवन से गिराकर मृत्युदंड दिया जाए।'

'यदि वेद सत्य हैं तो मेरे जीवन की रक्षा अवश्य होगी', कहते हुए कुमारिलभट्ट ने वह दंड स्वीकार कर लिया।

कुमारिलभट्ट को ऊंचे भवन से गिराकर मृत्युदंड दिया जा रहा है। श्रद्धालु ब्राह्मणों ने जब यह सूचना सुनी, तब वह नालंदा बिहार की ओर चल पड़े। कुमारिलभट्ट को ऊंचे भवन से गिरा दिया गया था, पर वह जीवित थे।

सभी बौद्ध भिक्षु आश्चर्य से देख रहे थे। कुमारिलभट्ट जीवित थे।

कुमारिलभट्ट को जीवित देखकर ब्राह्मण हर्ष में भरकर जयघोष करने लगे और कुमारिलभट्ट को नालंदा बिहार से जयघोष करते हुए ले आए।

कुमारिलभट्ट की विजय, हिंदुओं ने हिंदू धर्म की विजय मान ली।'

'क्या कुमारिलभट्ट की विजय बौद्ध धर्मवालों ने भी मान ली', शंकराचार्य के शिष्यों ने ब्राह्मण की ओर देखते हुए कहा, 'अधिक चमत्कार-पूर्ण घटना है।'

'जी हां', ब्राह्मण मुस्कराया, 'आगे सुनो ब्राह्मणों का तो इस घटना से और भी उत्साह बढ़ गया। उन्होंने एक विशाल धर्म विचार सभा में बौद्धाचार्य धर्मपाल को कुमारिलभट्ट से शास्त्रार्थ के लिए बुलाया।

धर्म आचार्यों ने उसमें यह शर्त रखी—शास्त्रार्थ में जो पराजित होगा, उसे विजयी का मत का ग्रहण करना पड़ेगा।

दोनों धर्मों के आचार्यों ने यह शर्त स्वीकार कर ली, शास्त्रार्थ आरंभ हुआ, बौद्धाचार्य धर्मपाल उस शास्त्रार्थ में पराजित हो गए।'

'फिर क्या उन्होंने वैदिक धर्म को ग्रहण कर लिया', शंकराचार्य के शिष्यों ने

उत्सुकता से ब्राह्मण की ओर देखा, 'आप चुप क्यों हो गए ब्राह्मण देवता आगे सुनाओ।'

'तुम्हारे गुरु शंकराचार्य इसी ओर आ रहे हैं', कहते हुए ब्राह्मण ने उठकर आगे बढ़कर शंकराचार्य के चरण छुए और चलते हुए बोला, 'इसके पश्चात की घटना मैंने अभी नहीं सुनी।'

'जब सुन लूंगा तब आकर बताऊंगा।' कहते हुए ब्राह्मण अपने निवास-स्थल की ओर चल पड़ा।

शंकराचार्य ने अपने शिष्यों से कुमारिलभट्ट की सारी घटना सुनी और तुरंत ही प्रयागधाम की ओर चल पड़े।

शंकराचार्य जिस समय प्रयागधाम पहुंचे, कुमारिलभट्ट जीवित अग्नि में जलने की तैयारी कर रहे थे।

बड़ा भारी लकड़ियों का ढेर चुना हुआ था उसके चारों ओर श्रद्धालु मानवों की भीड़ खड़ी हुई हाहाकार कर रही थी।

शंकराचार्य लम्बे-लम्बे डग भरते भीड़ को हटाते, लकड़ियों के ढेर के समीप पहुंच गए। उसमें अग्नि लगा दी गई थी और कुमारिलभट्ट उसमें बैठे हुए थे।

'यह क्या कर रहे हो महात्मन, मैं तो वेदव्यासजी की आज्ञा से आपसे शास्त्रार्थ करने आया था।' आगे बढ़कर कुमारिलभट्ट को प्रणाम करते हुए शंकराचार्य ने कहा, 'मैं अग्नि को शांत करता हूं आप नीचे उतरिए।'

'तुम्हें देखकर मुझे अधिक हर्ष हुआ—यतीवर!' कुमारिलभट्ट ने शंकराचार्य के प्रणाम का उत्तर देते हुए कहा।

'गुरुवध दोष मुझ पर लग चुका है, उसी का प्रायश्चित करने को इस शरीर को अग्नि से जलाकर तयाग रहा हूं।'

'महात्मन् मैंने सुना था, बौद्धाचार्य धर्मपाल से आपका शास्त्रार्थ हुआ था।'

'हां बौद्धाचार्य धर्मपाल शास्त्रार्थ में मुझसे पराजित हो गए थे।' कुमारिलभट्ट ने लम्बी सांस लेते हुए कहा, 'ब्राह्मणों ने शर्त रखी थी—जो धर्माचार्य शास्त्रार्थ में पराजित होगा उसे विजयी धर्माचार्य का मत ग्रहण करना पड़ेगा या जीवित ही जलकर शरीर त्यागना होगा।

बौद्धाचार्य पराजित हो गए थे उन्होंने कहा था, कुमारिलभट्ट की प्रतिभा से मैं पराजित हो गया, पर बौद्ध धर्म पर मेरी अटूट श्रद्धा है। इस कारण मैं जीवित ही अग्नि में बैठकर शरीर त्याग दूंगा।

बौद्धाचार्य धर्मपाल ने अग्नि में प्रवेश करके शरीर छोड़ दिया। मैंने उनसे बौद्ध

धर्म की शिक्षा ली थी, गुरु माना था। मेरे कारण ही उन्होंने जीवित अग्नि में बैठकर शरीर त्यागा।

मैं उसका प्रायश्चित करने को अग्नि में बैठकर शरीर त्याग रहा हूं। यदि तुम पहले से आते तो संभव है अभी शरीर नहीं त्यागता।'

'मेरा कार्य अधूरा रह गया महात्मन् इसी कारण अग्नि को शांत करना चाहता था', शंकराचार्य ने आंखों में आंसू भरकर कहा, 'अग्नि को शांत करने की आज्ञा दें।'

'अब तो मेरा अंत समय आ गया आचार्य, मेरा शिष्य मंडन मिश्र भी अधिक विद्वान है तुम उससे शास्त्रार्थ करना, उसकी पराजय मेरी ही पराजय होगी।

उस शास्त्रार्थ में मंडन मिश्र की विदुषी पतनी उभयभारती (सरस्वती) को मध्यस्थ बनाना।

विदुषी उभयभारती शास्त्रार्थ में मध्यस्थ होने योग्य है इस समय और कोई विद्वान उससे योग्य नहीं है।'

'हे पंडितसम्राट! अद्वैत सिद्धांत के प्रचारार्थ ब्रह्मसूत्र आदि के मैंने भाष्य लिखे हैं। मेरे भाष्यों का वार्तिक लिखने के लिए ही वेदव्यासजी ने मुझे भेजा था। आप अग्नि से बाहर आ जाइए।'

'यतीवर! व्यासकृत ब्रह्मसूत्र के प्रथम अध्याय पर मैंने आठ हजार श्लोक-वार्तिक की रचना की है—दूसरे अध्याय के विषय में भी सोचा था पर वह पूरा नहीं हुआ।

आप जैसे महातमा के अंत समय दर्शन हो गए, मैं कृतार्थ हो गया।' शंकराचार्य की ओर देखते हुए कुमारिलभट्ट ने कहा।

'अब आप क्षणभर प्रतीक्षा करके मुझे तारकब्रह्म का नाम सुनाइए, अग्नि की लपटें तेजी से चारों ओर से मुझे घेर रही हैं।

आपके सामने ही शरीर छोड़ रहा हूं चित्त परब्रह्म में लीन है', कहते हुए कुमारिलभट्ट मौन हो गए।

अग्नि की लपटें और भी तेज हो गईं। श्रद्धालु जनता हाहाकार कर उठी, शंकराचार्य करुणा से भरे उठे।

गंभीर स्वर से तारकब्रह्म का उच्चारण करने लगे। अग्नि ने कुमारिलभट्ट के शरीर को तेज लपटों से भस्म कर दिया।

वेद सूर्य प्रयागतीर्थ अस्त हो गया। कुमारिलभट्ट की आत्मा अमरधाम सिधार गई।

## 22

शंकराचार्य कुमारिलभट्ट का इस प्रकार अग्नि प्रवेश करके, देह त्यागना देखकर अधिक ही उदास हुए।

कुमारिलभट्ट के उत्साह अथक परिश्रम से ही तो सारे भारत में वैदिक कर्मकांड फिर से आरंभ हुए थे। उन्होंने यज्ञादि अनुष्ठान करके उसका फल दिखाकर, जनता को वैदिक कर्मादि में श्रद्धावन बनाया था।

मीमांसा शास्त्र के श्लोक वार्तिक, तंत्रवार्तिक, मानवधर्म सूत्र-भाष्य आदि और अनेक प्रामाणिक ग्रंथों की उन्होंने रचना की थी।

शंकराचार्य मन-ही-मन कुमारिलभट्ट की विद्वत्ता और धर्म-प्रचार के लिए अथक परिश्रम को स्मरण करते हुए गंगा-जमुना के संगम में स्नान करके शिष्यों सहित आगे की ओर चल पड़े।

शंकराचार्य के शिष्य चलते हुए सोच रहे थे कुमारिलभट्ट के शिष्य मंडन मिश्र उन जैसे ही विद्वान प्रतिभाशाली होंगे, तभी कुमारिलभट्ट ने गुरु शंकराचार्य को उनसे शास्त्रार्थ करने के लिए कहा था। पर वह कहां मिलेंगे, यह तो बताया ही नहीं, शंकराचार्य भी यही सोचते हुए आगे बढ़े जा रहे थे। बिना पते के उनका निवास-स्थान कैसे ढूंढेंगे।

रात्रि को किसी मंदिर व देवस्थान में विश्राम करते, प्रातःकाल नित्य कर्मों से निबटकर आगे की ओर चल पड़ते।

चलते-चलते मार्ग में यदि कोई पथिक मिल जाता तो उससे मंडन मिश्र के विषय में पूछते। आप माहिष्मती नगर की ओर जाएं', एक यात्री ने शंकराचार्य के शिष्यों को बताया 'वहां से आपको महान पंडित मंडन मिश्र का पता ज्ञात हो सकता है।'

'ओंकार नाथ के निकट नर्मदा और माहिष्मती नदियों का संगम-स्थल है, कहते हैं वहीं मंडन मिश्र माहिष्मती नगरी में निवास करते हैं' कहते हुए पथिक ने संन्यासी शंकराचार्य को शिष्यों सहित प्रणाम किया और लम्बे-लम्बे डग भरता एक ओर चला गया।

शंकराचार्य चलते-चलते माहिष्मती नगर पहुंच गए। मार्ग में कई युवती दासियां जल भरकर आगे की ओर जा रही थीं।

पद्मपाद ने आगे बढ़कर उनसे मंडन मिश्र के निवास-स्थल के विषय में पूछा, 'देवी क्या आप यह बताएंगी महान पंडित मंडन मिश्र का निवास-स्थल कहां है।'

'विप्रवर! जिस घर के सामने तोता-तोती आपस में वार्तालाप करते हुए यह कहते हैं, 'वेद स्वतः प्रमाण है या परतः प्रमाण कर्म ही फलदाता है।'

'ईश्वर अथवा जगत नित्य है या अनित्य, तोता-तोती ऐसी वाणी बोलते हुए मिलें, आप समझ लीजिए वही घर महान पंडित मंडन मिश्र का है।'

दासियों को संस्कृत में वार्तालाप करते हुए देखकर शंकराचार्य के शिष्य चकित रह गए और उनके बताए हुए पते पर मंडन मिश्र का निवास-स्थल ढूंढ़ने लगे।

थोड़ी दूर पर ही उन्हें तोता (शुक) तोती दिखाई दिए वह आपस में यही वार्तालाप कर रहे थे। यही मंडन मिश्र का निवास-स्थल है पर इसके तो द्वार बंद हैं।

पद्मपाद ने आगे बढ़कर द्वारपाल से कहा, 'मंडन मिश्र को सूचना दो, शंकराचार्य उनसे भेंट करने आए हैं।'

'यतीवर! इस समय वह नहीं भेंट करेंगे', द्वारपाल ने पद्मपाद की ओर देखते हुए कहा, 'आज वह पितृश्राद्ध कर रहे हैं।'

'तुम भीतर जाकर उन्हें बताओ, हमारे गुरु शंकराचार्य उनसे मिलने अधिक दूर से आए हैं।'

प्रभृति ने द्वारपाल को समझाते हुए कहा, 'संभव है वह भीतर बुला लें।'

द्वारपाल भीतर गया और थोड़ी देर में ही बाहर आकर बोला, 'विप्रवर! मिश्रजी ने आप सब के ठहरने का प्रबंध करवाने के लिए कहा है। पर भीतर आने का आदेश नहीं दिया।''

'वह पितृश्राद्ध कर रहे हैं जिसमें संन्यासी नहीं सम्मिलित हो सकता', द्वारपाल ने नम्रता से कहा, 'इस समय आप विश्राम कीजिए, कल वह आप सबसे भेंट करेंगे।'

'तुम सब यहां ठहरो', शंकराचार्य ने पद्मपाद से कहा, 'हम भीतर मंडन मिश्र से मिलने जा रहे हैं।'

द्वारपाल अपलक आश्चर्य से उस ओर देखता रह गया, शंकराचार्य योगबल से आकाश मार्ग से मंडन मिश्र के घर के भीतर पहुंच गए थे।

शंकराचार्य योगबल से आकाश मार्ग से मंडन मिश्र के घर के आंगन में पहुंचे, वहां उन्होंने देखा, मंडन मिश्र जैमिनि और कृष्णद्वैपायन की सेवा में लगा हुआ है।

मंडन मिश्र अलौकिक शक्तियों के अधिकारी थे, उन्होंने वेद मंत्र के बल से ही सूक्ष्म देहधारियों का आवाहन करके पितृश्राद्ध में निमंत्रित किया था।

आकाश पथ से एक नए संन्यासी को घर के भीतर आते देखकर मंडन मिश्र चकित रह गए।

शंकराचार्य ने दोनों ऋषियों की चरण-वंदना की, जिसे देखकर मण्डन मिश्र क्रोध में भर गए और शंकराचार्य को अपमानसूचक शब्द कहने लगे।

शंकराचार्य मुस्कराकर उनका उत्तर देते रहे, मंडन मिश्र को क्रोध में भरकर शंकराचार्य का अपमान करते देखकर, वेदव्यास उसके व्यवहार से दुखी हो गए, वह मंडन मिश्र को समझाते हुए बोले, 'मंडन मिश्र, यह यती हैं विष्णुस्वरूप और अतिथी भी हैं। इनसे ऐसा अपमानजनक व्यवहार उचित नहीं, इनका तो तुम्हें सत्कार करना चाहिए था, तुम उनका अपमान कर रहे हो।'

ऋषियों के इस प्रकार समझाने से मंडन मिश्र लज्जित हो गए और शंकराचार्य से अपने व्यवहार की क्षमा मांगकर उनसे भोजन के लिए कहने लगे।

'मैं भोजन करने के लिए यहां नहीं आया हूं मिश्रजी', शंकराचार्य ने मुस्कराते हुए कहा, 'तुमसे शास्त्रार्थ करने के उद्देश्य से आया हूं।'

'शास्त्रार्थ में जो पराजित होगा उसे विजयी का शिष्य बनना पड़ेगा, बस, मैं तो शास्त्रार्थ की भिक्षा लेने आया हूं।

प्रयागधाम में जब मैं कुमारिलभट्ट से शास्त्रार्थ करने के लिए पहुंचा, तब वह गुरु वध के कारण रूप में प्रायश्चित कर अग्नि में प्रवेश करके शरीर त्याग रहे थे।

उन्होंने ही मुझे आपके पास शास्त्रार्थ के लिए भेजा है, आपकी प्रतिभा, विद्वत्ता की भी उन्होंने अधिक प्रशंसा की थी। और कहा था यदि आपकी पराजय हो जाए तो वह पराजय उनकी ही मानी जाएगी।

शास्त्रार्थ में पराजित होकर आपको मेरी लिखित प्रस्थान त्रय के भाष्यों के वार्तिक की रचना करनी पड़ेगी।

इससे अद्वैत-ब्रह्मात्म विज्ञान अमर हो जाएगा, इस कारण यहां आया हूं।'

'मेरे गुरुदेव देह त्याग गए' लम्बी सांस लेकर आंखों में आए आंसुओं को पोंछते हुए मंडन मिश्र ने शंकराचार्य की ओर देखते हुए कहा।

'ईश्वरो नास्ति इस बात को मैंने प्रमाणित किया है महात्मन्! मैं आपसे शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार हूं।

आज श्राद्ध कार्य से निबट जाऊं, कल प्रातःकाल से ही शास्त्रार्थ आरंभ होगा।'

'पूज्य आप दोनों हमारे मध्यस्थ बनें, दोनों ऋषियों की ओर देखते हुए शंकराचार्य ने कहा, 'क्या आप यह अनुग्रह करेंगे।'

'हम मध्यस्थ नहीं बन सकते शंकर, मंडन मिश्र की पत्नी ही मध्यस्थ बनेगी', यह कहकर दोनों ऋषि अदृश्य हो गए।

मंडन मिश्र ने शंकराचार्य का यथोचित आदर-सत्कार करके विश्राम-स्थल पर पहुंचा दिया और उनसे प्रातःकाल विचार-विमर्श करने का निर्णय कर लिया।

संन्यासी शंकराचार्य मंडनमिश्र से शास्त्रार्थ करने के लिए माहिष्मती पधारे हैं।

माहिष्मती नगर के श्रद्धालु नागरिक शंकराचार्य के दर्शनों के लिए यह सूचना सुनकर आने लगे।

'कैसा तेजस्वी संन्यासी है, मुंह पर कितना तेज है और सरल मुस्कराहट मन को अपनी ओर खींच रहा है।'

'बंधु, कहीं तुम इनकी ओर आकर्षित होकर इनके शिष्य न बन जाना', श्रद्धालु दर्शनार्थी ने अपने पड़ोसी से परिहास करते हुए कहा, 'भाभी भी टकटकी लगाए उसकी ओर देख रही थी।'

'तुम्हें परिहास सूझ रहा है, मेरा मन तो इनके समीप से दूर जाने को नहीं कर रहा है।'

'अरे संन्यासी से कैसा मोह बंधु, वह तो विरक्त है आज यहां कल न जाने कहां चला जाएगा।'

'हम भाग्यशाली हैं जो ऐसे महामानवों के दर्शन कर रहे हैं', अपने पड़ोसी को संकेत से शंकराचार्य को दिखाते हुए श्रद्धालु भक्त ने कहा, 'महा पंडित सम्राट मंडन मिश्र से इन महा देवस्वरूप संन्यासी का शास्त्रार्थ होगा।'

'बंधु दोनों ही प्रतिभाशाली शास्त्रज्ञाता विद्वान हैं।'

'देखो शास्त्रार्थ में कौन विजयी होता है....जो शास्त्रार्थ में दूसरे को पराजित कर देगा वह ही अधिक विद्वान माना जाएगा।'

'मंडन मिश्र वेद मंत्रबल से अशरीर आत्माओं को बुला सकते हैं।'

'शंकराचार्य भी आकाशमार्ग से योगबल द्वारा मंडन मिश्र के आंगन में पहुंच

गए थे, हमने यह सुना था।'

दूसरे श्रद्धालु ने अपने समीप खड़े हुए मित्र से कहा, 'जब तक आंखों से ऐसी घटना न देख लें, विश्वास नहीं आता।'

'कल अपने पड़ोसी द्वारपाल से उस घटना के विषय में पूछेंगे।'

'अब चलो बंधु, बातों-बातों में कितनी रात्रि व्यतीत हो गई ज्ञात ही नहीं हुआ।'

'कल प्रातःकाल से ही शास्त्रार्थ-स्थल पर पहुंचना है।'

'अब तो चलकर विश्राम करो', शंकराचार्य के दर्शन करके आपस में उनके विषय में वार्तालाप करते हुए श्रद्धालु मानव अपने-अपने निवास-स्थल की ओर चले गए।

## 23

सूर्य अपनी सुनहरी किरणों का जाल फैलाता हुआ पृथ्वीतल का अंधकार दूर कर के लिए आकाश से झांकते हुए प्रकाश फैला रहा था।

पशु-पक्षी अपने-अपने निवास-स्थलों से निकलकर भोजन की खोज इधर-उधर घूम रहे थे।

महान धर्म-प्रचारक संन्यासी शंकराचार्य के साथ वेद मंत्रों की शक्ति वा विद्वान मंडन मिश्र का शास्त्रार्थ होने का निर्णय हो गया है।

ऐसे समय यह सूचना सुनते ही श्रद्धालु जनता शास्त्रार्थ-स्थल की ओर तेज से जा रही थी।

शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित मंडन मिश्र के नियुक्त किए गए, शास्त्रार्थ-स्थ पर पहुंचकर अपने आसन पर बैठ चुके थे।

मंडन मिश्र भी अपने श्रद्धालु भक्तों के साथ शास्त्रार्थ-स्थल पर आकर आस पर बैठ चुके थे।

एक ओर मध्यस्थ का आसन रिक्त था। 'शास्त्रार्थ का समय हो रहा है' आपस में वार्तालाप करते हुए श्रद्धालु दर्शक श्रोता शास्त्रार्थ-स्थल की ओर भागे हु आ रहे थे।

'वह देखो तेजस्वी संन्यासी शंकराचार्य अपने आसन पर विराजमान हैं।' दर्श श्रोता ने अपने साथी को संकेत से दिखाते हुए कहा, 'कितना तेज उनके मुख प है।'

'मित्र, उनके मुंह पर अनूठी मधुर मुस्कान है, जो सभी को अपनी ओ आकर्षित कर रही है।'

'त्याग-तपस्या में कितना बल है यह तुमने कल की घटना से जान लिया होग

मित्र'—आगे बढ़कर अपने साथी के साथ-साथ चलते हुए तीसरे दर्शक ने कहा, 'कितनी आश्चर्यपूर्ण घटना थी।'

'हमें भी तो कुछ बताओ बंधु', चौथे दर्शक ने अपने आगे चलते हुए दर्शक को रोकते हुए कहा, 'अलौकिक घटनाओं की चर्चा माहिष्मती नगर में अधिक होने लगी है पर हमें उन घटनाओं का पता भी नहीं लगा।'

'मित्र भंग की तरंग में खोए हुए तुम्हें तो रंगीन काल्पनिक स्वप्न ही दिखाई देते होंगे—तुम्हें बाहरी दुनिया में क्या हो रहा है, वह कैसे ज्ञात होगा।'

अपने साथी की लाल-लाल आंखों की ओर देखते हुए दर्शक ने कहा, 'इतने ज्ञान का शास्त्रार्थ सुनने के लिए आए हैं पर भंग का गोला सटकना अब भी नहीं भूले।'

'भाई मेरे, बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद, बम भोले की प्यारी बूटी का स्वाद तुम क्या जान सकोगे।'

'बंधु तुम्हें ही यह प्यारी बूटी चिपटी रहे, हम तो इससे दूर ही भले, इन नशीले पदार्थों की जिसे लत पड़ जाती है, वह मानव क्या दूसरों के शिक्षाप्रद उपदेश सुनेगा!'

'मित्र, छोड़ो इन बातों को कभी पत्थर पर भी जोक लगी है, इन्हें स्वास्थ्य की बातें नहीं अच्छी लगतीं।'

'तुम उस अलौकिक घटना के विषय में बता रहे थे, वह तो विषय बीच में ही रह गया।'

'हमारे पड़ोसी द्वारपाल ने हमें वह अलौकिक घटना सुनाई थी मित्र।'

'भाई हमें भी तो सुना दो आपस में ही उसके विषय में चर्चा किए जाओगे।' पांचवें दर्शक ने नम्रता से कहा।

'संन्यासी शंकराचार्य जो शास्त्रार्थ-स्थल पर आसन पर विराजमान हैं। वह कल मंडन मिश्र के निवास-स्थल पर उनसे भेंट करने गए।'

'कल तो मंडन मिश्र पितृश्राद्ध कर रहे थे। वह संन्यासी से उस स्थल पर भेंट कैसे कर सकते थे। तुम भी मित्र अटपटी बात करने लगे।'

'बीच में बोलकर सब गुड़ गोबर कर दिया भाई मेरे, पहले पूरी बात तो सुन लो, फिर बीच में टपकना।' छठे दर्शक ने मुस्कराते हुए अपने साथी की ओर देखते हुए कहा, 'तुम पूरी घटना सुनाओ, अब बीच में कोई नहीं बोलेगा।'

'मैं बता रहा था, संन्यासी शंकराचार्य जब मंडन मिश्र के घर के समीप पहुंचे, द्वार बंद था। उन्होंने द्वारपाल से अपने आने के विषय में मंडन मिश्र को सूचना देने के लिए कहा।'

'यही बारबार क्यों दुहरा रहे हो उन्होंने संन्यासी शंकराचार्य से श्राद्ध के समय भेंट करना स्वीकार नहीं किया', श्रद्धालु दर्शक ने अपने साथियों की ओर देखते हुए कहा। 'और फिर वह अलौकिक घटना घटी जिस पर देखकर ही विश्वास किया जाता है। संन्यासी शंकराचार्य योगबल से मंडन मिश्र के आंगन में पहुंच गए।'

'मंडन मिश्र क्या अलौकिक शक्तियों का अधिकारी नहीं उसने जैमिनि और वेदव्यास दोनों ऋषियों को वेदमंत्र बल से पितृ-श्राद्ध के लिए निमंत्रित किया और वह सूक्ष्म अशरीरी महात्मा, सशरीर मंडन मिश्र के श्राद्ध में सम्मिलित होने के लिए आए।'

'उन्हीं विद्वान महात्माओं का दर्शन करने, शास्त्रार्थ सुनने के लिए हम सब शास्त्रार्थ-स्थल पर जा रहे हैं।'

'हम भी तो वहीं चल रहे हैं बंधु', लम्बे-लम्बे डग भरते हुए सभी श्रद्धालु श्रोता दर्शक, शास्त्रार्थ-स्थल पर पहुंच गए।

'अरे ऐसे टकटकी लगाए उस ओर क्या देख रहे हो बंधु', दर्शक ने अपने साथी के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, 'किसे देखकर सुध-बुध खो बैठे।'

'मैं तो इस महान योगी बालब्रह्मचारी संन्यासी शंकराचार्य की मोहिनी सूरत देख रहा था। सचमुच हमारे भारत देश में कैसे-कैसे अमूल्य रत्न भरे हुए हैं।'

'ओहो आज ज्ञात हुआ तुम रत्न-पारखी भी हो', दर्शक के साथी ने परिहास करते हुए धीरे-से कहा, 'हम तो अभी तक तुम्हें पशु पारखी ही समझते थे।'

'ऐसे टकटकी लगाकर देखते-देखते कहीं इतनी सुध-बुध न खो देना जो भाभीजी को शास्त्रार्थ-स्थल पर ही बुलाना पड़े', दर्शक के सम्बंधी ने अपने साथी को धीरे से हिलाते हुए कहा, 'उधर देखो शास्त्रार्थ आरंभ होने वाला है।'

'अब तक हम सब महान विद्वान पंडित मंडन मिश्र को ही भारत का सबसे महान धर्मप्रचारक मानते थे।'

'अब किसे मानोगे बंधु', अपने दर्शक साथी की बात काटते हुए दूसरे दर्शक ने कहा, 'पहले शास्त्रार्थ सुन लो, फिर दोनों विद्वानों की विद्वत्ता का निर्णय उभय भारती (सरस्वती) करेंगी।'

शंकराचार्य की जय! महान पंडित मंडन मिश्र की जय!! जयघोष से शास्त्रार्थ-स्थल गूंज उठा, शंकराचार्य अपने आसन से उठे, दर्शकों ने हर्ष में भरकर जयघोष करते हुए उन्हें प्रणाम किया।

शंकराचार्य ने दर्शकों के अभिवादन का उत्तर देते हुए मंडन मिश्र से कहा, 'देवी उभय भारती का मध्यस्थ का आसन रिक्त है। कृपया उनसे कहो वह अपने

आसन पर विराजकर शास्त्रार्थ आरंभ करने का श्रीगणेश करें।'

देवी उभय भारती (सरस्वती देवी) अपने आसन पर आकर बैठ गईं और उन्होंने दोनों पक्षों को शास्त्रार्थ के लिए विचार प्रकट करने के लिए कहा।

शंकराचार्य ने मंडन मिश्र की ओर देखते हुए कहा, 'मिश्रजी! पहले आप अपने विचार प्रकट करें।'

'यतीवर! आप विचार प्रार्थी होकर आए हैं', मंडन मिश्र ने शंकराचार्य से कहा, 'पहले आप अपने विचार प्रकट करें।'

'विचार में यह प्रण है, जो शास्त्रार्थ में पराजित होंगे उन्हें विजेता का मत ग्रहण करना पड़ेगा।' उभय भारती ने दोनों पक्षों की ओर देखते हुए कहा, 'अब शास्त्रार्थ आरंभ हो।'

'अद्वैत ब्रह्म ज्ञान ही वेद का एकमात्र अभिप्राय है।' शंकराचार्य ने मंडन मिश्र की ओर देखते हुए कहा, 'कर्म या उपासना चित्तशुद्धि के विशेष साधन हैं। ज्ञान और उपासना में इसी कारण समुच्चय असंभव है।'

'कर्म ही वेद का तात्पर्य है। कर्म के फलस्वरूप अनंत स्वर्ग रूप मुक्ति मिलती है।'

मंडन मिश्र ने शंकराचार्य के पक्ष का खंडन करते हुए कहा, 'ब्रह्म के साथ आत्मा की भी भेद भावना का वेद में उपदेश है। वह कर्म की पूर्णता का संकेत है। अनंत काल तक कर्म करते रहने से ही अनंत स्वर्ग मिलता है।'

'मिश्रजी! आत्मा का स्वरूप नित्य है और दृश्य उसके विपरीत अनित्य है। ऐसा दृढ़ निश्चय ही आत्मवस्तु का विवेक है।'

'संपूर्ण भूत परमात्मा ब्रह्म से ही उत्पन्न होते हैं। अतएव सब ब्रह्म ही है।'

शंकराचार्य ने मंडन मिश्र की ओर देखते हुए कहा, 'मानव चाहे देवताओं के लिए यज्ञ करे, अनेक शुभ कर्म करे। देवताओं का भजन करे।' जब तक ब्रह्म और आत्मा की एकता का बोध नहीं होता, तब तक सहस्रों वर्ष व्यतीत हो जाने पर मुक्ति नहीं मिलती।

आत्मा और परमात्मा के एकत्व को समझ लेने में ही सच्चा मोक्ष मिलता है।'

'मैं कर्म पर बल देता हूं।' मंडन मिश्र ने अपनी युक्तियों द्वारा शंकराचार्य के पक्ष का खंडन करते हुए अपने पक्ष के समर्थन में अनेक युक्तियां दी।

शास्त्रार्थ में असंख्य युक्तियों तथा शास्त्र-प्रमाणों द्वारा दोनों विद्वान अपने-अपने

पक्ष का समर्थन कर रहे थे।

प्रातःकाल से मध्याह्नकाल व्यतीत हो गया। दोनों पक्ष अपने पक्ष पर दृढ़ थे।

दोनों के शास्त्रज्ञान, मेधा स्मृति देखकर श्रद्धालु दर्शक आश्चर्य में भरकर उनकी ओर देखे जा रहे थे।

कई दिन लगातार शास्त्रार्थ चलता रहा—श्रद्धालु मानव उन दोनों विद्वानों का रुचि से शास्त्रार्थ सुन रहे थे।

शंकराचार्य अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा कर रहे थे। शास्त्र प्रमाण देकर।

मंडन मिश्र भी उसी प्रकार शास्त्र प्रमाणों का उद्धरण देकर उसका खंडन कर रहे थे।

कोई पराजित नहीं हो रहा था, उभय भारती ने कुछ सोचते हुए दोनों के गले में पुष्प माला पहना दी और कहने लगी, 'जिसके गले की पुष्प माला मुरझा जाएगी वह पराजित समझा जाएगा।'

शास्त्रार्थ लगातार चल रहा था। अभी तक ना ही मंडन मिश्र पराजित हुए थे ना ही शंकराचार्य विजयी हुए थे।

कई दिन इसी प्रकार व्यतीत हो गए। विजय-पराजय किसी की नहीं हुई।

## 24

लगातार शास्त्रार्थ चल रहा था और शास्त्रार्थ-स्थल पर सुनने को भीड़ अधिक होती जा रही थी।

भारत के दो प्रसिद्ध धर्म शास्त्रों के विद्वानों का शास्त्रार्थ सुनने का सौभाग्य किसी पिछले शुभ कर्म द्वारा ही इस समय हमें प्राप्त हुआ है।

श्रद्धालु रुचि से शास्त्रार्थ सुनने आते, शास्त्रार्थ का समय समाप्त होते ही अपने-अपने निवास-स्थल पर चले जाते।

'बंधु! लगातार कई दिन से शास्त्रार्थ दोनों विद्वानों का हो रहा है, कौन कह सकता है विजयी कौन-सा विद्वान होगा।'

'दोनों विद्वान प्रतिभा के धनी शास्त्र ज्ञाता हैं। भाई हम क्या बता सकते हैं, विदुषी उभय भारती ही निर्णय देगी।'

'दोनों पक्ष अपने-अपने पक्ष पर दृढ़ता से तर्क युक्तियां देकर अपने-अपने पक्ष का समर्थन कर रहे हैं।'

'सुनो, शंकराचार्य ने मुंडक उपनिषद् का उल्लेख करते हुए, उक्तियां देते हुए अपने पक्ष के समर्थन में कुछ कहा है।'

'शांत होकर सुनो', दूसरे श्रद्धालु ने अपने साथियों की ओर देखते हुए कहा, 'इस समय शांत ही बैठना चाहिए।'

'हम तो अंतिम शास्त्रार्थ निर्णय सुनने को उत्सुक हैं, सुनो शंकराचार्य मुंडक उपनिषद् का उल्लेख करते हुए कुछ कह रहे हैं।'

वेद विद ब्राह्मण कर्म से प्राप्त लोकों की परीक्षा करके उसका नश्वर फल देखकर उस पर वैरागय उत्पन्न करे।

क्योंकि 'अकृत' मोक्ष कृत के द्वारा प्राप्त नहीं होता।

मोक्ष तो आत्मा का स्वरूप है। त्रिकाल में विद्यमान है। किसी कर्म द्वारा उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता।

कर्म के द्वारा जिस स्वर्गादि का संयोग होता है। आप यह तो मानेंगे, उसका वियोग भी होगा। मंडन मिश्र की ओर देखते हुए शंकराचार्य ने कहा, 'मिश्रजी! आप यह तो मानेंगे जन्म होने से मृत्यु भी अवश्य होगी।'

मनुष्य अज्ञान से अपने को वृद्ध समझता है। आत्मा का स्वरूपज्ञान से वह त्रिकाल मुक्त आत्मा का स्वरूप ही जान जाता है।

जैसे मेघ के हट जाने से सूर्य प्रकाशित हो जाता है।

वैसे ही नित्य मुक्त आत्मा अज्ञान के हट जाने से सूर्य की तरह प्रकाशित हो जाती है।

वेद के कर्म भाग में ज्ञान की हीनता बताने वाला आप एक भी प्रमाण नहीं दे सकते।

मंडन मिश्र को उस समय कोई तर्कपूर्ण उक्ति नहीं सूझी, घबराहट से उन्हें पसीना आने लगा, पसीने से उनके गले की पुष्पमाला मुरझा गई।

उभय भारती ने यह देखकर अपने पति मंडन मिश्र के पराजित होने की घोषणा कर दी।

श्रद्धालु दर्शकों ने शंकराचार्य के जयघोष से शास्त्रार्थ-स्थल गुंजा दिया।

मंडन मिश्र आसन से उठे और उन्होंने शंकराचार्य के चरण छूते हुए प्रार्थना की, 'महात्मन्! मैं पराजित हो चुका हूं, अब आप यदि संन्यास का अधिकारी समझते हैं, तो शास्त्रविधि अनुसार संन्यास की दीक्षा दीजिए।'

'नहीं, अभी पूर्णरूप से मेरे पति पराजित नहीं हुए हैं। शास्त्र में लिखा है, पत्नी पति की अर्धांगिनी है', उभय भारती सरस्वती ने शंकराचार्य के सामने झुकते हुए कहा, 'आप मुझे पराजित करके मेरे पति को अपना शिष्य बना सकते हैं। इससे पहले नहीं।'

'पंडित लोग स्त्री से वाद-विवाद नहीं करते देवि, शंकराचार्य ने उभय भारती को समझाते हुए कहा, 'आपकी यह इच्छा उचित नहीं।'

'महात्मन्! ऋषिश्रेष्ठ याज्ञवल्क्य ने गार्गी के साथ शास्त्रार्थ किया था।'

'राजर्षि जनक ने सुलभा विदुषी से शास्त्रार्थ किया था। आप क्या स्त्री को इतना तुच्छ समझते हैं जो उससे शास्त्रार्थ करना भी स्वीकार नहीं करते।'

'देवि! मैं ऐसा तुच्छ महिलाओं को कभी नहीं समझता, मेरे हृदय में उनके प्रति आदर की भावना है, फिर भी.... ।'

'देखिए महात्मन्!' उभय भारती ने शंकराचार्य की बीच में ही बात काटते हुए कहा, 'यदि मुझसे शास्त्रार्थ नहीं करना चाहते न करो, अपनी पराजय स्वीकार कर लीजिए।'

'नहीं देवि, मैं अपनी पराजय स्वीकार नहीं कर सकता', शंकरचार्य ने दृढ़ता से कहा, 'आपसे शास्त्रार्थ करने को तैयार हूं।'

'ठीक है कल से शास्त्रार्थ होगा, आज आप विश्राम कीजिए।' कहते हुए उभय भारती अपने पति के साथ निवास-स्थल पर चली गई।

शंकराचार्य भी शिष्यों सहित विश्राम-स्थल की ओर चल पड़े।

श्रद्धालु भक्त सोचते हुए अपने घर की ओर चले, अब शास्त्रार्थ एक विदुषी महिला और एक विद्वान संन्यासी के बीच होगा, देखो क्या रहता है।

उभय भारती सरस्वती देवी शंकराचार्य को शास्त्रार्थ के लिए तैयार कर चुकी थी, पर मन-ही-मन यह सोच रही थी—

शंकराचार्य ने इतने शास्त्रज्ञाता पंडित को शास्त्रर्थ में पराजित कर दिया। वह मेरे से शास्त्रार्थ में कैसे पराजित हो सकता है।

मंडन मिश्र की पराजय से ज्ञान हो चुका है, शंकराचार्य के पास वेदादि शास्त्रों का इतना ज्ञान भंडार है। उन्हें शास्त्रों के शास्त्रार्थ में पराजित करना कठिन है।

फिर किस विषय में उनसे शास्त्रार्थ किया जाए जो वह पराजित हो जाए, मन-ही- मन सोचते हुए उभय अपने आप ही मुस्कराई।

शंकराचार्य बालब्रह्मचारी संन्यासी है—कामशास्त्र की चर्चा करके उसे पराजित किया जा सकता है।

शास्त्रार्थ आरंभ करके तभी इस विषय पर शास्त्रार्थ की चर्चा करना ठीक रहेगा।

उभय भारती ने सोचकर मन-ही-मन निर्णय कर लियां

आज उभय भारती और संन्यासी शंकराचार्य का शास्त्रार्थ होगा श्रद्धालु दर्शक शास्त्र-स्थल पर समय से पहले ही पहुंच गए।

शास्त्रार्थ आरंभ हुआ, प्रातःकाल से मध्याह्नकाल हो गया, दोनों पक्ष बराबर रहे।

श्रद्धालु दर्शक सभी पंडित विद्वान उभय भारती के अगाध ज्ञान, असामान्य विचार शक्ति को देखकर दांतों तले उगंली दबाने लगे।

शंकराचार्य लगातार तर्कपूर्ण उक्ति देकर अपने पक्ष का समर्थन करने लगे।

कई दिन लगातार शास्त्रार्थ होता रहा। अभी पराजय-विजय का निर्णय नहीं हो रहा था।

सूर्य अभी अपनी सुनहरी किरणों का जाल फैलाता वृक्षों के समूह के ऊपर प्रकाश फैला रहा था। शंकराचार्य शास्त्रार्थ-स्थल पर अपने आसन पर बैठे सोच रहे थे। सभी विषयों पर उभय भारती से शास्त्रार्थ हो चुका, अब कौन-सा विषय रह गया है, जिससे उभय भारती शास्त्रार्थ कर मुझे पराजित करने का यत्न करेगी।

उभय भारती मुस्कराते हुए अपने आसन से उठकर खड़ी हुई और शंकराचार्य की ओर देखते हुए बोली, 'महात्मन्! काम कला कितने प्रकार की है, काम का क्या लक्षण है, किन-किन क्रियाओं से आविर्भाव होता है और किन भावों से तिरोहित होता है।'

'देवि! आप संन्यासी से कैसा प्रश्न कर रही हैं', शंकराचार्य ने सिर झुकाकर कहा, 'आप शास्त्रीय प्रश्न करें मैं उत्तर दूंगा, इस प्रश्न का उत्तर देने को मैं बाध्य नहीं हूं। आप विषय से बाहर जा रही हैं।'

'महात्मन्! यदि कामशास्त्र की आलोचना से ही आपके चित्त में विकार उन्पन्न होता है, तो मैं यह समझूंगी, आप अभी तत्वज्ञान में पूर्ण प्रतिष्ठित नहीं हुए हैं और आप मेरे पति के गुरु होने योग्य नहीं हैं।'

'देवि! मैं संन्यासी हूं, काम त्याग करना ही तो शास्त्र मर्यादा है। मैं संन्यास वेश को कलुषित नहीं कर सकता।

मैं आपके प्रश्नों का उत्तर दूंगा पर दूसरे के शरीर में प्रवेश करके लिखित रूप में आपके प्रश्नों का उत्तर दूंगा, उसके लिए मुझे एक माह का समय दिया जाए।'

'यतिराज! दूसरों के शरीर में प्रविष्ट होकर यदि आपने यह काम किया। काम चिंता के कारण क्या आप संन्यास धर्म से च्युत नहीं होंगे, सोच लीजिए, उससे क्या संन्यास धर्म कलुषित नहीं होगा।'

'देवि संन्यासी से ऐसे प्रश्न करके तुम उसे क्यों लज्जित कर रही हो', मंडन मिश्र ने अपनी पत्नी की ओर देखते हुए कहा, 'वह बाल ब्रह्मचारी संन्यासी हैं।'

'कामशास्त्र क्या शास्त्र नहीं है, फिर सिद्ध संन्यासी जितेंद्रिय को काम-शास्त्र की चर्चा से चित्त में विकार नहीं होना चाहिए।'

उभय भारती ने शंकराचार्य की ओर देखते हुए कहा, 'आप इस विषय पर चर्चा

नहीं करना चाहते तो पराजय स्वीकार कीजिए।'

'मैं पराजय स्वीकार नहीं करूंगा देवि! एक माह पश्चात आकर लिखित रूप में आपके प्रश्नों का उत्तर दूंगा।'

'ठीक है एक माह में यदि मुझे मेरे प्रश्नों का उत्तर नहीं मिला, तब मैं आपको पराजित ही समझूंगी', यह कहते हुए उभय भारती ने शास्त्रार्थ समाप्त करने की घोषणा की।

सारे दर्शक आश्चर्य में भरे हुए अपने निवास-स्थल की ओर चल पड़े।

उभय भारती ने अपने पति को पराजय से बचाने के लिए संन्यासी शंकराचार्य से काम के विषय में प्रश्न करके उन्हें धर्म संकट में डाल दिया।

'देखो एक माह पश्चात क्या अलौकिक घटना होगी', एक-दूसरे से हास-परिहास करते हुए श्रद्धालु अपने-अपने घर चले गए।

## 25

शंकराचार्य मंडन मिश्र से शास्त्रार्थ में विजयी हो चुके थे। पर मंडन मिश्र की पत्नी उभय भारती (सरस्वती) ने उनकी पराजय स्वीकार नहीं की थी।

बाल ब्रह्मचारी संन्यासी शंकराचार्य कामशास्त्र के विषय में नहीं जान सकते। इस विषय पर शास्त्रार्थ करने से शंकराचार्य अवश्य पराजित हो सकते हैं।

यही सोचकर उभय भारती ने शंकराचार्य से कामशास्त्र विषय पर शास्त्रार्थ करने की घोषणा की थी।

शंकराचार्य ने कामशास्त्र विषय पर शास्त्रार्थ करने के लिए उभय भारती से एक माह का समय मांगा था।

एक माह में किस प्रकार इस कामशास्त्र का ज्ञान हो सकता है। शंकराचार्य सोच रहे थे।

कुछ सोचते हुए वह अपने शिष्यों सहित माहिष्मती नगर से आगे की ओर चल पड़े।

रात्रि को किसी देवालय साधु कुटि में विश्राम करते, प्रातःकाल अपनी यात्रा आरंभ कर देते।

दो दिन इसी प्रकार चलते-चलते वह एक राज्य के घने जंगल में पहुंच गए।

शंकराचार्य ने वहां का दृश्य देखा तब उनका हृदय करुणा से भर उठा।

एक राजा का शव पृथ्वी पर पड़ा था और उसे चारों ओर से घेरकर राजा की रानी व दासियां विलाप कर रही थीं।

कई राज्यकर्मचारी खड़े हुए फूट-फूटकर रो रहे थे।

'इस घने जंगल में राजा की मृत्यु कैसे हुई', शंकराचार्य के शिष्यों ने राजा के कर्मचारियों से पूछा, 'यहां क्यों आए थे?'

'हमारे राजा अमरूक को शिकार में अधिक रुचि थी।'

'महात्मन्! इस घने जंगल में वह शिकार खेलने आए थे', राजकर्मचारी ने मृतक राजा अमरूक की ओर देखते हुए रोकर कहा, 'हमें क्या पता था यहां इनकी अचानक ही मृत्यु हो जाएगी।'

'वैद्यों ने मृतक घोषित कर दिया', फूट-फूटकर रोते हुए सेवक ने कहा, 'हम तो अनाथ हो गए महात्मन् अब आप जैसे महात्मा की कृपादृष्टि हो जाए तो संभव है हमारे राजा हमें पुनः मिल जाएं।'

'हमारे गुरुजी तपबल से संभव है आपके राजा को फिर से जीवित कर दें, हम उनसे प्रार्थना करने जा रहे हैं। तब तक तुम शव का अंतिम-संस्कार नहीं करना।' पद्मपाद ने राजकर्मचारियों को समझाते हुए कहा, 'शव को सुरक्षित रखना।'

'यतीवर! हम आपके अधिक ही आभारी होंगे, यदि हमारे राजा स्वस्थ हो जाएं', राजकर्मचारियों ने शव को सुरक्षित स्थान पर रखते हुए कहा, 'कृपया शीघ्र ही गुरुदेव को यहां लाने की कृपा करें।'

'अभी उन्हें लेकर आता हूं', कहते हुए पद्मपाद दूर खड़े हुए शंकराचार्य के समीप पहुंचा और नम्रता से झुकते हुए बोला, 'गुरुदेव! राज कर्मचारियों ने राजा अमरूक का शव सुरक्षित स्थान पर रख दिया है, यह अवसर अपने आप ही आ गया है।'

'अब आप राजा अमरूक के शरीर में प्रवेश करके कामशास्त्र का ज्ञान प्राप्त कीजिए।'

'उभय भारती के कामशास्त्र के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए ही मैं इस राजा अमरूक के शरीर में प्रवेश करूंगा।'

शंकराचार्य ने पद्मपाद को समझाते हुए कहा, 'तुम तुरंत ही किसी ऐसी गुफा को ढूंढ़ो, जहां मेरा शरीर सुरक्षित रखा जा सके।'

'मैं मृतक राजा अमरूक (अमरक) के शरीर में प्रवेश करके कामशास्त्र के विषय में ज्ञान लूंगा, तब एक माह के भीतर फिर अपने शरीर में वापस आ जाऊंगा। उस समय तक तुम सब इस शरीर की देखभाल करना।'

प्रभृति ने घने जंगल में एक गुफा ढूंढ़ ली और अपने गुरुदेव शंकराचार्य को उस गुफा में ले आया।

शंकराचार्य ने उस गुफा में बैठकर तुरंत ही समाधि लगा ली और योगबल से मृतक राजा के शरीर में प्रवेश कर गए।

पद्मपाद मृतक राजा के शरीर पर गंगाजल छिड़ककर ओठों-ही-ओठों में बुदबुदा

रहा था, उसने देखा, मृतक राजा ने गंगाजल छिड़कते ही आंखें खोल ली हैं।

तब वह मन-ही-मन मुस्कराया, गुरुदेव कामशास्त्र के शास्त्रार्थ की तैयारी करने के लिए राजा अमरूक के शरीर में प्रवेश कर चुके हैं।

राजा अमरूक के आंखें खोलते ही राजकर्मचारी और रानी हर्ष में भर गए और पद्मपाद का आभार मानते हुए, राजा अमरूक को रथ में बिठाकर अपने राज्य में ले आए।

शंकराचार्य राजा अमरूक के शरीर में प्रवेश कर चुके थे, पर राज्य-कार्यों में अधिक रुचि नहीं ले रहे थे।

पंडितों से राजा अमरूक के रूप में शंकराचार्य ने वात्स्यायन लिखित कंदर्प शास्त्र का अध्ययन कर लिया था। और इतना ज्ञान प्राप्त कर लिया था, उभय भारती सरस्वती ने जो कामशास्त्र के विषय में प्रश्न किए थे, उसके उत्तर रूप में एक ग्रंथ की रचना भी कर ली थी।

प्रभृति, पद्मपाद उस गुफा के समीप निवास करते हुए बारी-बारी से अपने गुरु शंकराचार्य के शरीर की देखभाल कर रहे थे। एक माह की अवधि व्यतीत होने को है। पर गुरुदेव ने अभी तक इस अपने शरीर में प्रवेश नहीं किया।

प्रभृति ने लम्बी सांस लेते हुए पद्मपाद से कहा, 'कहीं राज्य सुख भोग गुरुदेव इस शरीर को न भूल जाएं।'

'कैसी बातें करते हो प्रभृति, जिन्होंने बाल्यकाल से ही परोपकार और धर्म-उद्धार के लिए संसारी सुखों पर ठोकर मारी थी। अब इस अवस्था में वह विषय-सुख में फँसकर अब अपने कर्त्तव्य को भूलेंगे, कैसी बुद्धिहीनों जैसी बातें करने लगे हो', पद्मपाद ने प्रभृति की ओर देखते हुए कहा, 'प्रभति, गुरुदेव जिस कार्य से उस राजा के शरीर में प्रविष्ट हुए हैं, कार्य होते ही फिर वापस शरीर में आ जाएंगे।'

'क्षमा करना पद्मपाद गुरुदेव की प्रतीक्षा करते हुए उनके वियोग में कोई शब्द उनके विषय में ठीक नहीं कहा गया हो तो उसके लिए क्षमा मांगता हूं।'

प्रभृति ने आंखों में आए आंसुओं को पोंछते हुए पद्मपाद की ओर देखा, 'पद्मपाद, तुम्हीं हमारे गुरुदेव के विषय में हमारी शांति के लिए सूचना लाओ।'

'तुम्हारी शांति के लिए प्रभृति अवश्य उस स्थान में जाऊंगा जहां गुरुदेव राजा अमरूक बने हुए हैं।' पद्मपाद ने प्रभृति की ओर देखते हुए कहा।

'मैं गायक वेश में उस राज्य में जाऊंगा, संगीत के माध्यम से तत्त्वज्ञान और स्वरूप का वर्णन करूंगा', कहते हुए पद्मपाद ने छद्म वेश में अपने शिष्यों सहित राजा अमरूक बने हुए शंकराचार्य के पास जाने का निर्णय कर लिया।

थोड़े समय में ही पद्मपाद शिष्यों सहित गायकवेश में राजा अमरूक के निवास-स्थल पर पहुंच गए।

राजा अमरूक के वेश में शंकराचार्य उन्हें मिले, राजा अमरूक के सामने पद्मपाद ने तत्त्वज्ञान और स्वरूप का वर्णन अपने गायन द्वारा किया।

राजा अमरूक के शरीर में प्रविष्ट हुए शंकराचार्य समझ गए। और उन्होंने पद्मपाद को वह अपना लिखित ग्रंथ दिया जिसमें उभय भारती के काम कला के विषय के प्रश्नों का उत्तर था।

हम एक माह की अवधि समाप्त होने से पहले ही आ जाएंगे, पद्मपाद को संकेत से समझाते हुए शंकराचार्य ने कहा, 'तुम वहीं गुफा में हमारी प्रतीक्षा करना।'

कामकला विषय में उभय भारती के प्रश्नों के उत्तर लिखे हुए ग्रंथ पद्मपाद अपने साथ ले आया अपने गुरुदेव भाइयों को यह शुभ सूचना भी सुना दी, गुरुदेव शीघ्र ही अपने शरीर में प्रविष्ट होने वाले हैं।

उधर उभय भारती मन-ही-मन प्रसन्न थी, एक माह का समय समाप्त होने वाला है, बाल ब्रह्मचारी संन्यासी शंकाचार्य कामकला सम्बंधी प्रश्नों का उत्तर नहीं ढूंढ सका, तभी वह यहां नहीं आया है।

अब मेरे पति पराजित नहीं कहलाएंगे—भारत के प्रसिद्ध मीमांसक किसी संन्यासी के शिष्य नहीं बनेंगे।

थोड़े समय पश्चात शंकराचार्य राजा अमरूक का शरीर त्यागकर अपने शरीर में आ गए और शिष्यों सहित माहिष्मती नगर की ओर चल पड़े।

जब शंकराचार्य माहिष्मती नगर पहुंचे, मंडन मिश्र उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने प्रसन्नता से शंकराचार्य का स्वागत किया। और उन्हें ऊंचे आसन पर बिठाया, देवि उभय भारती, सरस्वती देवी को शंकराचार्य ने अपना लिखित ग्रंथ भेंट करते हुए कहा, 'देवि इस ग्रंथ में उन प्रश्नों के उत्तर हैं जो आपने पूछे थे।'

उभय भारती ने उस ग्रंथ को पढ़ा। उसके उत्तर ठीक देखकर वह अधिक प्रसन्न हुई और अपनी पराजय स्वीकार करते हुए नम्रता से शंकराचार्य से कहा, 'यतींद्र! आप विजयी हुए अब मेरे पति आपके शिष्य बनकर संन्यासी हो जाएंगे। मैं निश्चिंत होकर अपने धाम को चली जाऊंगी।'

'मुझे अब आपके जन्म का रहस्य ज्ञात हो चुका है।' शंकराचार्य ने उभय भारती सरस्वती देवि की वंदना करते हुए कहा।

'देवि! सरस्वती आप अखिल ब्रह्मांड में दिव्य ज्ञान देने के लिए ही इस मृत्युलोक में आई थीं।

आपके जाने से सर्व विद्याएं लुप्त न हो जाएं इस कारण मेरी प्रार्थना है, आप अभी इस जीव-देह में रहकर ब्रह्मविद्या का प्रचार करें।

श्रृंगेरी में मैं एक मठ स्थापित करना चाहता हूं, आप वहां रहकर सबको विद्यादान दीजिए, मेरी प्रार्थना पूर्ण कीजिए।'

'यतिराज! देव शरीर में रहते हुए भी मैं आपका कार्य करूंगी, आप वहां 'श्री यंत्र स्थापित करना, मैं उस यंत्र में निवाय करूंगी।' कहते हुए उभय भारती, सरस्वती देवी ने योगारूढ़ होकर शरीर छोड़ दिया।

मंडन मिश्र ने अपनी पत्नी उभय भारती का अंतिम संस्कार करके शंकराचार्य से संन्यास दीक्षा ले ली।

शंकराचार्य ने उनका नाम सुरेश्वराचार्य रख दिया और तत्त्वज्ञान की सारगर्भित शिक्षा दी।

सुरेश्वराचार्य ने तत्त्वज्ञान की शिक्षा-उपदेश लेकर तत्त्वोपदेश नामक छोटे-से ग्रंथ में संकलित किया।

## 26

मंडन मिश्र ने शंकराचार्य के शिष्य बनकर अपने को धन्य माना और संन्यासी बनकर शंकराचार्य के साथ ही रहने लगे।

साधना शास्त्रों पर भाष्य लिखना उन्हें प्रिय था। हिंदूधर्म-प्रचार के लिए भी वह प्रयत्नशील रहते थे, अब उनका नाम सुरेश्वराचार्य था।

उन्होंने शंकराचार्य से इस विषय पर वार्तालाप करते हुए नम्रता से कहा, 'गुरुदेव! तत्कालीन हिंदू धर्म के प्रचलित मत आपने वेदमूलक वेदानुगामी सिद्ध करके धर्म का विराट स्वरूप विश्व के सामने प्रकट किया। हिंदू धर्म के लिए यह महान कल्याणकारी है।

आप हमें धर्म प्रचार के लिए भारत के कोने-कोने में जाने की आज्ञा दें। हम आपके साथ ही रहना चाहते हैं।'

'वत्स! तुम्हारी व सबकी यदि दिग्विजय की इच्छा है, तब मैं उसे अवश्य पूर्ण करूंगा। तुम सब हमारे साथ चलने की तैयारी करो।'

शंकराचार्य ने मुस्कराते हुए कहा, 'पद्मपाद और प्रभृति तो पहले से ही तैयार बैठे हैं।'

'कल प्रातःकाल ही हम सब यहां से चल पड़ेंगे।'

'माहिष्मती नगरी से चलने की हमने पहले ही तैयारी कर रखी है।' पद्मपाद ने आकर शंकराचार्य के चरण छूते हुए कहा, 'सभी गुरुभाई आपके साथ चलेंगे।'

उषा सूर्य की प्रतीक्षा में चारों ओर लाली बिखेरती मुस्कराती आ रही थी। पक्षियों ने उसके स्वागत को चहचहाना आरंभ कर दिया था।

अनूठा दृश्य था। ऐसे समय सुरेश्वराचार्य अपने गरु शंकराचार्य के साथ पद्मपाद, प्रभृति, और गुरु-भाइयों को साथ लेकर माहिष्मती छोड़कर आगे की ओर

चल पड़े।

मार्ग में विभिन्न मत वाले, साधु, संन्यासी शंकराचार्य से वाद-विवाद करने के लिए उनके समीप आए। पर उनके दर्शन करते ही वह उनके अनुयायी बन गए।

शंकराचार्य से शास्त्रार्थ में मंडन मिश्र और उनकी पत्नी उभय भारती सरस्वती के पराजित होने का समाचार धीरे-धीरे चारों ओर फैल चुका था।

इस कारण भी कई विद्वान पंडित शास्त्रार्थ के लिए शंकराचार्य के समीप आते हुए घबराते थे।

वह आपस में कहते जब मंडन मिश्र जैसे विद्वान प्रख्यात संन्यासी शंकराचार्य से शास्त्रार्थ में पराजित हो गए, तब हम कैसे ऐसे दिग्विजयी संन्यासी से शास्त्रार्थ में विजयी हो सकते हैं।

पराजय के भय से कई मत वाले विद्वान शंकराचार्य से शास्त्रार्थ करने का साहस नहीं कर रहे थे।

कई तो शंकराचार्य के दर्शन करके उनके अनुयायी ही बन गए। जिस गांव-नगर में शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित पहुंचते, उनके पहुंचने से पहले उनकी प्रसिद्धि पहले ही पहुंच जाती।

ग्रामवासी, फूल-फल भोजन की सामग्री लेकर संन्यासी शंकराचार्य के दर्शन को पहुंच जाते, मार्ग में ही उन्हें रोककर उनकी चरण-वंदना करके प्रेम से फल-फूल भोजन, सामग्री भेंट करते। और देवालयों में शंकराचार्य को प्रेम से ठहराकर उनसे उपदेश सुनाने का आग्रह करते।

शंकराचार्य श्रद्धालु भक्तों का अनुरोध मान लेते। उन्हें शिक्षापूर्ण उपदेश देते और थोड़ा समय ठहरकर आगे की ओर चल पड़ते।

चालुक्य राज्य के विभिन्न तीर्थ-स्थानों का शिष्यों को दर्शन कराते हुए, श्रद्धालु भक्तों को दर्शन देते हुए शंकराचार्य आगे की ओर बढ़े चले जा रहे थे।

मार्ग में कई जीर्ण अवस्था वाले मंदिरों का फिर से निर्माण कराया।

श्रद्धालु भक्तों से ध्वंस हुए मंदिरों को फिर से सुधरवाकर वहां आरती पूजा-पाठ का प्रबंध कराया।

सूने मंदिरों में फिर से आरती पूजा-पाठ होने लगे, श्रद्धालु भक्त शंकराचार्य का जयघोष करते हुए हर्ष-विभोर हो गए।

आगे बढ़ते हुए शंकराचार्य शिष्यों सहित नासिक के समीप पहुंच गए। पद्मपाद ने प्रसन्न होते हुए शंकराचार्य से कहा—

गुरुदेव! अब हम उस पवित्र स्थल पर पहुंच गए हैं, जो नासिक कहलाता है।

'हम इधर ही विश्राम करेंगे', शंकराचार्य ने सभी शिष्यों को ठहरने का संकेत करते हुए कहा, 'पुराणवर्णित पंचवटी यहीं है।'

'भगवान रामचंद्र ने माता सीता देवी व भातृप्रेमी भ्राता लक्ष्मण के साथ यहां कई वर्ष बनवास के व्यतीत किए थे।'

शंकराचार्य के विश्राम के लिए आसन बिछाकर पद्मपाद ने अपने गुरु-भाइयों की ओर देखते हुए कहा, 'इस पवित्र भूमि में आज हम सब विश्राम करेंगे।'

'इधर देखो, श्रीरामचंद्र का मंदिर उनकी स्मृति में बनाया गया है।' शंकराचार्य ने प्रभृति को संकेत से दिखाते हुए कहा, 'इसकी श्री शोभा काल प्रभाव से नष्ट हो चुकी है।'

'आप आज्ञा दें गुरुदेव! श्रद्धालु भक्त फिर से श्री शोभा लाने का यत्न करेंगे' प्रभृति अभी कुछ और कहना चाहता था, तभी श्रद्धालु भक्तों की भीड़ शंकराचार्य का जयघोष करती हुई उनके दर्शन को आ गई।

'अभी इधर आए हमें थोड़ी देर ही हुए हैं और श्रद्धालु भक्तों को गुरुदेव के इधर आने की पहले सूचना मिल गई।'

शंकराचार्य के एक नए शिष्य ने आश्चर्य से पद्मपाद की ओर देखते हुए कहा, 'गुरुदेव का प्रभाव अब जाना।'

'अभी तुम कुछ नहीं जानते भाई नए इधर आए हो, जब वह अलौकिक घटनाएं सुनोगे, देखोगे तब तुम्हें ज्ञात होगा गुरुदेव कितने ज्ञान के कोष हैं', पद्मपाद ने अपने नए गुरुभाई की ओर देखते हुए कहा, 'अब गुरुदेव का उपदेश सुनते चलो।'

'दूर-दूर से श्रद्धालु भक्त गुरुदेव के दर्शन को आ रहे हैं, भाई पद्मपाद....।'

'अब गुरुदेव उन्हें शिक्षापूर्ण उपदेश देकर प्राचीन जीर्ण मंदिर का उद्धार करने के लिए कहेंगे।'

'उनके आदेश को कौन न मानेगा बंधु अपने हित के लिए तो उन्होंने कभी किसी से नहीं कहा।'

'तभी सभी श्रद्धालु भक्तों ने मंदिर का जीर्णोद्धार करने का निर्णय कर लिया है।'

थोड़े दिनों में ही श्रद्धालु भक्तों द्वारा भगवान श्रीरामचंद्र के मंदिर की खोई हुई श्री शोभा फिर से आ गई।

शंकराचार्य के श्रद्धालु भक्त अधिक ही प्रसन्न हुए, गुरुदेव शंकराचार्य के प्रयत्न से ही तो यह महान कार्य संपूर्ण हुआ है।

स्थानीय ब्राह्मण पंडित हर्ष में भरकर शंकराचार्य के गुण गाने लगे और अधिक

उत्साह से मंदिर में पूजा-अर्चना होने लगी।

शंकराचार्य ने मंदिर के समीप संन्यासियों के लिए एक मठ बनवा दिया, नासिक पंचवटी में श्रद्धालु भक्तों को उपदेश देते सत्संग करते हुए शंकराचार्य शिष्यों सहित आगे की ओर तीर्थ-स्थल की यात्रा करते चल पड़े।

दिन को यात्रा करके रात्रि को किसी देवालय में विश्राम करते हुए शंकराचार्य चंद्रभागा नदी के तट पर स्थित पंढरपुर आकर ठहरे।

पंढरपुर से थोड़ी दूर भीमारथी नदी के तट पर भगवान श्री पांडुरंगादेव स्थित हैं।

प्रतिवर्ष बड़ा भारी मेला लगता है। महाराष्ट्र के श्रद्धालु भक्त यहां आते हैं। उनके लिए श्री पांडुरंग जागृत देवता हैं। भक्तों की मनोकामना सिद्ध करते हैं।

पद्मपाद ने प्रभृति की ओर देखते हुए कहा, 'प्रभृति तुमने पाडुरंग देवता के विषय में वह जलश्रुति सुनी है।'

'हमें तो ज्ञात नहीं भाई तुम्हीं हमें सुना दो', प्रभृति और पद्मपाद के गुरुभाइयों ने पद्मपाद से आग्रह करते हुए कहा, 'हमें भी वह जनश्रुति सुना दो बंधु।'

'सुनो! पुंडरीक भक्त ने भीमारथी के तट पर स्थित महायोगपीठ में विष्णु की उपासना की थी। उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर वर देने को भगवान प्रकट हुए।

पुंडरीक से वर मांगने को कहा, पुंडरीक की प्रार्थना से ही पांडुरंग नामक परब्रह्म लिंग रूप में यहां विराजमान हुए।'

'कितनी शांति देने वाला स्थान है', पद्मपाद ने मुस्कराते हुए कहा, 'गुरुदेव तो देव दर्शन करके, सुंदर स्तोत्र की रचना करके पांडुरंग देवता की वंदना कर रहे हैं।'

'हमारे आचार्य हिंदू धर्म के उद्धारकर्त्ता हैं भाई, धर्म-उद्धार के लिए ही उनका जन्म हुआ है', नए शिष्य ने पद्मपाद की ओर देखते हुए कहा, 'यह तो हमने सुना था, पर अब तो प्रत्यक्ष ही देख लिया।'

'गुरुदेव देव अंश हैं, साधारण मानव नहीं हैं असाधारण मानव हैं बंधु.... साधारण मानव से ऐसे जन-कल्याण के कार्य नहीं हो सकते।'

'लो गुरुदेव के दर्शन को नगरवासी आ रहे हैं। हम भी उधर ही चलते हैं।' कहते हुए सभी शिष्य मंदिर की ओर चल पड़े।

# 27

शंकराचार्य अनेक तीर्थ-स्थलों का दर्शन करते, प्राचीन मंदिरों का जीर्णोद्धार कराते हुए अपने शिष्यों सहित पंचवटी नासिक से आगे की ओर चल पड़े।

चलते-चलते वह सब कृष्णा और तुंगभद्रा नदियों के संगम-स्थल के समीप श्री शैल नामक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थल पर पहुंचे।

प्राचीन युग से ही इस क्षेत्र में वैष्णव, शैव, शाक्त, कापालिक तथा माहेश्वर सम्प्रदायों के अनेक साधकों ने विभिन्न प्रकार की साधनाओं द्वारा श्री शैल को साधना पीठ बना दिया था।

शंकराचार्य इधर पधारे हैं, सुनकर श्री शैल की जनता अनूठे आनंद से भर गई, और संन्यासी शास्त्रज्ञ, शंकराचार्य के दर्शन को आने लगी।

विभिन्न मतों के आचार्य शंकराचार्य से शास्त्रार्थ करने के लिए आने लगे।

शंकराचार्य अपने शिष्य पद्मपाद और सुरेश्वर को उनसे शास्त्रार्थ के लिए भेज देते, वे विभिन्न धर्मावलम्बी शंकराचार्य के शिष्यों से ही शास्त्रार्थ में पराजित होकर लज्जित होते हुए अपने निवास-स्थान को वापस लौट जाते।

कई विद्वान बिना शास्त्रार्थ किए ही शंकराचार्य के दर्शन करके चले जाते, वह सोचते, जिनके शिष्य ही इतने विद्वान हैं, उनके गुरु से शास्त्रार्थ करना क्या, उनसे शास्त्र के विषय में कुछ कहने का भी साहस नहीं होगा।

श्री शैल की जनता महान आत्मा शंकराचार्य के दर्शन करके अपने भाग्य की सराहना कर रही थी।

इतने विद्वान प्रतिभाशाली दिग्विजयी संन्यासी के दर्शन करके जीवन सफल हो गया, पिछले जन्मों में कोई शुभ कार्य किया होगा, जो ऐसे तेजस्वी, विद्वान प्रतिभाशाली, शास्त्रज्ञाता संन्यासी के दर्शन हुए।

श्री शैल की श्रद्धालु जनता तो अपने भाग्य की सराहना कर रही थी।

पर श्री शैल के कापालिक शंकराचार्य के श्री शैल में आने पर क्रोध में भर गए थे।

शंकराचार्य ने उनके विरुद्ध प्रचार आरंभ कर दिया था।

कापालिकों के राजा क्रकच ने सुना, शंकराचार्य नामक प्रसिद्ध संन्यासी जब से श्री शैल में आया है, जनता उसके प्रभाव में आती जा रही है।

वह संन्यासी ब्रह्मात्मविज्ञान और उसकी प्राप्ति की शिक्षा देता है। त्याग, संयम पर बल देता है।

हमारे धर्म पर हमारे सामने कुठाराघात कर रहा है। सोचते हुए कापालिकों के राजा क्रवच ने अपने श्री शैल कापालिकों के प्रधान उग्रभैरव को बुलाया और उसे छलकपट द्वारा शंकराचार्य की हत्या करने के विषय में समझाया।

जब तक शंकराचार्य जीवित हैं वह अपनी शिक्षा द्वारा कापालिकों को कभी चैन से नहीं बैठने देंगे।

'उग्रभैरव, छलकपट प्रपंच द्वारा किसी भी प्रकार शंकराचार्य की जीवनलीला समाप्त करनी है', क्रवच ने उग्रभैरव को समझाते हुए कहा, 'यह कार्य शीघ्र ही करना है।'

'आपके आदेश का शीघ्र ही पालन करूंगा महाराज', उग्रभैरव ने अपने राजा क्रवच के सामने सिर झुकाते हुए कहा, 'आप तो मेरे कार्यों को जानते ही हैं।'

'इसी कारण तुम्हें ही यह कार्य सौंपा है, उग्रभैरव को धन देकर कापालिकों के राजा क्रवच ने और भी पारितोषिक देने का प्रलोभन देकर शंकराचार्य की हत्या के लिए उनके निवास-स्थल पर भेज दिया।

उग्रभैरव नाम के अनुरूप ही छलकपट से भरा नीच मानव था।

मन में छलकपट के भाव लिए ऊपर से सज्जन का मुखौटा ओढ़े उग्रभैरव, शंकराचार्य के समीप पहुंच गया। उनके चरणों की धूलि मस्तक से लगाकर कपटी भैरव ने शंकराचार्य की वंदना की और उनके सामने झुकते हुए नम्रता से बोला, 'महात्मन! आपकी प्रसिद्धि सुनकर अपना मत त्यागकर आपका शिष्य बनने के लिए ही मैं इधर आया हूं। आप मुझे अपना शिष्य बनाकर अपनी सेवा का अवसर सेवा दीजिए।'

शंकराचार्य को उसकी प्रार्थना सुनकर दया आ गई, उन्होंने उग्रभैरव को अपना शिष्य बनाकर समीप ही रहने की आज्ञा दे दी।

उग्रभैरव शंकराचार्य का शिष्य बनकर अधिक प्रसन्न हुआ।

वह अपने गुरु शंकराचार्य की सेवा के लिए प्रत्येक समय तत्पर रहने लगा।

उग्रभैरव सभी शिष्यों के साथ इस प्रकार प्रेम-व्यवहार करता, सभी उसके प्रेम और सेवाभाव से उससे प्यार करने लगे।

उसका छलकपट से भरा प्रेम-व्यवहार, दिखावटी सेवा-नम्रता को सच्ची लग्न और श्रद्धा समझकर सभी उस पर विश्वास करने लगे।

सभी का विश्वासपात्र बनकर उग्रभैरव अब शंकराचार्य के समीप ही अधिक रहने का यत्न करता।

सहृदय शंकराचार्य उसके छलकपट को न जान सके, उसकी नम्रता-सेवा से प्रसन्न होकर वह उसे अपने समीप ही रहने को कह देते।

उग्रभैरव ने देखा, सभी उसके व्यवहार से प्रसन्न हैं। गुरुदेव शंकराचार्य तो अधिक ही प्रसन्न हैं। यह सोचकर वह अपने राजा क्रकच के बनाए हुए कार्य को करने के लिए अवसर की खोज में रहने लगा। एक दिन सारे शिष्य किसी कार्य से दूर बैठे हुए थे।

शंकराचार्य एकांत में बैठे हुए कुछ लिख रहे थे। उग्रभैरव ने यही अवसर उचित समझा और शंकराचार्य के चरणों में अपना सिर रखकर रोने लगा।

अचानक ही अपने शिष्य को इस प्रकार रोते देखकर शंकराचार्य घबरा गए, उन्होंने प्रेम से उग्रभैरव के सिर पर हाथ रखते हुए पूछा, 'वत्स तुम्हें क्या हो गया, क्या कोई शारीरिक कष्ट है।'

'गुरुदेव! शारीरिक कष्ट तो मुझे कोई नहीं' उग्रभैरव ने और भी जोर से रोते हुए कहा, 'वह कष्ट ऐसा है जिसे आप ही दूर कर सकते हैं।'

'हमें बताओ वत्स, ऐसा कौन-सा कष्ट तुम्हें है जिसे हम ही दूर कर सकते हैं', शंकराचार्य ने उग्रभैरव को सांत्वना देते हुए कहा, 'हमें बताओ हम उसे दूर करने का यत्न करेंगे।'

'गुरुदेव! मैंने देवाधिदेव महादेव के साथ शिवलोक में रहने के लिए घोर तपस्या की, उस तपस्या से प्रसन्न होकर कैलाशपति शंकर ने मुझे वर देते हुए कहा—यदि मैं किसी राजा या महान सर्वज्ञ महात्मा के मस्तक द्वारा रुद्र होम कर दूं तो वह मेरी मनोकामना पूर्ण कर देंगे।'

'ऐसा कैलाशपति शंकर कभी किसी को आदेश नहीं दे सकते वत्स, तुम्हें भ्रम हुआ है।' शंकराचार्य ने उग्रभैरव की ओर देखते हुए कहा, 'व्यर्थ की बातें छोड़कर साधना-भजन में लगो।'

'मुझे अभी तक किसी महान आत्मा का सिर नहीं मिला गुरुदेव, इसी कारण

मेरी कामना भी पूर्ण नहीं हुई, क्योंकि रुद्र होम न कर सका।'

उग्रभैरव रोते हुए बोला, 'आप सर्वज्ञ दयालु हैं यदि आपकी कृपा हो जाए तो मेरी मनोकामना सिद्ध हो जाए।

शंकराचार्य अब उसके छल को समझ चुके थे, उसे समझाते हुए कहने लगे 'वत्स! अद्वैत-ब्रह्मविज्ञान के बिना परम शांति व आनंद नहीं मिल सकता।'

'तुम साधना-भजन में लगो इस जन्म में मृत्यु के चक्कर से मुक्त होने का वही उपाय है। विवेकी पुरुष व्यर्थ के झंझटों में नहीं फंसते।'

'गुरुदेव! अब मैं बूढ़ा हो गया हूं, थोड़े दिन का जीवन रह गया है। शिव की आज्ञा का पालन करके मैं अपने को धन्य समझूंगा।

मेरी कामना की पूर्ति करके आप मेरे जीवन को कृतार्थ कीजिए। आपके अतिरिक्त मेरा अभीष्ट कोई पूर्ण नहीं कर सकता।'

'इस दुष्कर्म से कभी शांति नहीं मिल सकती वत्स, तुम्हें जीवन को सफल बनाना है तो शुभ कार्यों में लगो, जन-कल्याण के कार्य करो कैसी नीच भावना तुम में उत्पन्न हो गई।'

'गुरुदेव मेरी सारी तपस्या का फल रुद्र होम से मिलेगा', उग्रभैरव रोते हुए बोला, 'आप दयालु हैं, परोपकारी हैं,दधीचि मुनि ने जिस प्रकार इंद्र को अपनी अस्थियों का दान देकर अक्षय कीर्ति प्राप्त की थी। आप भी इस नश्वर शरीर को मेरे कल्याण के लिए त्यागकर संसार में यशभागी होइए और मेरे मानव जीवन को धन्य कीजिए।

शंकराचार्य का हृदय करुणा से भर उठा। कापालिकों का षड्यंत्र भरा जाल तोड़ना ही होगा। न जाने कितने निर्दोष प्राणियों की बलि लेकर यह कापालिक मुक्ति-मार्ग खोजते हैं।

यह मेरा नाशवान शरीर यदि जन-कल्याण के निमित्त भेंट हो जाए तो अच्छा ही है।

इसके अतिरिक्त सर्वशक्तिमान ईश्वर की यही इच्छा हो, इस शरीर को धारण करने का प्रयोजन न रहा हो।

शंकराचार्य ने सोचते हुए उग्रभैरव से कहा, 'वत्स, रोना बंद करो। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा। पर यदि मेरे शिष्यों को यह कार्य ज्ञात हो गया, तब तुम्हारी इच्छा पूर्ण नहीं हो सकेगी।'

'आप तो साक्षात भगवान ही हैं तभी मेरी इच्छा पूर्ण कर रहे हैं।' उग्रभैरव ने शंकराचार्य के चरण छूकर अपने मस्तक से चरणधूलि लगाते हुए कहा।

'समीप के जंगल में भैरवों का आसन है वहीं आयोजन किया जाएगा, ऐसा कार्य करेंगे जिससे आपके शिष्य कुछ नहीं जान सकेंगे, आगामी अमावास की मध्य रात्रि में आप उस ओर आ जाएं।'

'मैं बीच मार्ग में आकर आपको अपने साथ ले जाऊंगा। कोई यह भेद न जान सकेगा।' यह कहकर उग्रभैरव अपने शिष्यों के समीप चला गया।

शंकराचार्य उग्रभैरव कापालिक का षड्यंत्र जान गए। उन्होंने कापालिकों को शिक्षा देने के लिए जंगल में भैरव आसन के समीप जाने का निर्णय कर लिया।

मानवों को मुक्ति मोह दिखाकर किस प्रकार यह पाखंडी कापालिक अधर्म, अहिंसा को धर्म मानकर जनता को कुमार्ग पर चलने की प्रेरणा दे रहे हैं।

# 28

पाखंडी कापालिक उग्रभैरव मन-ही-मन अपनी योजना पर प्रसन्न हो गया। और अमावस्या से एक दिन पहले ही वह शंकराचार्य के शिष्यों को अपना एक आवश्यक कार्य बताकर अपने निवास-स्थल पर चला गया।

अमावस्या की अर्धरात्रि के समय जब शिष्य गहरी निद्रा में सो गए तब शंकराचार्य उग्रभैरव के बताए हुए स्थान की ओर चल पड़े।

कपटी उग्रभैरव मार्ग में ही खड़ा हुआ शंकराचार्य ही प्रतीक्षा कर रहा था।

शंकराचार्य को नियत स्थान पर आते हुए देखकर प्रसन्न हुआ और उन्हें अपने साथ घने जंगल में बने हुए भैरव आसन के समीप ले गया।

वहां पूजा का आयोजन था। होमाग्नि प्रज्वलित थी। उग्रभैरव के यमदूत से साथी हाथ में त्रिशूल लिए उस स्थान की रक्षा कर रहे थे।

भैरव आसन के समीप ले जाकर उग्रभैरव ने शंकराचार्य से कहा, 'प्रभो! शुभ मुहूर्त आ गया है। आप बलि स्थान के पत्थर पर अपना सिर रखिए, मैं आपका सिर लेकर होम कार्य पूर्ण करूं।'

'वत्स! थोड़ी देर प्रतीक्षा करो, जब मैं समाधिस्थ हो जाऊं। तब तुम अपना कार्य करना।'

यह कहकर शंकराचार्य योगासन में बैठ गए और परब्रह्म में मन को लगाकर एकाग्र करके समाधिस्थ हो गए।

उग्रभैरव ने देखा, शंकराचार्य समाधिस्थ हो गए। तब वह एक तेज धार वाली तलवार से आया और शंकराचार्य का सिर काटने की तैयारी करने लगा।

उसी समय शंकराचार्य के शिष्य पद्मपाद को निद्रा में सपना आया। गुरुदेव घोर जंगल में खड़े हैं और कोई दुष्ट उनके सिर को काटने की तैयारी कर रहा है।

पद्मपाद घबराकर उठकर बैठ गया। उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। सभी शिष्य गहरी निद्रा में सो रहे थे।

चारों ओर सन्नाटा था। गुरुदेव उसे कहीं दिखाई नहीं दिए।

सपने का दृश्य याद आते ही पद्मपाद जंगल की ओर भागा। उसे कापालिकों के भैरव आसन का पता था।

क्रोध में भरकर पद्मपाद उसी ओर तेजी से भागकर भैरव आसन के समीप पहुंच गया। उसमें योगबल से अनूठी शक्ति आ गई थी।

भैरव आसन के समीप पहुंचकर पद्मपाद ने देखा, उग्रभैरव शंकराचार्य का शीश काटने की तैयारी कर रहा था।

जैसे ही उग्रभैरव ने शंकराचार्य के सिर पर तलवार का वार करना चाहा, पद्मपाद ने क्रोध में भरकर झपटकर उससे तलवार छीन ली। और उसी तलवार से कपटी उग्रभैरव का सिर काट दिया।

उग्रभैरव का शरीर रुधिर से भीग गया और छटपटाते हुए एक ओर लुढ़क गया।

पद्मपाद के क्रोध से भरे उग्र रूप को देखकर उग्र भैरव के साथी भय से कांपते हुए उस स्थान को छोड़कर भागने लगे।

पद्मपाद जोर-जोर से चिल्लाकर उन्हें धिक्कारने लगा, 'कायरो! भागकर कहां जाते हो, दूसरों की बलि देकर ही होम करना सीखे हो, अब अपनी बलि भी देकर देखो।'

सुनसान आधी रात्रि को सन्नाटा तोड़ती हुई पद्मपाद की भंयकर गर्जना जंगल में गूंजती हुई शिष्यों के कानों में पड़ी।

वह आंखें मलते हुए उस शब्द की ओर भागे। वहां पहुंचकर जो उन्होंने देखा, आंखें फाड़े देखते रह गए।

उग्रभैरव का शरीर रुधिर से सना हुआ एक ओर पड़ा था। उसका सिर होमाग्नि के समीप पड़ा था।

पद्मपाद की आंखें क्रोध से लाल हो रही थीं, वह जोर-जोर से चिल्लाकर कापालिकों को धिक्कार रहे थे।

कोलाहल सुनकर शंकराचार्य की समाधि टूट गई। उन्होंने देखा, उग्रभैरव का शरीर रुधिर में भीगा हुआ पड़ा है। बिना मुंड के शरीर के समीप खड़ा हुआ क्रोध में भरा हुआ पद्मपाद चिल्ला रही है।

चिल्लाते-चिल्लाते पद्मपाद बेसुध होकर गिर पड़ा।

शंकराचार्य उठकर पद्मपाद के समीप आए और प्रेम से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए उसे पुकारा, 'उठो पद्मपाद, आज तो तुमने कापालिकों के प्रधान पर विजय पाई है। उठकर अपने साथियों से मिलो।'

पद्मपाद जैसे सोते हुए जाग गया, उसने उठकर चारों ओर देखा और अपने गुरु शंकराचार्य के चरणों से लिपट गया।

'गुरुदेव यह क्या लीला रची, सब कुछ जानते हुए भी क्यों उस धूर्त पाखंडी के पाखंड में फंस गए।'

'कापालिकों के पाखंड का भंडा फूट गया पद्मपाद', सुरेश्वराचार्य ने पद्मपाद को गले से लगाते हुए प्यार से कहा, 'आपने हमारे गुरुदेव की समय पर पहुंचकर जीवन-रक्षा की, आपकी गुरुभक्ति धन्य है।'

'अब यहां से इस अंधकार भरी रात्रि में निवास-स्थल पर पहुंचना सहज नहीं' प्रभृति ने सुरेश्वराचार्य की ओर देखते हुए कहा, 'आज की रात्रि यहीं व्यतीत करनी पड़ेगी।'

'योगबल सभी में तो नहीं है', सुरेश्वराचार्य ने मुस्कराते हुए कहा, 'बड़ी कठिन साधना से आता है।'

'आज की रात्रि इस भैरव आसन पर व्यतीत करने का लाभ है, सारी रात्रि तत्त्वोपदेश ध्यान से सुनो।'

शंकराचार्य ध्यानमग्न होकर बैठ गए, सुरेश्वराचार्य ने अपने गुरुभाइयों को शिक्षाप्रद बातें बताते हुए सारी रात्रि व्यतीत कर दी।

प्रातःकाल होते ही वायु-प्रवाह के समान तेजी से श्रीशैल में चारों ओर कापालिक को शंकराचार्य से छल का परिणाम क्या मिला, यह समाचार चारों ओर फैल गया।

कापालिक धोखे से ऐसे विद्वान ज्ञानी परोपकारी संन्यासी शंकराचार्य की बलि देकर अपते मत को श्रेष्ठ बताने का यत्न कर रहा था।

'अब कापालिकों का श्रीशैल में ठहरना भी कठिन है', श्रद्धालु भक्त आपस में कह रहे थे।

'दुष्ट कापालिकों का प्रधान उग्रभैरव आचार्य की बलि देते-देते उनके विद्वान शिष्य पद्मपाद के हाथों बलि हो गया।'

'ऐसे विश्वासघाती दुष्टों का इसी प्रकार अंत होना चाहिए।'

'कापालिकों का राजा क्रकच भय से कहीं छिप गया बंधु और कापालिक भय से कांपते शंकराचार्य के शरण में आकर उनके अनुयायी बन गए।'

'चलो हम भी ऐसे विद्वान, उदार त्यागी, अलौकिक शक्ति वाले संन्यासी शंकराचार्य के दर्शन करके अपना जन्म सफल करें।'

श्रद्धालु भक्त आपस में शंकराचार्य के गुणविद्वत्ता, परोपकार की चर्चा करते हुए उनके निवास-स्थल पर उनके दर्शन करने आए और उनके अनुयायी बन गए।

शंकराचार्य ने सबको शिक्षाप्रद उपदेश देकर संतुष्ट किया।

श्रीशैल के एक नगर से दूसरे नगर में आचार्य की विद्वत्ता, दयालुता की चर्चा होने लगी।

शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित, वेदांत की महिमा का प्रचार करते श्रीशैल से आगे की ओर गोकर्ण तीर्थ की ओर चल पड़े।

गोकर्ण तीर्थ कर्नाटक प्रदेश के समुद्र तट पर स्थित है।

यह अति प्राचीन तीर्थ और प्रसिद्ध तीर्थ है। कहते हैं शिव का प्रिय स्थान है।

शंकराचार्य उस स्थान पर पहुंचकर देवदर्शन करने के लिए गए। उस विग्रह का बांया आधा भाग (अंश) नारी मूर्ति है।

बाएं भाग में पार्वती, दाहिने भाग में शिव मूर्ति है।

अर्धनारीश्वर शिवविग्रह को देखकर शंकराचार्य प्रसन्न होकर उनकी स्तुति करने लगे।

शिष्यों ने भी गोकर्णेश्वर की स्तुति पूजा की। शंकराचार्य शिष्यों सहित वहां तीन दिन ठहरे।

शंकराचार्य ने यश, विद्वत्ता, ज्ञान, शक्ति की चर्चा उनसे पहले ही पहुंच चुकी थी।

अनेक श्रद्धालु भक्त उनके दर्शनों को आने लगे।

शंकराचार्य ने जिज्ञासुओं के सामने वेदांत तत्त्व की व्याख्या की।

स्थानीय पंडितों में शैव सम्प्रदाय का प्रधान पंडित नीलकष्ठ अधिक विद्वान प्रतिभाशाली था। उसने कई ग्रंथों की रचना की थी। शंकराचार्य की विद्वत्ता, प्रतिभा, शास्त्रज्ञान के विषय में सुनकर उनसे शास्त्रार्थ करने का साहस किसी में नहीं था। यह जानकर नीलकंठ शंकराचार्य से शास्त्रार्थ के लिए तैयार हो गया।

विद्वान नीलकंठ के ग्रंथों में ब्रह्मसूत्र का शैव मतानुसार भाष्य ही प्रधान है।

संन्यासी शंकराचार्य के साथ पंडित नीलकंठ का शास्त्रार्थ होगा।

सुनकर श्रद्धालु जनता शास्त्रार्थ स्थल पर पहुंच गई। शास्त्रार्थ आरंभ हुआ।

शंकराचार्य ने सहस्त्रों युक्तियों व श्रुति-प्रमाणों द्वारा शैव मत का खंडन करके

अद्वैत ब्रह्मात्म विज्ञान स्थापित किया।

शैव श्रेष्ठ प्रधान विद्वान नीलकंठ, संन्यासी शंकराचार्य से शास्त्रार्थ में पराजित हो गया।

उसके प्रधान शिष्य हरदत्त ने भी पराजय स्वीकार कर ली। नीलकंठ अपने शिष्य सहित शंकराचार्य के शिष्य बन गए।

ब्रह्मसूत्र के स्वरचित शैव भाष्य को उन्होंने जल में प्रवाहित कर दिया।

शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित हरिशंकर तीर्थ जिसे हरिहर तीर्थ भी कहते थे उस ओर चल पड़े।

## 29

हरिहर तीर्थ में पहुंचकर शंकराचार्य देव के दर्शन कर अधिक ही प्रसन्न हुए। उन्हें प्रतीत हुआ भगवान हरिहर अभेद मूर्ति में विराजमान हैं।

भेदवादियों का भ्रम संकीर्णता दूर करने के लिए ही यहां हरिहर रूप में विराज रहे हैं। बैकुंठ और कैलाश दोनों का यहां समागम है।

शंकराचार्य ने स्तुति करते हुए श्री भगवान की वंदना की और समाधिस्थ हो गए। उनकी श्रद्धा प्रेम देखकर, शिष्यों सहित सभी श्रद्धालु आश्चर्य में भर गए।

जो स्वयं ही ब्रह्मस्वरूप है, धरा पर धर्म का उद्धार करने के लिए ही जिन्होंने शरीर धारण किया है वह इष्ट की साधना कैसे की जाती है पूजा-अर्चना स्तुति करके श्रद्धालुओं को पथ दिखला रहे हैं।

श्रद्धालु धार्मिक मानवों के समूह-के-समूह शंकराचार्य के दर्शन करने उनसे सद्उपदेश सुनने के लिए उनके पास आने लगे और उनके तपसाधना से चमकते तेजस्वी रूप को मंत्रमुग्ध-से देखते रह जाते।

हरिहर क्षेत्र ही धार्मिक श्रद्धालु मानवों के आने से धार्मिक उत्सव क्षेत्र बन गया।

अनेक विद्वान ब्राह्मण, विभिन्न सम्प्रदायों के संन्यासी साधक शंकराचार्य के सत्संग से प्रभावित होकर उनके अनुयायी बन गए और उनके साथ ही तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़े। शंकराचार्य शिष्यों सहित मूकाम्बिका तीर्थ की ओर बढ़े।

जगत विजयी शंकराचार्य इस मार्ग से जा रहे हैं, सुनते ही श्रद्धालु भक्तों की भीड़, मार्ग में उनके दर्शनों को खड़ी हो जाती।

कई श्रद्धालु थोड़ी दूर उनके साथ-साथ चलते, शंकराचार्य प्रेम से उन्हें साधना विषय में उपदेश देते।

मूकाम्बिका तीर्थ में पहुंचते ही शंकराचार्य अम्बिका देवी के मंदिर की ओर चले।

मार्ग में ही कई श्रद्धालु भक्त उनके दर्शन को एकत्र हो गए। शंकराचार्य ध्यानमग्न हुए धीरे-धीरे मंदिर की ओर बढ़ रहे थे।

मार्ग में ही रुदन ध्वनि सुनकर शंकराचार्य चलते-चलते रुक गए। उन्होंने देखा, ब्राह्मण और उसकी पत्नी, अपने मृत पुत्र को गोद में लिए फूट-फूटकर रो रहे हैं।

शंकराचार्य को देखते ही ब्राह्मण दम्पति ने अपने मृतक पुत्र को शंकराचार्य के चरणों में डाल दिया और रो-रोकर शंकराचार्य से उस मृतक पुत्र के प्राणों की भीख मांगने लगे।

शंकराचार्य उनके करुण क्रंदन से ही करुणा से भर उठे थे। इस प्रकार मृतक पुत्र को चरणों में डालकर प्राणों की भिक्षा मांगते देखकर उन्होंने विप्र दम्पति को सांत्वना देते हुए नेत्र मूंद लिए और देवी की स्तुति करने लगे। सभी समीप खड़े श्रद्धालु भक्त, दर्शक आश्चर्य उत्सुकता से उनकी ओर देख रहे थे।

क्या मृतक बालक जीवित हो जाएगा—क्या संन्यासी शंकराचार्य में इतनी शक्ति हैं ....उनकी प्रार्थना से ब्राह्मण बालक के मृतक शरीर में प्राण-संचार हो जाएगा।

श्रद्धालु दर्शक यह सोचते हुए आश्चर्य से उस ओर देख रहे थे, ब्राह्मण बालक के मृत शरीर में जीवन चिह्न दिखाई देने लगे। उसने आंख खोलकर चारों ओर देखा।

श्रद्धालु भक्तों के हर्ष का ठिकाना न रहा—उन्होंने शंकराचार्य की जयघोष से उस तीर्थ-स्थल को गुंजा दिया।

मृतक बालक जीवित हो गया, वायु की तेजी से यह समाचार चारों ओर फैलने लगा। दर्शकों की भीड़ शंकराचार्य के दर्शन को उस स्थल पर एकत्र होने लगी।

'ब्राह्मण बालक को संन्यासी शंकराचार्य ने जीवनदान दिया।'

'कैसी अविश्वास्य घटना है।' श्रद्धालु दर्शक एक-दूसरे से कह रहे थे। 'यदि आंखों से न देख लेते तो विश्वास करना कठिन था।'

'देखो ब्राह्मण दम्पति कितना हर्ष विभोर है, बार-बार यतीवर की वंदना कर रहा है।' चरणों में गिर रहा है। पर शंकराचार्य तो ध्यानमग्न हैं भाई।'

'उन्होंने अलौकिक शक्ति दिखाने के लिए यह कुछ नहीं किया था, बंधु, लोकोत्तर महामानवों के जीवन से ऐसी अलौकिक घटनाएं अपने आप ही हो जाती हैं। यह महामानव अपने नाम, यश, प्रतिष्ठा के लिए कुछ नहीं करते।'

'बंधु! इन महामानवों के हृदय में मनुष्यों के दुख देखकर असीम करुणा का उदय होता है।'

'भाई हमने सुना है इनकी साधना तपस्या त्याग से इतनी शक्ति आ जाती है। इनकी इच्छा मात्र से ही वह कार्य सम्पन्न हो जाता है।'

'सर्वशक्तिमान श्री भगवान के हाथ के यह महामानव यंत्रस्वरूप होते हैं बंधु. ...यंत्रस्वरूप होकर महामानव संसार का कल्याणकार्य करते हैं।'

'इनके माध्यम से ही भगवान की करुणा प्रवाहित होकर इस मृत्युलोक के प्राणियों के दुख संताप हरती है।'

'अरे तुम सब अभी इधर खड़े हुए हो....पूज्य शंकराचार्य तो देवी दर्शन के लिए मंदिर में चले गए।'

'हम सब तो उनके दर्शन करके ही धन्य हो गए भाई', मंदिर की ओर चलते हुए श्रद्धालु दर्शक ने कहा, 'देखो विद्युत की तेजी से यह समाचार सारे में फैल गया। कितने श्रद्धालु नर-नारी पूज्य शंकराचार्य के दर्शन को भागे हुए उसी ओर जा रहे हैं।'

'वे जिस अद्वैत का उपदेश करते हैं उसमें सभी मतवादों का समान स्थान है।' लम्बे-लम्बे डग भरते हुए, आगे बढ़ते हुए शंकराचार्य के अनुयायी ने श्रद्धालु दर्शकों की ओर देखते हुए कहा।

'वह कहते हैं, विभिन्न मतों की साधना के भीतर से क्रमशः सभी साधक अद्वैतानुभूति में पहुंचेंगे।

'आरंभ से ही अद्वैत-साधना कर सकें—वैसे अधिकारी विरले ही होते हैं भाई, दूसरी सभी साधनाएं व उपासना अद्वैत में पहुंचने की सोपान मात्र हैं, ऐसा पूज्य शंकराचार्य ने उपदेश में कहा था, बंधु मूकाम्बिका पंडित-प्रधान क्षेत्र है, देखो, यहां शंकराचार्य से शास्त्रार्थ करते हैं या पराजय मानते हैं।'

एक-दूसरे से वार्तालाप करते श्रद्धालु मानव शंकराचार्य के दर्शन करने मंदिर से बाहर एकत्र हो गए।

शंकराचार्य ने भक्तिभाव से देवी भगवती की चरणवंदना की और ध्यानमग्न हो गए। सभी शिष्यों व श्रद्धालुओं ने भी स्तुति की। शंकराचार्य थोड़ी देर ध्यानमग्न मंदिर में बैठे रहे। फिर विश्राम के लिए श्रद्धालुओं के साथ चल पड़े।

दिग्विजयी शंकराचार्य मूकाम्बिका पधारे हैं सुनते ही स्थानीय पंडितों में हलचल मच गई।

शारदापीठ यहीं प्रतिष्ठित है। स्थानीय पंडित मंडली को जो शास्त्रार्थ में

पराजित कर दे वही शारदापीठ पर बैठने का अधिकारी हो सकता था। पर अभी तक कोई स्थानीय पंडित मंडली को, कोई विद्वान पंडित पराजित नहीं कर सका था, इसी कारण अभी तक उस शारदापीठ पर बैठने का दुर्लभ सम्मान कोई विद्वान पंडित प्राप्त नहीं कर सका था।

दिग्विजयी शंकराचार्य को शास्त्रार्थ के लिए स्थानीय पंडितों ने निमंत्रित किया।

शंकराचार्य ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया और शास्त्रार्थ के लिए शारदापीठ में आए।

शंकराचार्य स्थानीय पंडित मंडली से शास्त्रार्थ के लिए आए हैं सुनते ही श्रद्धालु जनता की भीड़ शास्त्रार्थ-स्थल पर एकत्र हो गई।

विद्वान पंडित शास्त्रार्थ को सुनकर दूर-दूर से शास्त्रार्थ-स्थल पर विचार सभा में सम्मिलित होने के लिए आए।

युवक संन्यासी से स्थानीय पंडितों का शास्त्रार्थ आरंभ हुआ, प्रश्न-पर-प्रश्न स्थानीय पंडितों ने युवक संन्यासी शंकराचार्य से किए—उन्होंने तुरंत ही युक्तिपूर्ण उत्तर दिए।

शास्त्रार्थ अधिक समय तक चला—स्थानीय पंडित उस युवा संन्यासी शंकराचार्य का अगाध शास्त्रार्थ ज्ञान-प्रतिक्षा मेधाशक्ति देखकर दांतों तले उंगली दबाने लगे।

सभी प्रश्नों का यथाशास्त्र शंकराचार्य से उत्तर पाकर पंडित मंडली पराजित होकर सिर झुकाकर बैठ गई।

श्रद्धालु भक्तों ने शंकराचार्य के जयघोष से शास्त्रार्थ-स्थल गुंजा दिया।

पद्मपाद ने खड़े होकर पंडितों की ओर देखते हुए कहा, 'विप्रवर! अब हमारे आचार्य पीठ स्थान पर बैठ सकते हैं।'

'नहीं! अभी नहीं!! अभी एक और परीक्षा बाकी है', एक वृद्ध ब्राह्मण ने उठकर शंकराचार्य की ओर देखते हुए कहा, 'यतीवर निश्चय ही सर्वज्ञ हैं, आशा है वह मेरे भी प्रश्न का उत्तर देंगे।'

'अवश्य विप्रवर! आप अपना प्रश्न करें', पद्मपाद ने वृद्ध ब्राह्मण की ओर देखते हुए कहा, 'हमारे गुरुदेव उत्तर देंगे।'

'देखिए यतीवर! इस सभा के किसी एक स्थान में मैंने एक लोहे की श्लाका गाड़ रखी है, मेरे पास यह कंगन है'—कंगन दिखाते हुए ब्राह्मण ने कहा, 'आचार्य यदि इस कंगन को इस प्रकार उस पर फेंकें कि श्लाका इस कंगन के बीच में आ जाए। तब हम अपनी पराजय मान लेंगे, आश्चर्य पीठ पर बैठने के अधिकारी होंगे।'

'यह कोई शास्त्रीय प्रश्न नहीं', कई श्रद्धालुओं ने कहा, 'यह ठीक नहीं।'

'मैं आपकी इच्छा पूर्ण करूंगा', शंकराचार्य ने कंगन से लिया और थोड़ी देर ध्यान में आंखें मींचकर बैठे रहे। फिर आंखें मींचे-मींचे ही उन्होंने कंगन को ऊपर की ओर फेंक दिया।

वह कंगन जहां गिरा, वहां जाकर श्रद्धालुओं ने देखा, कंगन उस श्लाका के बीच में ही गिरा है। शंकराचार्य की अलौकिक शक्ति देखकर सभी पंडितों ने आचार्य के चरणों में प्रणाम करके उन्हें सम्मान से शारदापीठ पर बैठने का अनुरोध किया। शंकराचार्य के शारदापीठ पर बैठते ही श्रद्धालुओं ने जयघोष से पवित्र-स्थल गुंजा दिया।

# 30

मूकाम्बिका तीर्थ में शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित कुछ दिन ठहरे।

श्रद्धालु मानव उनका उपदेश सुनकर उस पर कार्य करने का प्रयत्न करते। शंकराचार्य के सत्संग और उपदेश से उनके जीवन में अधिक परिवर्तन हो गया था।

अब उनका मन भजन-ध्यान में लगने लगा था। ईर्ष्या-द्वेष से भी वे बचने का यत्न करने लगे थे।

शंकराचार्य उनके जीवन में परिवर्तन लाकर अपने शिष्यों व अनुयायियों सहित श्रीवेली की ओर चल पड़े।

श्रीवेली ग्राम के मध्य में हरपार्वती का सुंदर मंदिर था। उस मंदिर के समीप ही शंकराचार्य के ठहरने का प्रबंध किया गया।

श्रीवेली में लगभग दो सहस्र ब्राह्मण परिवार रहते थे। सभी ब्राह्मण अग्निहोत्री तथा वैदिक कर्मों के ज्ञाता थे।

शंकराचार्य श्रीवेली की ओर शिष्यों सहित आ रहे हैं यह समाचार तेजी से श्रीबेली में पहुंच चुका था।

मीमांसक-प्रधान मंडन मिश्र शंकराचार्य के शिष्य रूप में उनके साथ आ रहे हैं।

श्रद्धालु भक्तों ने यह समाचार सुना तो वह भी अपने साथियों सहित शंकराचार्य के दर्शन के लिए उस मार्ग की ओर चल पड़े जिस मार्ग से शंकराचार्य श्रीवेली आ रहे थे।

ब्राह्मण के मृतक बालक को अलौकिक शक्ति वाले शंकराचार्य ने ही जीवनदान दिया था।

'सच मुझे यह सूचना सुनकर अधिक ही प्रसन्नता हुई विप्रवर', शास्त्रज्ञाता

धार्मिक प्रभाकर नामक ब्राह्मण ने अपने पड़ोसी की ओर देखते हुए कहा, 'कितनी देर में वह उस स्थान पर पहुंच जाएंगे, जहां उनके स्वागत का प्रबंध किया गया है?'

'पहुंचने ही वाले हैं, देखो दर्शकों की भीड़ उसी स्थान की ओर कितनी तेज़ी से भागी जा रही है।'

'भाई विद्वत्ता का सभी स्थान पर आदर होता है', श्रीवेली के ब्राह्मण संन्यासी शंकराचार्य के स्वागत की कितनी लगन से तैयारी कर रहे हैं।

'शंकराचार्य की जय! दिग्विजयी शास्त्रज्ञ धर्म उद्धारक शंकराचार्य की जय!'

श्रद्धालु भक्तों, दर्शकों ने शंकराचार्य के जयघोष से हरपार्वती के मंदिर के समीप का स्थान गुंजा दिया।

श्रीवेली के ब्राह्मण ने आगे बढ़कर शंकराचार्य का स्वागत किया और उन्हें नियत किए हुए स्वच्छ, सुंदर स्थान पर ठहराया।

शंकराचार्य पहले देवस्थान हरपार्वती के मंदिर में गए। वहां पूजा-अर्चना करके फिर अपने निवास-स्थान पर वापस आ गए।

शंकराचार्य के दर्शनों को श्रद्धालु भक्तों की भीड़ एकत्र हो गई।

शंकराचार्य ने उन्हें अद्वैततत्त्व की व्याख्या करके समझाया, श्रद्धालु मंत्र-मुग्ध-से उस युवा संन्यासी की ओर देखते रह गए, जिसके मुख पर तेजमय आभा और सरल मुस्कराहट थी। जो सबको अपनी ओर आकर्षित कर रही थी।

प्रभाकर अपने तेरह वर्ष की आयु के पुत्र को लेकर अपनी पत्नी सहित शंकराचार्य के दर्शन के लिए उनके निवास-स्थान पर आया। प्रभाकर का पुत्र तेरह वर्ष की आयु का हो गया था। वह गूंगा था, कोई शब्द नहीं बोल सकता था।

ब्राह्मण प्रभाकर दम्पति अधिक ही दुखी थी। शंकराचार्य की अलौकिक शक्तियों की घटनाएं उसने सुनी थीं।

शंकराचार्य अलौकिक शक्ति सम्पन्न महामानव हैं। संभव है उनकी कृपादृष्टि से यह गूंगा पुत्र बोलने लगे। सोचते हुए—फल, मिठाई भेंट, शंकराचार्य के चरणों में रखकर प्रभाकर रोने लगा।

प्रभाकर का गूंगा पुत्र शंकराचार्य के चरणों से लिपट गया।

प्रभाकर को रोते देखकर शंकराचार्य ने प्रेम से उसके सिर पर हाथ रखते हुए कहा, 'विप्र धीरज रखो।'

'देव! इस बालक के जड़ भाव का क्या कारण है', प्रभाकर ने आंख पोंछकर शंकराचार्य के चरणों में अपना मस्तक रखते हुए कहा, 'आप दया के सागर हैं, इसे अच्छा कर दीजिए।' यह एक शब्द का उच्चारण भी नहीं की सकता, वेदादि तो क्या

पढ़ सकेगा, अपनी भूख-प्यास भी नहीं बता सकता। इसकी दशा देखकर हमें अधिक ही दुख होता है!'

प्रभाकर की बातें सुनकर शंकराचार्य ने उसके गूंगे पुत्र को अपने चरणों से पृथक करके उसकी ओर दयालुता से देखते हुए पूछा, 'हे शिशु! तुम कौन हो, किसके पुत्र हो, तुम्हारा नाम क्या है कहां से आए हो? इन प्रश्नों के उत्तर देकर मुझे प्रसन्न करो, तुम्हें देखकर मुझे विशेष आनंद हो रहा है।'

शंकराचार्य के प्रश्न को सुनकर वह गूंगा बालक प्रसन्नता से भर गया और वह शंकराचार्य के तेजस्वी-मुख की ओर देखता हुआ मधुर वाणी से बोला, 'मैं मनुष्य नहीं हूं, देवता या यक्ष भी नहीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र भी नहीं, ब्रह्मचारी, गृही, वानप्रस्थी, संन्यासी भी नहीं, मैं केवल निजबोध स्वरूप आत्मा हूं।'

मन चक्षु आदि से रहित होने पर भी जो मन का मन और चक्षु का चक्षु है, तथापि जो मन या चक्षु आदि इंद्रियों के अगोचर हैं, मैं ही वह नित्यआत्मा हूं।

जो अद्वितीय पुरुष निर्मल चित्त में स्वयं प्रकाशित होते हैं। विविध पात्रों के जल में प्रतिबिम्बित सूर्य की तरह जो प्रकाशस्वरूप में अनेक बुद्धियों के भीतर विभिन्न रूप से प्रतीयमान होता है वही नित्यज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हूं।

जो सारे प्राणियों और वस्तुओं में व्याप्त है तथापि कोई वस्तु जिन्हें स्पर्श नहीं कर सकती, जो आकाश के समान सर्वदा शुद्ध और स्वच्छ स्वरूप है, मैं ही वह नित्यज्ञान स्वरूप आत्मा हूं।' यह संस्कृत श्लोक कहते हुए शंकराचार्य के प्रश्नों का उत्तर इन श्लोकों में देते हुए जन्म का गूंगा बालक बोलने लगा।

शंकराचार्य के प्रश्न पर, जन्म के गूंगे बालक के मुख से आत्मस्वरूप प्रकाशस्वरूप श्लोकात्मक वाक्य सुनकर वहां उपस्थित सभी मनुष्य आश्चर्य में भर गए।

शंकराचार्य ने अपने शिष्यों की ओर देखते हुए कहा, 'यह बालक ब्रह्मज्ञ पुरुष होगा, ऐसे तत्त्वज्ञानपूर्ण, ऐसी स्वरूप वर्णना साधारण मानव से संभव नहीं होती।'

'इस बालक ने आत्मज्ञान प्राप्त किया है। यह स्तोत्र 'हस्तामलक' नाम से प्रसिद्ध होगा। तुम सब भी आत्म स्वरूप ज्ञात करने वाले इस स्तोत्र को कंठस्थ कर लो।'

'आपने मेरे जड़ गूंगे पुत्र को वाणी का दान देकर इसका जीवन ही सफल नहीं कर दिया, आचार्य हमारा सबका जीवन सफल हो गया।'

प्रभाकर ब्राह्मण ने शंकराचार्य के चरण छूते हुए कहा, 'हम आपको किस मुंह से धन्यवाद दें, हमारा रोम-रोम आपके इस उपकार से ऋणी हो गया।'

'पूर्व जन्म के शुभ कर्म तथा तप के फलस्वरूप यह बालक ब्रह्मज्ञान में प्रतिष्ठित हुआ है। इसी कारण यह लौकिक बातें नहीं करता। यह गृहस्थ धर्म का पालन नहीं करेगा, विरक्त रहेगा।'

शंकराचार्य ने ब्राह्मण को समझाते हुए कहा, 'यह मुझे अभी ज्ञात हो चुका है।'

ब्राह्मण अपने जड़ पुत्र को बोलते देखकर जितना प्रसन्न हुआ था, उसके विरक्त भाव को जानकर दुखी हुआ और अपने साथ पुत्र को लेकर घर आया।

ब्राह्मण दम्पति से उनका पुत्र एक शब्द नहीं बोला, उसकी जननी बार-बार अपने पुत्र का मुख चूमते हुए प्यार से बोली, 'एक बार तो मेरे लाल अपने माता-पिता से बात कर, उनके हृदय को शांति दिलाओ।' पर बालक चुपचाप उनके मुंह की ओर पहले की तरह ही ताकता रहा।

प्रातःकाल होते ही अपने पुत्र के साथ प्रभाकर ब्राह्मण दम्पति शंकराचार्य के समीप पहुंचे।

ब्राह्मणी शंकराचार्य के चरणों में गिर पड़ी और रोते हुए प्रार्थना करने लगी—

'यतीराज! मेरे पुत्र को स्वस्थ कर दीजिए, आप तो मृतक को भी जीवित कर सकते हैं। मेरे जड़ पुत्र को भी स्वस्थ कर दीजिए, मेरे यह एक ही पुत्र है। यह विरक्त हो जाएगा, तब मैं किसका मुंह देखकर अपना जीवन व्यतीत करूंगी।'

'माता! आप इस अपने पुत्र के लिए वृथा शोक न करें, इसके शरीर में एक सिद्ध योगी निवास करते हैं। इस कारण यह आपके साथ रहकर गृहस्थ धर्म का पालन न कर सकेगा।'

शंकराचार्य ने मुस्कराते हुए कहा, 'इसके पूर्व जन्म के विषय में मुझे ज्ञात है। आपको उस समय की घटना याद नहीं रही जब यह दो ही वर्ष का था।'

'हम तो भूल चुके हैं देव', ब्राह्मण ने नम्रता से आचार्य के चरणों में झुकते हुए कहा, 'आप ही कृपा करके वह घटना बता दीजिए।'

'स्मरण कीजिए', शंकराचार्य ने उनके ओर देखते हुए कहा, 'आप दोनों यमुना-स्नान के लिए गए थे। वहां कुटी में एक योगी ध्यानस्थ बैठे हुए थे। तुमने यह समझा योगी बैठे हुए हैं, उनके समीप अपने इस बालक को छोड़कर तुम दोनों स्नान करने चले गए। यह दो वर्ष का बालक खेलते-खेलते यमुना में डूबकर मर गया। तुम दोनों स्नान करके वापिस आए, मृतक पुत्र को देखकर योगी के चरणों में उसे डालकर रोने लगे।

योगी को दया आ गई, वह अपना शरीर छोड़कर इस मृतक बालक के शरीर

में योगबल से प्रवेश कर गए, बालक को जीवित देखकर आप दोनों अधिक प्रसन्न हुए और उसे अपने घर ले आए।

वे ही योगी सिद्ध पुरुष इस बालक के शरीर में निवास कर रहे हैं, आप इसे गृहस्थ नहीं बना सकेंगे।'

'हमें वह घटना स्मरण हो गई है यतीवर', ब्राह्मण ने शंकराचार्य की ओर देखते हुए कहा, 'हम उसे भूल चुके थे।'

'माता! अब तो आपको मेरा परिचय ज्ञात हो चुका', बालक ने अपनी मां की ओर देखते हुए कहा, 'मैं कौन हूं, आप जान चुकीं, मुझे गृहस्थी में रहने के लिए विवश न करें। मुझे आचार्य के पास रहने की प्रसन्नचित्त से आज्ञा दीजिए। आपकी शांति के लिए प्रार्थना करता हूं, आपको शीघ्र ही पुत्र की प्राप्ति होगी।'

ब्राह्मणी ने अपने सिद्ध योगी पुत्र से सांत्वना भरे शब्द सुनकर हृदय को शांत करके फिर से आचार्य के चरण छुए और आंसू पोंछते हुए ब्राह्मण दम्पति प्रभाकर अपने उस सिद्ध योगी बालक को आचार्य के समीप छोड़कर वापिस अपने निवास-स्थल पर चले गए।

वह सिद्ध योगी बालक आचार्य के चरणों से लिपट गया। शंकराचार्य ने प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए 'हस्तामलक' उसका नाम रखा।

हस्तामलक थोड़े समय में ही विद्वान ज्ञानी बन गया। आचार्य ने शास्त्रानुसार उसे संन्यास-मंत्र में दीक्षित किया।

ब्रह्मज्ञान की ज्योति से उसका मुखमंडल चमकने लगा।

गूंगापन तो न जाने कहां लोप हो गया, वह तो हस्तामलकाचार्य कहलाने लगा था।

शंकराचार्य के लिखित ग्रंथों का भाष्य हस्तामलकाचार्य ने भी किया था।

हस्तामलकाचार्य पद्मपाद की तरह ही रात-दिन अपने गुरुदेव शंकराचार्य के चरणों में ही व्यतीत करने लगा था।

## 31

श्रीवेली में श्रद्धालु भक्तों को दर्शन देकर उन्हें शांति पाने के साधन बताते हुए, -शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित श्रृंगेरी की ओर चले।

जब आठ वर्ष की आयु में शंकराचार्य गृह त्यागकर केरल देश से गुरुगोबिंदपाद की खोज में चले थे तब मार्ग मे जाते हुए श्रृंगेरी (श्रृंगगिरी) ठहरे थे। प्राकृतिक दृश्यों से भरपूर उस सौंदर्यपूर्ण स्थान ने बाल संन्यासी शंकराचार्य का मन मोह लिया था।

शांत वातावरण और विषधर, सर्प व मेंढक एक ही स्थान पर निवास कर रहे थे।

उस दृश्य को देखकर बाल संन्यासी शंकर को अनुभव हुआ था। अवश्य यह भूमि किसी उच्च साधक की तपस्थली थी। उन्होंने इधर-उधर खोज की।

प्राचीन युग के ऋषि श्रृंगमुनि का आश्रम वहां था।

महान ऋषियों की तपस्थली कितनी प्रभावशाली है, जहां सर्प जैसा मेंढक का शत्रु भी उसके साथ निवास कर रहा है।

उस भूमि के दर्शन करने एक बार फिर श्रृंगेरी की ओर शंकराचार्य शिष्यों सहित चल पड़े।

पहले अकेले ही इस ओर आए थे, अबकी बार तो सहस्रों श्रद्धालु मनुष्य उनके साथ थे।

श्रृंगेरी प्राकृतिक शोभा लिए पर्वतीय प्रदेश है। तुंग और भद्रा नदियों के मिलने से तुंगभद्रा नदी बनी थी।

पर्वत से नीचे की आर बहते हुए तुंगभद्रा ने और भी प्राकृतिक सुंदरता श्रृंगेरी में बिखेर दी थी।

शंकराकचार्य उस शांत निर्जन प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर स्थल पर पहुंचकर

अधिक ही प्रसन्न हुए, शिष्यों से उन्होंने वहीं निवास करने की इच्छा प्रकट की।

स्थानीय चालुक्य राजा ने सुना, शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित शृंगेरी आ गए हैं।

उसने अपने कर्मचारियों को पूज्य शंकराचार्य का शिष्यों सहित यथायोग्य सत्कार की आज्ञा दी।

राजकर्मचारियों ने शंकराचार्य का सत्कार करके, उनके निवास के लिए बहुत-सी कुटियां बनवा दीं।

शंकराचार्य उस प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर स्थल पर शिष्यों सहित निवास करने लगे।

शंकराचार्य का वहां रहने का समाचार सुनकर आस-पास के अनेक स्थानों के श्रद्धालु भक्त, साधक, शास्त्रानुरागी ब्राह्मण उनके दर्शन को वहां आने लगे।

शंकराचार्य उन्हें अपने स्वरचित भाष्य आदि तथा अन्य आध्यात्मिक शास्त्र की व्याख्या करके समझाते, धर्म तथा साधना का उपदेश देकर धार्मिक ग्रंथों के पढ़ने में रुचि, धार्मिक कार्यों के लगन्न की प्रेरणा दे रहे थे।

आचार्य पद्मपाद और सुरेश्वराचार्य की विद्वत्ता प्रतिभा गंभीर पांडित्यपूर्ण जीवन को देखकर भी अनेक श्रद्धालुओं की श्रद्धा उनके प्रति उत्पन्न हो गई थी।

उनकी विद्वत्ता, प्रतिभा, शास्त्र ज्ञान देखकर शंकराचार्य ने भी उन्हें धर्म-प्रचार के लिए आज्ञा दे दी थी।

अनेक श्रद्धालु धर्म-प्रेमी उनके शिष्य बन गए और संयम-नियम से अभ्यास, ध्यान, साधना करने लगे।

कई मंदिर, मठ बनवाएं गए। आचार्य ने स्वयं श्रीयंत्र की स्थापना कर मंदिर का प्रतिष्ठा कार्य समाप्त किया।

विश्व कल्याण के लिए शंकराचार्य की विशेष इच्छा से शृंगेरी मठ स्थापित हुआ।

मठ के उच्च्य आदर्श को और भी उन्नत करने के लिए त्याग, तपस्या, स्वाध्याय साधना पर अधिक बल दिया गया।

मनुष्यों में धार्मिक भावनाओं की प्रेरणा देने वाले ग्रंथों की रचना की गई।

शंकराचार्य ने अपने शिष्यों व साधकों के लिए विवेक चूड़ामणि, अपरोक्षानुभूति, आत्मबोध, वेदांत केशरी, सर्वदर्शन सिद्धांत आदि अनेक उपदेशपूर्ण अनेक अमूल्य ग्रंथों की रचना की।

आचार्य शंकर ने अद्वैतवाद का जो प्रचार कार्य किया उससे हिंदू धर्म के

स्थायित्व में भी सहायता मिली।

अद्वैत वेदांत में विश्व के सभी धर्मों का स्थान है। संसार के सभी धर्म अद्वैतवाद रूपी वृक्ष की विभिन्न शाखाएं हैं और अद्वैत ज्ञान में ही समस्त साधनाओं की परिसमाप्ति है।

अद्वैत वेदांत के साथ अन्य किसी धर्म या मतवाद का विरोध नहीं है।

शंकराचार्य के शिष्य श्रद्धालु भक्तों को उपदेश देकर समझाते।

आनंदगिरि नामक एक ब्राह्मण युवक शंकराचार्य के दर्शन के लिए शृंगेरी मठ में आया। शंकराचार्य के दर्शन करके इतना प्रभावित हुआ कि उनका शिष्य बन गया।

गिरि (आनंदगिरि) अधिक पढ़ा हुआ नहीं था। शंकराचार्य के और शिष्य तो शास्त्रज्ञाता, शास्त्र-व्याख्या में निपुण प्रतिभाशाली थे।

गिरि, गुरु सेवा ही जानता था। वह रात-दिन गुरु सेवा में लगा रहता या गुरुभाइयों की सेवा करता।

नम्र, प्रियदर्शी, मधुरभाषी गिरि, अपने सेवा-भाव से सबका प्रिय बन गया।

गिरि की, शंकराचार्य के योग्य शिष्यों से प्रतिभा विद्वत्ता में न्यून होने पर भी, गुरु के प्रति श्रद्धा असीम थी।

गुरुदेव जब शिष्यों को अध्यात्मशास्त्र पढ़ाते, तब गिरि अपने गुरु के समीप बैठकर श्रद्धा से ध्यानपूर्वक सुनता।

एक दिन समीप की नदी में गिरि अपने गुरुदेव के वस्त्र धोने गया।

शंकराचार्य के अध्यापन का समय हो गया—सब शिष्य एकत्र हो गए और शांति पाठ आरंभ करने के लिए तैयार हो गए।

शंकराचार्य ने देखा गिरि अभी तक नहीं आया, तब उन्होंने शिष्यों से कहा, 'थोड़ी देर गिरि की प्रतीक्षा करो, वह आता ही होगा।'

'गुरुदेव! गिरि आपकी शास्त्र व्याख्या क्या समझ सकता है।' पद्मपाद ने थोड़ी देर गिरि की प्रतीक्षा करके कहा, 'उसे क्या समझ में आएगा।'

'वत्स, गिरि समझ नहीं सकता, पर श्रद्धा से एकाग्र होकर सब-कुछ सुनता है।' कहते हुए शंकराचार्य मुस्कराए।

नदी में वस्त्र धोते हुए गिरि को अनुभव हुआ, गुरुदेव प्रसन्न होकर आशीर्वाद दे रहे हैं। एक दिव्य प्रकाश उसके अंतर में भर गया।

एक अनूठे आनंद से उसका अंतःकरण भर गया, उसे ऐसा ज्ञात हुआ, जैसे वह सब विद्याओं का अधिकारी हो गया।

गुरुदेव के वस्त्र धोकर लौटते समय उसके मन में सारे चिंतन छंदोबद्ध होकर कविता रूप में अभिव्यक्त होने लगे।

भावाविष्ट की तरह कविता की आवृत्ति करते हुए शंकराचार्य के समीप आकर गिरि ने उनके चरण छुए।

निरक्षर गिरि के मुख से गंभीर अध्यात्म तत्त्वपूर्ण विशुद्ध श्लोक सुनकर अन्य शिष्य आश्चर्य से उसकी ओर देखते रह गए।

गिरि अनूठे आनंद से परिपूर्ण था। शंकराचार्य ने प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरकर उसे अपने समीप बिठाया।

गुरु की कृपा से ही गिरि अमूल्य विद्या सम्पत्ति का अधिकारी हो गया, सभी शिष्यों को यह ज्ञात हो गया। शृंगेरी में यह आश्चर्यपूर्ण घटना चारों ओर फैल गई।

निरक्षर गिरि गुरु कृपा से अमूल्य विद्या-सम्पत्ति का अधिकारी बन गया।

एक शुभ मुहूर्त में शंकराचार्य ने गिरि को संन्यास-मंत्र में दीक्षित किया।

गिरि का नाम तोटकाचार्य रखा गया। तोटकाचार्य गुरु सेवा के साथ आध्यात्मिक विषयों में ग्रंथ रचना भी करने लगे और वाद-विवाद भी।

'गुरुदेव ब्रह्मसूत्र की भाष्य रचना क्या अनेक विद्वानों, ऋषियों ने की थी।' तोटकाचार्य ने शंकराचार्य को ब्रह्मसूत्र भाष्य विषय में सोचते हुए देखकर पूछा, 'आपने पहले बताया था, वेदव्यास रचित ब्रह्मसूत्र छोटे-छोटे सूत्रों के रूप में लिखा गया था।'

'हां तोटकाचार्य, बोधायनाचार्य और कई विद्वानों ने ब्रह्मसूत्र की भाष्य रचना की थी।' शंकराचार्य ने तोटकाचार्य की ओर देखते हुए कहा, 'क्योंकि भाष्य की सहायता के बिना उन सूत्रों का रहस्य जानना असंभव है।

वेदांत सूत्र या शारीरिक सूत्र ब्रह्मसूत्र के ही समानांतर हैं। इस ब्रह्मसूत्र में विशेष रूप से जीव के बंधन और मोक्षलाभ की दार्शनिक मीमांसा लिपिबद्ध है।

सूत्र भाष्य भी साधारण मनुष्य नहीं समझ सकते, इस कारण सूत्र भाष्य के वार्तिक की रचना करनी है। उसी विषय में सुरेश्वराचार्य को यहां बुलाया है। तुम जाकर उन्हें यहां ले आओ।'

तोटकाचार्य गुरुदेव की आज्ञानुसार अपने गुरुभाई सुरेश्वराचार्य को बुलाने चला गया।

# 32

सुरेश्वराचार्य अपनी कुटी में बैठ हुए कुछ लिख रहे थे। तोटकाचार्य ने उनके समीप पहुंचकर धीरे-से पुकारा, 'भाई सुरेश्वराचार्य।'

'अरे तुम तोटकाचार्य', चौंककर सुरेश्वराचार्य ने तोटकाचार्य की ओर देखते हुए कहा, 'इस समय यहां कैसे आना हुआ?'

'गुरुदेव का आदेश था, मैं तुम्हें उनके समीप शीघ्र ही पहुंचा दूं।'

'क्या तुम में भी इतनी योगबल शक्ति आ गई है, जो योगबल से मुझे गुरुजी के पास पहुंचा दोगे', सुरेश्वराचार्य ने उठकर तोटकाचार्य के साथ चलते हुए कहा।

'गुरुकृपा से अमूल्य विद्यासम्पत्ति के अधिकारी तो बन ही गए हो।'

'गुरुकृपा होगी, तो वह भी मिल जाएगी, कहते हुए तोटकाचार्य मुस्करा दिया, 'बंधु हम संन्यासी हैं, किसी का मोह हमें नहीं होना चाहिए।'

'लो गुरुदेव तो कुटिया से बाहर खड़े हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।' लम्बे-लम्बे डग भरते हुए सुरेश्वराचार्य शंकराचार्य के समीप पहुंचकर उनके चरणों में झुक गया।

'उठो वत्स!' प्यार से सुरेश्वराचार्य को उठाकर छाती से लगाते हुए शंकराचार्य ने कहा, 'इस समय बुलाने का कारण तो न जानते होगे?'

'मैंने तुम्हें सूत्रभाष्य के वार्तिक लिखने के लिए बुलाया है।'

'गुरुदेव आपके द्वारा रचित सूत्रभाष्य के वार्तिक रचना करना कठिन है, पर मैं आपके आदेश का पालन यथाशक्ति करूंगा।' कहते हुए सुरेश्वराचार्य ने झुककर फिर अपने गुरु के चरण छुए और अपने गुरु का आशीर्वाद लेकर अपनी कुटिया में आकर एकाग्रता के साथ वार्तिक रचना करने लगे।

सुरेश्वराचार्य वार्तिक रचना कर रहे हैं—यह समाचार पद्मपाद सहित सभी शिष्यों को ज्ञात हुआ। उन्होंने सोचा, सुरेश्वराचार्य मीमांसक थे—संभव है, उस भाष्य

वार्तिक में कर्मकांड की प्रधानता रखें।

जिससे सूत्रभाष्य का मर्मार्थ ही विकृत हो जाए। वार्तिक रचना में गुरुदेव ही योग्य थे।

इसी प्रकार की चर्चा शंकराचार्य ने भी सुनी तो उन्होंने सुरेश्वराचार्य को एकांत में बुलाकर वार्तिक की रचना न करो, तुम अद्वैत सिद्धांत के विषय में ऐसा तत्त्वज्ञानपूर्ण एक प्रामाणिक ग्रंथ लिखो, जिसे पढ़कर उन शिष्यों का भ्रम से उत्पन्न संदेह दूर हो जाए।'

सुरेश्वराचार्य अपने गुरुदेव का आदेश मानकर उन्हें प्रणाम कर अपने निवास-स्थल पर चले गए।

सूत्रभाष्य के ऊपर वार्तिक रचना के विषय में पद्मपाद के शिष्य बाधा डाल रहे हैं। सोचते हुए शंकराचार्य ने पद्मपाद को अपने समीप बुलाकर कहा, 'पद्मपाद! कई श्रद्धालु यह चाहते हैं सूत्रभाष्य के ऊपर वार्तिक रचना तुम करो, पर मेरा विचार है वार्तिक की रचना न करके भाष्य की टीका लिखो, उसी में तुम अपना विचार प्रकट करो।'

'गुरुदेव! आपके आदेश का पालन करूंगा', कहते हुए पद्मपाद गुरु के चरण छूकर अपनी कुटिया में चला गया और टीका रचना में लग गया।

लगातार रात-दिन परिश्रम करके सुरेश्वराचार्य ने थोड़े दिनों में ही एक प्रामाणिक दार्शनिक ग्रंथ की रचना कर ली।

ग्रंथ सुंदर भाषा में 'नैष्कर्म्य सिद्धि' नामक युक्ति पूर्ण ब्रह्मात्म विज्ञान के सम्बंध में था।

ग्रंथ लेकर सुरेश्वराचार्य, शंकराचार्य के समीप पहुंचे और उन्हें समर्पित कर दिया।

शंकराचार्य ने उस ग्रंथ को एकाग्रता से पढ़ा। सुरेश्वराचार्य के अगाध पांडित्य, विषयवस्तु का गंभीर ज्ञान, अपूर्व रचना कौशल, अकाट्य युक्तियों के द्वारा पूर्व पक्षों का खंडन, अपने सिद्धांत स्थापन की विपुल-शक्ति, 'नैष्कर्म्य सिद्धि' ग्रंथ में थी।

उस ग्रंथ को पढ़कर शंकराचार्य अधिक ही प्रसन्न हुए और सुरेश्वराचार्य को अपने समीप बुलाकर कहा, 'वत्स सुरेश्वर, तुम्हारे ग्रंथ को पढ़कर अत्यंत ही प्रसन्नता हुई है।

यदि सूत्रभाष्य की वार्तिक रचना नहीं हो सकी उसका खेद न करो।

मेरे द्वारा रचित, तैत्तिरीय और बृहदारण्यक उपनिषद् भाष्यों पर वार्तिक रचना करो।

'ब्रह्मसिद्धि' और 'इष्टसिद्धि' नामक और दो ग्रंथ लिखो, उन्हीं से विश्व में तुम्हारी कीर्ति अमर रहेगी।'

'देव? आपके आदेश का पालन करूंगा', कहते हुए प्रसन्न होकर सुरेश्वराचार्य ने अपने गुरु की चरण धूलि अपने मस्तक से लगाई और शंकराचार्य की ओर देखते हुए कहा, 'गुरुदेव!' आपका अद्वैत तत्त्वोपदेश श्रवण करने से हृदय अनूठे आनंद से भर जाता है। मैं अपने को धन्य मानता हूं।' शंकराचार्य के चरणों में फिर से मस्तक झुकाकर, सुरेश्वराचार्य अपने निवास-स्थान की ओर चला गया।

शंकराचार्य ने शिष्यों को बुलाकर नैष्कर्म्य सिद्धि ग्रंथ का पाठ करने का आदेश दिया।

ग्रंथ को पढ़कर सभी मुग्ध हुए, सुरेश्वराचार्य के पांडित्य, ज्ञाननिष्ठा के सम्बंध में अब किसी को संशय नहीं रहा।

वेदांत प्रचार के लिए शंकराचार्य ने अपने सभी शिष्यों को निर्देश दिया, 'शक्ति के अनुसार तुम अद्वैतज्ञान-मूलक विभिन्न ग्रंथों की रचना करो।'

कई शिष्य परमात्मज्ञान विषयक ग्रंथों की रचना करने लगे।

बृहदारण्यक और छांदोग्य उपनिषदों के भाष्यों की प्रचलित टीकाओं की रचना तोटकाचार्य (आनंदगिरि) ने की।

सूत्र भाष्य की टीका पद्मपाद ने लिखी। शंकराचार्य ने पद्मपाद को बुलाकर प्रथम चार सूत्रों की पूरी टीका सुनी। और उसके निपुण विचार रचना शैली की प्रशंसा करते हुए कहा, 'पद्मपाद! तुम सम्पूर्ण सूत्र भाष्य की टीका लिखो।

इस टीका का नाम 'विजयडिंडिम' होगा—इसके प्रचार से विश्व में वेदांत की ध्वजा सदैव फहराती रहेगी।'

पद्मपाद ने अपने आचार्य की इच्छानुसार समस्त सूत्र भाष्य की टीका लिखकर गुरु दक्षिणा रूप में आचार्य के चरणों में समर्पित कर दी और उनसे तीर्थ भ्रमण की आज्ञा मांगी।

वार्तिक रचना में हमारी आलोचना के कारण ही बाधा आई, यह सोच-सोचकर पद्मपाद अपने को महान अपराधी मान रहा था। पश्चाताप से उसका हृदय भर गया था।

प्रायश्चित स्वरूप ही वह तीर्थयात्रा के लिए तैयारी कर रहा था।

'वत्स इस समय तीर्थयात्रा से अधिक लाभ नहीं पहुंचेगा', पद्मपाद के मनोभाव समझकर उसे समझाते हुए शंकराचार्य ने कहा, 'गुरु साहचर्य ही यथार्थ तीर्थयात्रा है। दिनभर यात्रा करोगे, थक जाओगे, रात्रि को थककर सो जाओगे, इससे तुम्हें तत्त्व

चिंतन, साधना के लिए समय न मिलना सकेगा।'

पद्मपाद नीचा सिर किए गुरु उपदेश सुनते रहे, मन में तीर्थयात्रा का निर्णय ले चुके थे।

पद्मपाद का तीव्र वैराग्य दृढ़ संकल्प देखकर शंकराचार्य ने पद्मपाद को आशीर्वाद देते हुए उसे तीर्थयात्रा की आज्ञा दे दी।

शुभ मुहूर्त देखकर थोड़े से शिष्यों को लेकर पद्मपाद तीर्थ भ्रमण के लिए चल पड़े।

पद्मपाद ने पहले रामेश्वरम् तथा सेतुबंध दर्शन का निर्णय किया। मार्ग में आए हुए कई तीर्थों का दर्शन करते हुए वह आगे बढ़े।

कालहस्ती, कांचीपुरम्, पुंडरीकपुरम्, शिवगंगा आदि प्रसिद्ध तीर्थों का दर्शन करते अपने शिष्यों सहित पद्मपाद प्राचीन तीर्थ श्रीरंगम पहुंचे।

श्रीरंगम में एक दिन ठहरकर पद्मपाद आगे की ओर चले। वहां से थोड़ी दूर ही उनके मामा का घर था। इधर आए हैं तो मामा से भी मिल लें। सोचते हुए पद्मपाद अपने शिष्यों सहित मामा के निवास-स्थल की ओर चल पड़े।

पद्मपाद के मामा सदाचारी प्रसिद्ध वैष्णव पंडित थे। वे कर्मकांडी थे। द्वैतवादी थे।

पद्मपाद को संन्यासी वेश में देखकर उसके मामा मन-ही-मन अधिक दुखी हुए, पर भीतर का भाव छिपाकर विशेष रूप से उसका आदर-सत्कार किया। और आग्रह से उसे वहां कई दिन ठहरने के लिए कहा।

पद्मपाद अपने मामा का आग्रह न टाल सके और शिष्यों सहित अपने मामा के बताए हुए निवास-स्थल पर ठहर गए।

## 33

पद्मपाद अपने मामा से मिलकर अधिक प्रसन्न हुए। पद्मपाद के गुरु का नाम सुनकर उसका मामा चौंक गया।

दिग्विजयी शंकराचार्य का शिष्य पद्मपाद है। मैं द्वैतवादी और पद्मपाद अद्वैतवादी है।

'मामाजी! शास्त्रीय आलोचना का शुभ अवसर आप देंगे', पद्मपाद ने मुस्कराकर अपने मामा की ओर देखते हुए कहा, 'कभी छोटा-सा नादान आपकी गोद में खेलते हुए अटपटे शब्द बोला करता था।'

'तेरी मार्ग की थकान दूर हो गई क्या, जो अब शास्त्रीय आलोचना में प्रवृत्त होना चाहता है।' पद्मपाद के मामा ने शास्त्रार्थ न करने पर बल दिया। पर पद्मपाद ने तर्क-विर्तक करके अपने मामा को शास्त्रीय आलोचना के लिए तैयार कर लिया।

वाद-विवाद आरंभ हो गया, पद्मपाद के युक्ति तर्कों के सामने उसके मामा अपने पक्ष का अधिक प्रबल युक्ति प्रमाण न दे सके। उन्होंने सिर झुका लिया। मन-ही-मन सोचा, पद्मपाद क्या मुझसे अधिक विद्वान बनने के लिए वाद-विवाद करने का आग्रह कर रहा था। मैं उससे पराजय नहीं मानूंगा, पद्मपाद के मामा के मन में उसके प्रति ईर्ष्या की अग्नि भड़क उठी।

पद्मपाद मामा के मनोभाव को न समझ सका, धर्मग्रंथों में रुचि देखकर उसने अपनी रचना 'विजयडिंडिम' अपने मामा को दिखाते हुए कहा 'मामा! हमारे आचार्य ने ब्रह्मसूत्र पर जो भाष्य लिखा था मैंने उस भाष्य की टीका बनाई है, इस टीका का नाम 'विजयडिंडिम' रखा है।'

'सचमुच पद्मपाद ग्रंथ का एक अंश ही पढ़कर ज्ञात हुआ, यह ग्रंथ तुम्हें अधिक कीर्ति दिलाएगा', पद्मपाद के मामा ने मनोभाव दबाते हुए उस ग्रंथ की प्रशंसा करते

हुए कहा, 'इसका एक अंश ही पढ़कर सारे ग्रंथ को पढ़ने की प्रबल इच्छा हो गई है।'

'मैं तो तीर्थयात्रा को आगे जा रहा हूं, कई दिन में वापस आऊंगा, आप इस ग्रंथ को अपने पास रखें। इतने समय में तो आप इसे भली प्रकार पढ़ लेंगे।'

'हां, इतने समय में तो ग्रंथ पढ़ लूंगा', पद्मपाद के मामा ने प्रसन्न होते हुए कहा, 'जब तुम इधर आओगे, तब तुम्हारा ग्रंथ, तुम्हें सौंप दूंगा।'

पद्मपाद अपने मामा के आग्रह से कई दिन वहां ठहरा, फिर शिष्यों सहित वहां से चल पड़ा।

पद्मपाद से शास्त्र व्याख्या, उपदेश सुनकर वहां के निवासी अधिक ही प्रसन्न हुए और उसकी विद्वत्ता की प्रशंसा करने लगे।

उस ग्रंथ के कारण ही पद्मपाद का मामा ईर्ष्या से भर उठा था। यदि यह ग्रंथ प्रकाशित हो गया तो कर्मकांड के मूल पर ही कुठाराघात होगा।

अब उसकी विद्वत्ता-प्रतिभा पर वहां के निवासियों को मुग्ध देखकर और भी ईर्ष्या से भर गया और पद्मपाद को हानि पहुंचाने का साधन खोजने लगा।

पद्मपाद अपने मामा के पास अपना ग्रंथ छोड़कर तीर्थ-यात्रा के लिए चल पड़ा। लौटते हुए उस ग्रंथ को ले लेंगे यह निर्णय हुआ।

पद्मपाद तीर्थ-यात्रा करने चल पड़ा। पद्मपाद के मामा के विजयडिंडिम ग्रंथ को पढ़कर सोचा, यदि यह ग्रंथ प्रकाशित हो गया तो हमारे गुरु का यश मलिन हो जाएगा।

उस ग्रंथ में जो युक्तिपूर्ण तर्क मतवाद की प्रतिष्ठा के लिए दिए हैं उन्हें खंडन कर अपने मत की प्रतिष्ठा करने की भी अब शक्ति नहीं रही है। तब क्या किया जाए।

पद्मपाद के मामा के हृदय में पद्मपाद की विद्वत्ता-प्रतिभा के प्रति ईर्ष्या-अग्नि इतनी तीव्र हो गई। भला-बुरा सोचने की शक्ति ही लोप हो गई।

ग्रंथ को नष्ट करने का उसने निर्णय कर लिया और एक दिन चुपचाप अंधेरी रात्रि में उस ग्रंथ को घर के कोने में रखकर आग लगा दी।

पड़ोसी उस आग को बुझाने आए, इतनी देर में घर के भाग के साथ पद्मपाद का लिखित ग्रंथ 'विजयडिंडिम' भी जलकर राख हो चुका था।

पद्मपाद का मामा मन-ही-मन अधिक प्रसन्न था पर ऊपर से आंसू बहा-बहाकर पड़ोसियों की सहानुभूति बटोर रहा था और रोते हुए कह रहा थाः पद्मपाद ने कितनी कठिनाई से ऐसा महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखा था, क्रूर काल ने उसे अग्नि की भेंट चढ़ा दिया।

पद्मपाद रामेश्वरम् आदि अनेक तीर्थों के दर्शन करके अधिक ही प्रसन्न हुआ और वापिस लौटते हुए मामा के घर के समीप पहुंचा।

'अरे, मामा का घर तो जल गया', खेद प्रकट करते हुए पद्मपाद ने मामा को

प्रणाम करते हुए कहा, 'मामा आपके घर के भाग जले हुए देखकर अति ही दुःख हुआ।'

'पद्मपाद मुझे इतना घर जलने का दुःख नहीं जितना तेरे 'विजयडिंडिम' ग्रंथ जलने का दुःख है।' मगरमच्छी आंसू बहाते हुए पद्मपाद को अपने गले से लगाकर रोते हुए पद्मपाद के मामा ने कहा।

'मुझे क्या पता था तेरा लिखित ग्रंथ इस प्रकार अग्नि के भेंट हो जाएगा। मैं उसे पढ़ने के लिए अपने पास कदापि नहीं रखता।'

'मामा तुम दुखी न हो', पद्मपाद ने अपने मामा को सांत्वना देते हुए कहा, 'अपने गुरुदेव की कृपा से उससे अधिक युक्तिपूर्ण ग्रंथ की रचना कर लूंगा। और आपने प्रश्न मुझसे किए थे, उन प्रश्नो का निपुणता से खंडन करते हुए उन प्रश्नो कर उत्तर उस नवीन ग्रंथ में लिखूंगा।'

पद्मपाद के मामा और भी ईर्ष्या से भर गए। यह पद्मपाद जीवित रहा तो हमारे गुरु का यश तो धूमिल हो ही जाएगा, हमारी प्रतिष्ठा को भी ठेस पहुंचेगी। सोचते हुए पद्मपाद के मामा ने एक कुटिल व्यक्ति से ऐसा विष मंगवाया जो मस्तक बुद्धि को हानि पहुंचाकर उसकी बुद्धि मंद कर दे।

पद्मपाद को उसके मामा ने आदर-सत्कार करके भोजन करने का आग्रह किया। और विष मिलाकर उस भोजन को पद्मपाद को खिला दिया। भोजन करते ही विष के प्रभाव से पद्मपाद पागल हो गए।

पद्मपाद के शिष्यों ने वैद्य को बुलाकर पद्मपाद का उपचार कराया। वैद्य ने बताया, भोजन में इन्हें विष दिया गया है।

शिष्य समझ गए, पद्मपाद के मामा ने ही यह दुष्कर्म किया है। कहीं और इन्हें हानि न पहुंचाए, सोचते हुए सभी शिष्य अपने गुरु पद्मपाद को लेकर शृंगेरी की ओर चल पड़े।

वैद्यों की औषध से पद्मपाद कुछ सुध में आया था पर पहले जैसी स्वाभाविक अवस्था उसकी नहीं हुई थी।

चिंता करते हुए पद्मपाद के शिष्य शृंगेरी की ओर चले। उन्हें विश्वास था, पूज्य शंकराचार्य शृंगेरी में मिलेंगे। पर मार्ग में ही यात्रियों द्वारा ज्ञात हुआ शंकराचार्य केरल ही ओर चले गए हैं।

रात्रि मार्ग में विश्राम करते, प्रातःकाल यात्रा के लिए चल पड़ते।

इस प्रकार पद्मपाद के शिष्य अपने विकृत मस्तक वाले गुरु पद्मपाद को उनके गुरु शंकराचार्य के पास केरल ले जा रहे थे।

'हमारा इतना प्रभावशाली विद्वान गुरु था, ईर्ष्यावश होकर उसके मामा ने ही यह दुष्ट कार्य किया, कितना घृणाजनक षड्यंत्र था।'

'एक विद्वान प्रतिभाशाली सम्बंधी को इस कारण विष देकर मारने का षड्यंत्र किया ताकि उनकी कीर्ति यश धूमिल न पड़े।'

'छिः छिः इतने विद्वान मानव भी ईर्ष्यावश होकर पशु जैसे कर्म कर जाते हैं।'

'बंधु! पशु भी प्यार पहचानता है', पद्मपाद के शिष्य अपने गुरु की दशा देखकर दुखी होते और पथ पर चलते हुए आपस में वार्तालाप करते।

'विश्वासघाती मानव क्या मानव कहलाने का अधिकारी है, वह नीच तो पशु से भी गिर हुआ है।'

'पूज्य आचार्य हमारे गुरुदेव से कितना प्यार करते थे। कैसी अमूल्य विद्या, योग, शक्ति आचार्य ने प्रसन्न होकर गुरुदेव को प्रदान की थीं।'

'उनका उपयोग अभी भली प्रकार हो भी न सका, दुष्टों ने उनकी स्मरण शक्ति ही विष द्वारा नष्ट कर दी।' पद्मपाद की अटपटी चाल, अटपटी बातें देखकर उसकी ओर देखते हुए दूसरे शिष्य ने अपने आंसू पोंछते हुए कहा।

'पूज्य शंकराचार्य इस दशा में देखकर कितने दुखी होंगे, हमें भी तो लज्जा आ रही है। गुरुदेव हमारे साथ तीर्थ-यात्रा पर चले, जब स्वस्थ थे।'

'अब इनकी इस समय की दशा देखकर कोई अनुमान लगा सकता है। कितने प्रतिभाशाली विद्वान संन्यासी हैं।' तीसरे शिष्य ने धीरे से अपने गुरु-भाई के समीप आकर फुसफुसाते हुए कहा।

'पूज्य आचार्य तो गुरुदेव को गोवर्धन मठ का आचार्य बनाकर भोगवार सम्प्रदाय के संचालक के रूप में देखना चाहते थे।'

'देखो पूज्य आचार्य अपनी कृपादृष्टि से संभव है फिर से हमारे गुरुदेव की स्मृति वैसी ही कर दें।'

'हमें तो विश्वास है बंधु, पूज्य आचार्य, गुरुदेव को अपने योगबल से विष प्रभाव से मुक्त करके, स्वस्थ कर देंगे।' चौथे शिष्य ने मुड़कर अपने गुरु-भाई से कहा, 'केरल समीप आ रहा है गुरुदेव कैसे लम्बे-लम्बे डग भरते हुए चलने लगे हैं।'

'मौन धारे कितने दिन व्यतीत हो गए, देखो, पूज्य आचार्य के समीप जाकर गुरुदेव का मौन टूटता है या नहीं।'

पद्मपाद कभी कहीं बैठ जाता, कभी लम्बे-लम्बे डग भरता, ओठों-ही-ओठों में बुदबुदाता अपने शिष्यों के साथ चल रहा था। उसके शिष्य उसकी ऐसी दशा देखकर दुखी होते हुए एक-दूसरे से पद्मपाद के विषय में बातें करते हुए चल रहे थे।

# 34

पद्मपाद जब से शृंगेरी से तीर्थयात्रा के लिए गए थे, उनके गुरुभाइयों को अधिक खेद हो रहा था।

व्यर्थ के वाद-विवाद से गुरुभाई को पश्चात्ताप करके, तीर्थयात्रा के लिए ऐसे समय जाना पड़ा। जब उनकी यहां आवश्यकता थी।

'आचार्य के प्रथम, प्रधान और प्रिय शिष्य थे। प्रत्येक समय अपने गुरु की सेवा के लिए उनके समीप रहते थे।'

आपस में गुरुभाई एक-दूसरे से चर्चा करते, 'गुरुदेव भी अब अधिक समय मौन ही धारण किए रहते हैं। देखकर दुख होता है।'

'गुरुदेव ने अभी तुम सबको शास्त्र व्याख्या के लिए बुलाया है।'

प्रभृति ने अपने गुरुभाइयों के समीप आते हुए कहा, 'बंधु! पद्मपाद बिना सूना-सूना लगता है।'

'चलो आज तो आचार्य प्रातःकाल ही शास्त्र-व्याख्या हमारे सामने करेंगे।' कहते हुए सभी शिष्य संन्यासी शंकराचार्य के आसन के समीप पहुंचे और शंकराचार्य की चरण-वंदना करके उनके चरणों के समीप बैठ गए।

शंकराचार्य शास्त्र-व्याख्या करते-करते ध्यानमग्न हो गए, उन्हें ऐसा अनुभव हुआ, उनकी माता विशिष्टा देवी का अंतिम समय है। वह उन्हें स्मरण कर रही हैं।

उन्होंने शिष्यों से कहा, 'मेरी माता का अंतिम समय आ गया है। वह मुझे स्मरण कर रही हैं।

मैंने उनसे प्रतिज्ञा की थी अंतिम समय अवश्य उनके चरण कमलों के समीप बैठूंगा।

मैंने वह प्रतिज्ञा पूरी करनी है, इसी समय मैं उनके पास जाऊंगा।' इतना

कहते हुए शंकराचार्य योगबल से आकाश-मार्ग से केरल देश में अपनी माता के समीप पहुंच गए।

विशिष्टा देवी रोग शय्या पर पड़ी अंतिम घड़ियां गिन रही थीं। 'शंकर ने कहा था, अंतिम समय वह अवश्य मेरे पास आएगा, पर प्राण-पखेरू उड़ने को हैं वह अभी नहीं आया।'

'मां मैं आपकी सेवा को आ गया', कहते हुए शंकराचार्य ने झुककर अपनी मां के चरण छुए।

विशिष्टा की बूढ़ी दासी ने चौंककर सामने देखा, संन्यासी वेश में उनका शंकर ही तो सामने खड़ा था।

थोड़ी दूर पर उनका सगोत्र पड़ोसी विशिष्टा की दशा देखकर उदास-सा बैठा था। शंकर को देखते ही वह प्रसन्नता से उठकर खड़ा हो गया।

तेजस्वी संन्यासी शंकर को अपलक देखता रह गया।

मां मैं आ गया! शब्द सुनकर बेसुध विशिष्टा ने चौंककर सामने देखा, 'अरे शंकर तू आ गया बेटा, मेरा तो अंतिम समय आ गया, तुझे देखने की इच्छा मन में थी, बस अब मैं शांति से प्राण छोड़ूंगी।'

'मां अब तो मैं तुम्हारी सेवा को आ गया। औषधि, पथ्य, सेवा द्वारा तुम्हारा रोग दूर करूंगा, आप स्वास्थ्य लाभ करेंगी।' शंकराचार्य ने अपनी मां की ओर देखते हुए कहा, 'तुम स्वस्थ हो जाओगी मां।'

'मैं तुम्हें देखकर अति प्रसन्न हुई हूं शंकर, सम्बंधियों ने मुझे अति दुख दिया है। उस कारण और रोग और बुढ़ापे के कारण अधिक थक गई हूं। तुम्हारे देखने की इच्छा थी वह पूर्ण हुई, अब शांति से मर सकूंगी।'

प्रेम से शंकराचार्य के सिर पर हाथ फेरते हुए विशिष्टा ने कहा, 'यह बुढ़िया दासी और यह मेरा निर्धन पड़ोसी ही अभी तक मेरी देखभाल, सेवा आदि करते रहे।'

'इतने दिन इनके सहारे व्यतीत हो गए, अब तो वह कार्य करो जिससे मेरी सद्गति हो।'

'मां अपने इष्टदेव केशव का स्मरण करो। लक्ष्मीपति विष्णु की स्तुति करो।' कहते हुए शंकराचार्य ध्यानमग्न हो गए।

विशिष्टा भी अपने पुत्र के साथ ही इष्ट की वंदना करने लगी।

अपनी मां की अंतिम इच्छा पूर्ण करने को शंकराचार्य ने विष्णु की स्तुति की।

विष्णु शंकराचार्य के तप साधना से अधिक ही प्रसन्न थे। प्रसन्न होकर

शंकराचार्य की प्रार्थना पर उनकी मां विशिष्टा को अंत समय दर्शन देने के लिए प्रकट हुए।

कई ग्रामवासी शंकराचार्य के आने का समाचार सुनकर वहां एकत्र हो गए थे।

अचानक ही उन्होंने देखा, शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी विष्णु भगवान अनूठा उज्ज्वल प्रकाश फैलाते हुए विशिष्टा देवी के सामने खड़े हुए मुस्करा रहे हैं।

विशिष्टा हर्ष में भरकर उनके चरणों से लिपटने को उठी। उसी समय उनके प्राणपखेरू उड़कर उसके इष्ट धाम में चले गए। आश्चर्य से ग्रामवासी पड़ोसी देखते रह गए।

बाल्यकाल से ही शंकर मातृभक्त थे, मातृभक्ति, ब्रह्मज्ञान के उच्च शिखर से उतरकर भक्ति गंगा में मिल चुकी थी।

'मां की अंतिम इच्छा थी मैं ही उनका अंतिम संस्कार करूं', शंकराचार्य ने ग्रामवासी पड़ोसी व सम्बंधियों की ओर देखते हुए कहा, 'आप इनके अंतिम संस्कार की तैयारी करा दें।'

'नहीं शंकर, तुम इनका संस्कार नहीं कर सकते', सम्बंधियों ने आगे बढ़कर कहा, 'संन्यासी बनकर अब उसका अंतिम संस्कार करके उसकी सम्पत्ति के अधिकारी बनना चाहते हो। हम ऐसा अशास्त्रीय कार्य नहीं करने देंगे।'

'मेरी माता की अंतिम इच्छा थी, मैं ही उनका अंतिम संस्कार करूंगा', शंकराचार्य ने बूढ़ी दासी और सगोत्र पड़ोसी की ओर देखते हुए कहा, 'यह अंतिम संस्कार की तैयारी कर देंगे। मुझे सम्पत्ति का मोह नहीं, अपनी वृद्धा दासी और निर्धन बंधु को अपनी सारी सम्पत्ति दे दूंगा।'

'यह तुम्हारा निर्धन सम्बंधी तुम्हारा सहयोग देगा', शंकर के सम्बंधियों ने क्रोध में भरकर उसकी ओर देखते हुए कहा, 'इसे जाति बाहर न किया तो हमारा नाम नहीं, समझे।'

'एक संन्यासी यह कार्य नहीं कर सकता। अशास्त्रीय कार्य है, हम सहयोग नहीं देंगे', कहते हुए शंकर के सम्बंधी ब्राह्मण, संन्यासी शंकर को बुरा-भला कहते, कटु वचन कहते वहां से चले गए।

जाति बंधुओं का ऐसे समय यह दुर्व्यवहार देखकर शंकराचार्य को अधिक ही खेद हुआ।

उन्होंने अपने सगोत्र निर्धन बंधु और अपनी बूढ़ी दासी के सहयोग से लकड़ी एकत्र करके आंगन में चिता बना ली और लकड़ी रगड़कर अग्नि प्रज्वलित की और अपनी मां का अंतिम दाह-संस्कार कर दिया।

कहते हुए शंकराचार्य योगबल से आकाश-मार्ग से केरल देश में अपनी माता के समीप पहुंच गए।

विशिष्टा देवी रोग शय्या पर पड़ी अंतिम घड़ियां गिन रही थीं। 'शंकर ने कहा था, अंतिम समय वह अवश्य मेरे पास आएगा, पर प्राण-पखेरू उड़ने को हैं वह अभी नहीं आया।'

'मां मैं आपकी सेवा को आ गया', कहते हुए शंकराचार्य ने झुककर अपनी मां के चरण छुए।

विशिष्टा की बूढ़ी दासी ने चौंककर सामने देखा, संन्यासी वेश में उनका शंकर ही तो सामने खड़ा था।

थोड़ी दूर पर उनका सगोत्र पड़ोसी विशिष्टा की दशा देखकर उदास-सा बैठा था। शंकर को देखते ही वह प्रसन्नता से उठकर खड़ा हो गया।

तेजस्वी संन्यासी शंकर को अपलक देखता रह गया।

मां मैं आ गया! शब्द सुनकर बेसुध विशिष्टा ने चौंककर सामने देखा, 'अरे शंकर तू आ गया बेटा, मेरा तो अंतिम समय आ गया, तुझे देखने की इच्छा मन में थी, बस अब मैं शांति से प्राण छोड़ूंगी।'

'मां अब तो मैं तुम्हारी सेवा को आ गया। औषधि, पथ्य, सेवा द्वारा तुम्हारा रोग दूर करूंगा, आप स्वास्थ्य लाभ करेंगी।' शंकराचार्य ने अपनी मां की ओर देखते हुए कहा, 'तुम स्वस्थ हो जाओगी मां।'

'मैं तुम्हें देखकर अति प्रसन्न हुई हूं शंकर, सम्बंधियों ने मुझे अति दुख दिया है। उस कारण और रोग और बुढ़ापे के कारण अधिक थक गई हूं। तुम्हारे देखने की इच्छा थी वह पूर्ण हुई, अब शांति से मर सकूंगी।'

प्रेम से शंकराचार्य के सिर पर हाथ फेरते हुए विशिष्टा ने कहा, 'यह बुढ़िया दासी और यह मेरा निर्धन पड़ोसी ही अभी तक मेरी देखभाल, सेवा आदि करते रहे।'

'इतने दिन इनके सहारे व्यतीत हो गए, अब तो वह कार्य करो जिससे मेरी सद्गति हो।'

'मां अपने इष्टदेव केशव का स्मरण करो। लक्ष्मीपति विष्णु की स्तुति करो।' कहते हुए शंकराचार्य ध्यानमग्न हो गए।

विशिष्टा भी अपने पुत्र के साथ ही इष्ट की वंदना करने लगी।

अपनी मां की अंतिम इच्छा पूर्ण करने को शंकराचार्य ने विष्णु की स्तुति की।

विष्णु शंकराचार्य के तप साधना से अधिक ही प्रसन्न थे। प्रसन्न होकर

शंकराचार्य की प्रार्थना पर उनकी मां विशिष्टा को अंत समय दर्शन देने के लिए प्रकट हुए।

कई ग्रामवासी शंकराचार्य के आने का समाचार सुनकर वहां एकत्र हो गए थे।

अचानक ही उन्होंने देखा, शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी विष्णु भगवान अनूठा उज्ज्वल प्रकाश फैलाते हुए विशिष्टा देवी के सामने खड़े हुए मुस्करा रहे हैं।

विशिष्टा हर्ष में भरकर उनके चरणों से लिपटने को उठी। उसी समय उनके प्राणपखेरू उड़कर उसके इष्ट धाम में चले गए। आश्चर्य से ग्रामवासी पड़ोसी देखते रह गए।

बाल्यकाल से ही शंकर मातृभक्त थे, मातृभक्ति, ब्रह्मज्ञान के उच्च शिखर से उतरकर भक्ति गंगा में मिल चुकी थी।

'मां की अंतिम इच्छा थी मैं ही उनका अंतिम संस्कार करूं', शंकराचार्य ने ग्रामवासी पड़ोसी व सम्बंधियों की ओर देखते हुए कहा, 'आप इनके अंतिम संस्कार की तैयारी करा दें।'

'नहीं शंकर, तुम इनका संस्कार नहीं कर सकते', सम्बंधियों ने आगे बढ़कर कहा, 'संन्यासी बनकर अब उसका अंतिम संस्कार करके उसकी सम्पत्ति के अधिकारी बनना चाहते हो। हम ऐसा अशास्त्रीय कार्य नहीं करने देंगे।'

'मेरी माता की अंतिम इच्छा थी, मैं ही उनका अंतिम संस्कार करूंगा', शंकराचार्य ने बूढ़ी दासी और सगोत्र पड़ोसी की ओर देखते हुए कहा, 'यह अंतिम संस्कार की तैयारी कर देंगे। मुझे सम्पत्ति का मोह नहीं, अपनी वृद्धा दासी और निर्धन बंधु को अपनी सारी सम्पत्ति दे दूंगा।'

'यह तुम्हारा निर्धन सम्बंधी तुम्हारा सहयोग देगा', शंकर के सम्बंधियों ने क्रोध में भरकर उसकी ओर देखते हुए कहा, 'इसे जाति बाहर न किया तो हमारा नाम नहीं, समझे।'

'एक संन्यासी यह कार्य नहीं कर सकता। अशास्त्रीय कार्य है, हम सहयोग नहीं देंगे', कहते हुए शंकर के सम्बंधी ब्राह्मण, संन्यासी शंकर को बुरा-भला कहते, कटु वचन कहते वहां से चले गए।

जाति बंधुओं का ऐसे समय यह दुर्व्यवहार देखकर शंकराचार्य को अधिक ही खेद हुआ।

उन्होंने अपने सगोत्र निर्धन बंधु और अपनी बूढ़ी दासी के सहयोग से लकड़ी एकत्र करके आंगन में चिता बना ली और लकड़ी रगड़कर अग्नि प्रज्वलित की और अपनी मां का अंतिम दाह-संस्कार कर दिया।

शंकराचार्य योगबल से अपनी माता के समीप पहुंचे थे। यह समाचार वायु वेग की तरह चारों ओर फैल गया।

'अंतिम समय उन्होंने तप साधना बल से अपनी मां को उनके इष्ट के दर्शन कराए।'

'वही तेजस्वी संन्यासी अपनी मां का अंतिम संस्कार करने को अपने जाति-बंधुओं से सहयोग मांग रहा था।'

'अरे भाई सहयोग देंगे ऐसे पाखंडी, उन्होंने संन्यासी शंकर को ऐसी खरी-खोटी सुनाई, ऐसे समय में उनका ऐसा दुर्व्यवहार देखकर हमारी गरदन भी लज्जा से झुक गई।'

'ग्रामवासी आपस में वार्तालाप करते हुए शंकराचार्य के जाति बंधओं को धिक्कार रहे थे और उत्सुकता से उनके निवास-स्थल पर जाकर उनके दर्शन कर अपने को धन्य मान रहे थे।

शंकराचार्य के साथ उनके सम्बंधियों, जाति भाइयों के दुर्व्यवहार की सूचना उस देश के राजा राजशेखर के पास पहुंची।

राजा राजशेखर शंकराचार्य को उस समय से जानते थे, जब आलवाई नदी, कालाड़ी ग्राम के पास प्रवाहित हुई थी।

ग्रामवासी शंकर की शक्ति दिव्य शक्ति का ही प्रभाव मानते थे। उस समय शंकर सात वर्ष के थे।

राजा राजशेखर बाल शंकर की प्रतिभा पर मुग्ध हो गए थे। जब संन्यासी बनकर चले गए थे तब भी समय-समय पर शंकराचार्य की प्रतिभा, विद्वत्ता, अलौलिक घटनाओं के समाचार राजा राजशेखर को मिलते रहते थे।

सूत्रभाष्य-रचना, दिग्विजय, शृंगेरी में मठ स्थापन आदि, शंकराचार्य के असाधारण कार्यों की सूचना भी राजा राजशेखर को मिल चुकी थी।

ऐसे महान तेजस्वी प्रतिभाशाली संन्यासी का उनके ही जाति-बुंधओं ने अपमान किया! सुनते ही राजा राजशेखर अपने कर्मचारी, दरबारी, मंत्रियों सहित शंकराचार्य के दर्शन के लिए उनके निवास-स्थल पर पहुंचे।

शंकराचार्य ने आदर से आसन देकर उन्हें बिठाया।

राजा राजशेखर तेजस्वी संन्यासी शंकराचार्य के दर्शन करके अधिक ही प्रसन्न हुए। और कहने लगे, 'मैंने सुना है, आपके जाति-बंधुओं ने आपके साथ दुर्व्यवहार किया है। मैं उन्हें दंड दूंगा।'

'राजन् उन्होंने जो व्यवहार किया मैं उससे दुखी नहीं हूं', शंकराचार्य ने उस

समय की घटना सुनाते हुए कहा, 'मां ने मुझे अंतिम संस्कार के लिए कहा था। मैंने उनकी इच्छा पूर्ण कर दी। मेरी मां की यह भी अंतिम इच्छा थी कि उसकी बूढ़ी दासी और निर्धन जाति-बंधु, जिन्होंने उनकी सेवा की थी, मां की सम्पत्ति उन्हें दे दी जाए। बस आप उसका प्रबंध करा दें।'

'यतीवर! आपके प्रति आपके जाति-भाइयों ने अच्छा व्यवहार नहीं किया, वह दंड के भागी हैं। ब्राह्मण हैं उन्हें और दंड नहीं दे सकता, अपने राज्य से ही उन्हें निकाल दूंगा।' कहते हुए राजा अपने भवन में पहुंच गया, उसने अपने कर्मचारियों द्वारा ब्राह्मणों को देश-निकाले की आज्ञा भिजवा दी।

ब्राह्मणों को अब शंकराचार्य के प्रति किए व्यवहार पर दुख हुआ। रोते-बिलखते वह राजदरबार में पहुंचे और अपने व्यवहार की क्षमा मांगने लगे।

राजा ने शंकराचार्य से क्षमा मांगने की उन्हें आज्ञा दी।

आंखों में आंसू भरे सिर झुकाए हुए वह शंकराचार्य के समीप क्षमा मांगने के लिए आए।

'मेरे प्रति आपने कोई अपराध नहीं किया, मुझे आपके व्यवहार का दुख नहीं, भगवान से क्षमा मांगो वही आप सबको क्षमा करेंगे।' शंकराचार्य ने नम्रता से कहा।

शंकराचार्य की उदारता, दया, क्षमा देखकर उनके जाति-बंधु लज्जित होकर उनके चरणों में झुक गए।

राजा ने भी उन्हें क्षमा करके शंकराचार्य की इच्छानुसार उनकी सम्पत्ति बूढ़ी दासी और निर्धन जाति बंधु को दे दी। शंकराचार्य के निवास और भोजन की व्यवस्था राजा राजशेखर ने कर दी।

# 35

राजा राजशेखर धार्मिक प्रकृति के न्यायप्रिय राजा थे। शंकराचार्य के दिव्य चरित्र और संयमी जीवन का उन पर अधिक ही प्रभाव पड़ा। उन्होंने शंकराचार्य से दीक्षा लेकर उनका शिष्य बनने का अनुरोध किया।

शंकराचार्य ने स्वीकार कर लिया और शुभ दिन देखकर उन्हें दीक्षा देकर अपना शिष्य बना लिया।

केरल देश में उस समय सामाजिक परिस्थिति अच्छी नहीं थी। राजा राजशेखर अधिक दिनों से उसके विषय में सोच रहे थे।

शंकराचार्य के आने से उन्हें प्रसन्नता हुई, संभव है आचार्य ही ऐसा कार्यक्रम बनाएं जिससे सामाजिक परिवर्तन होकर सामाजिक कुरीतियां दूर हो सकें।

प्रातःकाल ही राजा राजशेखर शंकराचार्य के दर्शन करने आते थे। शंकराचार्य उन्हें सद्उपदेश देते, शास्त्र व्याख्या कर समझाते, उनके प्रश्नों का उत्तर देकर समाधान करते। राजा गुरुदेव की चरण वंदना करके चले जाते।

अभी सूर्य घने वृक्षों के समूह से अपनी सुनहरी किरणें बिखेरता पृथ्वी-तल का अंधकार हरता हुआ, धीरे-धीरे आकाश से झांक रहा था।

शंकराचार्य अपने आवश्यक नित्यकर्मों से निबटकर आसन पर बैठे थे। तभी राजा राजशेखर ने आकर उनकी चरण वंदना की।

शंकराचार्य ने आशीर्वाद देते हुए उनकी ओर देखते हुए कहा, 'राजन! ऐसा लगता है किसी विषय की चिंता में ग्रस्त हो, मुझे बताओ संभव है मैं उसका कुछ समाधान कर दूं।'

'आचार्य! केरल देश में सामाजिक परिस्थिति ठीक नहीं, इसका मुझे अधिक दुख है, आप इसका उपचार करें।'

राजा राजशेखर ने शंकराचार्य के सामने नम्रता से झुकते हुए कहा, 'केरल की सामाजिक अवस्था आप भली प्रकार जानते हैं। समाज संस्कार निर्देशक निबंध लिख दें, उसे समाज में परिवर्तन के लिए प्रयोग करूं। जिससे मनुष्यों का कल्याण हो, ऐसा साधन बताइएं।'

'राजन! मैं एक संक्षिप्त धर्म संहिता लिख दूंगा।' राजशेखर को सांत्वना देते हुए शंकराचार्य ने कहा, 'आप सब मिलकर उसके गुण-दोष का विचार करके समाज में प्रचलित करिए, उसी से देश का कल्याण होगा।'

राजा ने एक लिपिक नियुक्त कर दिया। आचार्य स्मृति की विधियां लिपिक को बताते, लिपिक उन्हें लिपिबद्ध कर लेता।

इस प्रकार चौंसठ अनुशासन लिखित एक स्मृति ग्रंथ तैयार हो गया।

शंकराचार्य ने राजा राजशेखर को पढ़ने के लिए दे दिया। राजा ने ग्रंथ पढ़ा, उसे पढ़कर उन्हें अधिक ही हर्ष हुआ। उस ग्रंथ का नाम 'शंकर-स्मृति' रख दिया।

फिर स्मृति ग्रंथ के गुण-दोष की आलोचना के लिए राजा ने एक बड़ी सभा का आयोजन किया।

समाज के प्रमुख स्थानीय ब्राह्मणों को बुलाया गया, अनेक नामपुद्रि (नम्बूदरी) पंडित और ब्राह्मण उस सभा में सम्मिलित हुए। 'शंकर-स्मृति' के नियमों का पाठ पढ़कर सुनाया गया।

ब्राह्मण 'शंकर-स्मृति' सुनकर आपस में कहने लगे, 'शंकराचार्य लिखित सभी नियम शास्त्रविरुद्ध हैं। यह समाज को लाभ नहीं पहुंचा सकते।'

'ठीक है, आपका मत यदि मान भी लिया जाए, तो आप उस शास्त्र को मुझे दिखाएंगे, जिससे यह ज्ञात हो जाए, 'शंकर-स्मृति' में लिखित नियम, शास्त्रविरुद्ध हैं।' शंकराचार्य ने ब्राह्मण पंडितों को शास्त्रार्थ के लिए कहा।

'आचार्य का शास्त्रज्ञान अधिक है। उनकी प्रतिभा के सामने खड़े होने का साहस किसमें है।'

दर्शक आपस में पंडितों को संकेत से दिखाते हुए कहने लगे, 'जिनके मंडन मिश्र जैसे मीमांसक शिष्य बन गए, उन संन्यासी शंकराचार्य से यह विजयी होंगे।'

'अजी हारकर अपना मुंह छिपाते फिरेंगे। आचार्य के शिष्य ही इतने विद्वान हैं। कई धर्म के ठेकेदारों को ही उन्होंने शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया था।'

'हम दर्शक हैं, श्रोता हैं, इन विद्वानों की विद्वत्ता के विषय में हम क्या जान सकते हैं।'

'तुम चुप रहो जी, तुम क्या जानो, शास्त्र में क्या लिखा है, तुम्हारे लिए तो

अज्ञानी- ज्ञानी सभी बराबर हैं।'

'तुम बड़े विद्वानों की दुम बने फिरते हो, पोथी पत्रा बगल में दबाए हम जैसों के द्वार-द्वार पर घूमते हो, तब अपनी गृहस्थी चला रहे हो।'

'अजी हम जानते हैं यह कैसे पंडित हैं पोल न खुलवाओ, सत्तर चूहे खाए बिलाई हज को चली, यह कहावत इन पंडितजी पर ठीक बैठती है।'

'चुप! शांत हो, कैसा कोलाहल मचा रहे हो, इतने बड़े विद्वानों की सभा है और कोलाहल अज्ञानी मूढ़ों जैसा कर रहे हो।'

सभापति ने खड़े होकर सभी श्रोता दर्शकों को शांत रहने की प्रार्थना करते हुए कहा, 'आचार्य की प्रतिभा, शास्त्रज्ञान, तर्कशक्ति का लोहा सभी मानते हैं।'

'पर पंडित शास्त्रार्थ में अपनी पराजय स्वीकार नहीं कर रहे हैं।'

केरल के दो प्रांतों में सभा का आयोजन किया जाएगा। पचास-पचास मील का अंतर दोनों प्रांतों में है।

'दोनों सभाओं में आचार्य को शास्त्रार्थ के लिए सम्मिलित होना होगा।' पंडित ब्राह्मणों ने सभापति के बैठते ही उठकर कहा, 'आचार्य यदि शास्त्रार्थ में दोनों सभाओं के प्रतिनिधियों को पराजित कर देंगे तब हम सब उनकी स्मृति को मान लेंगे।'

'पचास मील के अंतर में दो प्रांतों में दो सभाओं का आयोजन करके तुम सब आचार्य को छल-कपट द्वारा पराजित करना चाहते हो।'

शंकराचार्य के श्रद्धालु भक्तों ने ब्राह्मण पंडितों के प्रतिनिधियों की कूटनीति की निंदा करते हुए कोलाहल आरंभ कर दिया।

सभा समाप्त हुई। दो प्रांतों में दो सभा का एक दिन एक समय में ही आयोजन करना और उसमें शंकराचार्य को शास्त्रार्थ के लिए नियत समय पर ही पहुंचने के लिए कहना, श्रद्धालु भक्तों को, पंडितों का यह षड्यंत्र लग रहा था। वह एक-दूसरे से कह रहे थेः

'विद्वत्ता, प्रतिभा, शास्त्र ज्ञान से शंकराचार्य को हरा न सके, अब यह अटपटी चाल रखकर आचार्य से विजयी होना चाहते हैं।'

'पंडितों की इस समय कीर्ति का प्रश्न तो है ही भाई, धन की हानि भी हो जाएगी', आचार्य के भक्त ने अपने साथी की ओर देखते हुए कहा, 'दूसरों को सत्य पालन और धर्म की शिक्षा यही पंडित ब्राह्मण देते हैं।'

'और जब अपने स्वार्थ की हानि होते देखते हैं—तब सब सत्य, धर्म की वार्ता भूल जाते हैं', अपने साथी की बात काटते हुए तीसरे श्रद्धालु ने कहा, 'पर स्मरण रखो सत्य की ही विजय होती है। आचार्य विजयी होंगे।'

'तुम भी क्या सोचकर यह बात कर रहे हो भाई, शास्त्रार्थ-स्थल पृथक-पृथक प्रांतों में हैं। पचास-पचास मील का अंतर है।'

'अजी योग शक्ति की परीक्षा है श्रीमान् देखना आचार्य विजयी होंगे, कपटी पंडितों को पराजय का मुंह देखना होगा।'

'देखो भाई यह तो समय पर ही ज्ञात होगा, विजय किसकी होगी।'

'तुम तो निराशवादी हो भाई कभी सफलता की बात सोच ही नहीं सकते, हमने आचार्य की अलौकिक घटनाओं की चर्चा सुनी है।'

'अजी हमें विश्वास है योगबल अनूठी अलौकिक शक्ति वाले आचार्य शास्त्रार्थ में विजयी होंगे।'

राजा राजशेखर पंडितों का यह षड्यंत्र समझ गए और उदास होकर आचार्य के समीप आए।

आचार्य उस समय ध्यान अवस्था में थे। राजा अपने गुरु के चरणों के समीप चुपचाप बैठ गए।

थोड़ी देर में ही शंकराचार्य ने नेत्र खोले, राजा को अपने चरणों के समीप उदास बैठा हुआ देखकर मुस्कराते हुए बोले, 'राजन! मैंने पंडितों का दोनों स्थानों का शास्त्रार्थ स्वीकार कर लिया है। तुम चिंता न करो, ब्राह्मण मेरी अलौकिक शक्ति की परीक्षा लेना चाहते हैं। मैं तैयार हूं।'

'यतीवर! गुरुदेव! सभा का आयोजन भी मुझे ही कराना होगा, यह षड्यंत्र आपको पराजित करने के लिए रचा गया है यह भी जानता हूं, पर यहां ब्राह्मण पंडितों का इतना प्रभाव है। उनके कार्यों में मैं बाधा नहीं डाल सकता।'

'तुम निश्चिंत होकर अपना कार्य करो मैं दोनों सभा में जाकर नियत समय पर पंडित ब्राह्मणों से शास्त्रार्थ करूंगा।'

शंकराचार्य ने अपने शिष्य राजा राजशेखर को समझाकर उसके निवास-स्थल पर भेज दिया।

राजा राजशेखर शंकराचार्य की अलौकिक शक्ति की घटनाएं सुन चुके थे। फिर भी उनका मन यह निश्चय नहीं कर सका था।

एक समय में दोनों स्थानों में आचार्य किस प्रकार भाग लेंगे। असंभव प्रतीत होता है।

सभा के आयोजन का कार्य राजा राजशेखर को ही करना था। अपने कर्मचारियों को भेजकर राजा राजशेखर ने सभा का सुचारु रूप से प्रबंध करवा दिया।

अज्ञानी- ज्ञानी सभी बराबर हैं।'

'तुम बड़े विद्वानों की दुम बने फिरते हो, पोथी पत्रा बगल में दबाए हम जैसों के द्वार-द्वार पर घूमते हो, तब अपनी गृहस्थी चला रहे हो।'

'अजी हम जानते हैं यह कैसे पंडित हैं पोल न खुलवाओ, सत्तर चूहे खाए बिलाई हज को चली, यह कहावत इन पंडितजी पर ठीक बैठती है।'

'चुप! शांत हो, कैसा कोलाहल मचा रहे हो, इतने बड़े विद्वानों की सभा है और कोलाहल अज्ञानी मूढ़ों जैसा कर रहे हो।'

सभापति ने खड़े होकर सभी श्रोता दर्शकों को शांत रहने की प्रार्थना करते हुए कहा, 'आचार्य की प्रतिभा, शास्त्रज्ञान, तर्कशक्ति का लोहा सभी मानते हैं।'

'पर पंडित शास्त्रार्थ में अपनी पराजय स्वीकार नहीं कर रहे हैं।'

केरल के दो प्रांतों में सभा का आयोजन किया जाएगा। पचास-पचास मील का अंतर दोनों प्रांतों में है।

'दोनों सभाओं में आचार्य को शास्त्रार्थ के लिए सम्मिलित होना होगा।' पंडित ब्राह्मणों ने सभापति के बैठते ही उठकर कहा, 'आचार्य यदि शास्त्रार्थ में दोनों सभाओं के प्रतिनिधियों को पराजित कर देंगे तब हम सब उनकी स्मृति को मान लेंगे।'

'पचास मील के अंतर में दो प्रांतों में दो सभाओं का आयोजन करके तुम सब आचार्य को छल-कपट द्वारा पराजित करना चाहते हो।'

शंकराचार्य के श्रद्धालु भक्तों ने ब्राह्मण पंडितों के प्रतिनिधियों की कूटनीति की निंदा करते हुए कोलाहल आरंभ कर दिया।

सभा समाप्त हुई। दो प्रांतों में दो सभा का एक दिन एक समय में ही आयोजन करना और उसमें शंकराचार्य को शास्त्रार्थ के लिए नियत समय पर ही पहुंचने के लिए कहना, श्रद्धालु भक्तों को, पंडितों का यह षड्यंत्र लग रहा था। वह एक-दूसरे से कह रहे थेः

'विद्वत्ता, प्रतिभा, शास्त्र ज्ञान से शंकराचार्य को हरा न सके, अब यह अटपटी चाल रखकर आचार्य से विजयी होना चाहते हैं।'

'पंडितों की इस समय कीर्ति का प्रश्न तो है ही भाई, धन की हानि भी हो जाएगी', आचार्य के भक्त ने अपने साथी की ओर देखते हुए कहा, 'दूसरों को सत्य पालन और धर्म की शिक्षा यही पंडित ब्राह्मण देते हैं।'

'और जब अपने स्वार्थ की हानि होते देखते हैं—तब सब सत्य, धर्म की वार्ता भूल जाते हैं', अपने साथी की बात काटते हुए तीसरे श्रद्धालु ने कहा, 'पर स्मरण रखो सत्य की ही विजय होती है। आचार्य विजयी होंगे।'

'तुम भी क्या सोचकर यह बात कर रहे हो भाई, शास्त्रार्थ-स्थल पृथक-पृथक प्रांतों में हैं। पचास-पचास मील का अंतर है।'

'अजी योग शक्ति की परीक्षा है श्रीमान् देखना आचार्य विजयी होंगे, कपटी पंडितों को पराजय का मुंह देखना होगा।'

'देखो भाई यह तो समय पर ही ज्ञात होगा, विजय किसकी होगी।'

'तुम तो निराशवादी हो भाई कभी सफलता की बात सोच ही नहीं सकते, हमने आचार्य की अलौकिक घटनाओं की चर्चा सुनी है।'

'अजी हमें विश्वास है योगबल अनूठी अलौकिक शक्ति वाले आचार्य शास्त्रार्थ में विजयी होंगे।'

राजा राजशेखर पंडितों का यह षड्यंत्र समझ गए और उदास होकर आचार्य के समीप आए।

आचार्य उस समय ध्यान अवस्था में थे। राजा अपने गुरु के चरणों के समीप चुपचाप बैठ गए।

थोड़ी देर में ही शंकराचार्य ने नेत्र खोले, राजा को अपने चरणों के समीप उदास बैठा हुआ देखकर मुस्कराते हुए बोले, 'राजन! मैंने पंडितों का दोनों स्थानों का शास्त्रार्थ स्वीकार कर लिया है। तुम चिंता न करो, ब्राह्मण मेरी अलौकिक शक्ति की परीक्षा लेना चाहते हैं। मैं तैयार हूं।'

'यतीवर! गुरुदेव! सभा का आयोजन भी मुझे ही कराना होगा, यह षड्यंत्र आपको पराजित करने के लिए रचा गया है यह भी जानता हूं, पर यहां ब्राह्मण पंडितों का इतना प्रभाव है। उनके कार्यों में मैं बाधा नहीं डाल सकता।'

'तुम निश्चिंत होकर अपना कार्य करो मैं दोनों सभा में जाकर नियत समय पर पंडित ब्राह्मणों से शास्त्रार्थ करूंगा।'

शंकराचार्य ने अपने शिष्य राजा राजशेखर को समझाकर उसके निवास-स्थल पर भेज दिया।

राजा राजशेखर शंकराचार्य की अलौकिक शक्ति की घटनाएं सुन चुके थे। फिर भी उनका मन यह निश्चय नहीं कर सका था।

एक समय में दोनों स्थानों में आचार्य किस प्रकार भाग लेंगे। असंभव प्रतीत होता है।

सभा के आयोजन का कार्य राजा राजशेखर को ही करना था। अपने कर्मचारियों को भेजकर राजा राजशेखर ने सभा का सुचारु रूप से प्रबंध करवा दिया।

# 36

राजा राजशेखर ने एक विराट सभा का आयोजन करवा दिया। नियत समय पर पंडितों ने राजा को ही सभापति बनाया।

श्रद्धालु दर्शक श्रोताओं की शास्त्रार्थ-स्थल पर इतनी भीड़ एकत्र हो गई कि कहीं रिक्त स्थान नहीं दिखाई दे रहा था।

एक ओर ब्राह्मण पंडितों के विद्वान अपने सहयोगियों के साथ बैठे थे।

दूसरी ओर शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित अपने आसन पर विराजमान थे।

तप साधना संयम से उनके मुख पर अनूठा ही तेज छा रहा था। दर्शक श्रोता मंत्रमुग्ध से उनकी ओर देखे जा रहे थे।

राजा ने पंडित ब्राह्मणों के प्रतिनिधियों को शास्त्रार्थ आरंभ करने की अनुमति दी।

शास्त्रार्थ आरंभ हुआ, ब्राह्मण पंडितों ने 'शंकर-स्मृति' ग्रंथ को शास्त्रविरुद्ध तथा समाज के लिए हानिकर सिद्ध करने का यत्न किया।

शंकराचार्य ने उन सब के तर्कों का समुचित उत्तर देकर सिद्ध कर दिया, जो स्मृति में विधान दिया है वह वेद-पुराणादि शास्त्रों में वर्णित है।

चारों वेदों के ज्ञाता, सभी दर्शनों के निपुण पंडित, प्रतिभाशाली शंकराचार्य से सहस्रों शास्त्रीय युक्तिपूर्ण प्रमाण सुनकर ब्राह्मण पंडित आश्चर्य से उनकी ओर देखते रह गए।

उन्हें कोई तर्कपूर्ण प्रमाण नहीं मिल सका, चुपचाप सिर झुका लिया। श्रोता दर्शक हर्ष में भरकर शंकराचार्य का जयघोष करने लगे। पर ब्राह्मण अभी अपनी पराजय स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। उन्हें आशा थी शंकराचार्य इस सभा में शास्त्रार्थ में लगे हुए हैं।

दूसरे प्रांत की सभा में जाने का, शास्त्रार्थ करने का, समय निकल जाएगा। फिर विजय हमारी ही होगी।

पराजित हुए ब्राह्मण पंडित दूसरी सभा का समाचार जानने को उत्सुक थे। उन्हें पूर्ण विश्वास था।

दूसरी सभा में उपस्थित होने का अवसर शंकराचार्य को नहीं मिला, फिर शास्त्रार्थ में कैसे भाग लेंगे।

ब्राह्मण पंडित बैठे हुए दूसरी सभा का समाचार ज्ञात करने को उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे।

तभी घोड़ा दौड़ाता हुआ ब्राह्मण, पंडितों का सहयोगी उनके समीप आया, सभी ब्राह्मण दूसरी सभा का समाचार जानने को उसके समीप आए।

'उस सभा में शंकराचार्य ने हमारे प्रतिनिधि विद्वान पंडितों को पराजित कर दिया।'

ब्राह्मणों के सहयोगी ने अपने धड़कते हृदय पर हाथ रखते हुए कहा, 'इस सभा में तो वह उपस्थित न हो सके होंगे। शास्त्रार्थ नहीं हुआ होगा, यहां तो हम ही विजयी हुए होंगे। यह शुभ सूचना लेने के लिए मुझे विद्वान पंडितों ने यहां भेजा है।'

'यहां तो हम सब शंकराचार्य से पराजित हो गए।' ब्राह्मण पंडितों ने अपने सहयोगी सूचना लाने वाले से कहा, 'शंकराचार्य ने इस सभा में हम सब से शास्त्रार्थ किया। स्मृति में जो उन्होंने विधान दिया है, उन्होंने सिद्ध किया, वह वेद-पुराणादि शास्त्रों से अनुमोदित है।'

'निस्संदेह क्या वह प्रमाणित हो गया।' पंडितों का सहयोगी आश्चर्य में भरकर बोला, 'मैं दूसरी सभा में भाग ले रहा था। वहां शंकराचार्य ने अपने अकाट्य युक्तिपूर्ण तर्कों द्वारा शास्त्रार्थ में ब्राह्मण पंडितों को पराजित कर दिया।

'वह तो इस सभा में शास्त्रार्थ कर रहे थे—कोई छलिया वेश बदलकर उस सभा में पहुंच गया होगा।'

पंडितों ने अपने सहयोगी की ओर देखते हुए कहा, 'क्या सचमुच तुम्हें दृष्टिभ्रम नहीं हुआ।'

'यहीं बात मैं आपसे पूछूं, क्या सचमुच आपको तो दृष्टिभ्रम नहीं हुआ, तब आप क्या उत्तर देंगे?' पंडितों के सहयोगी ने लम्बी सांस लेते हुए कहा।

'वहां के पंडित समझ रहे हैं शंकराचार्य हमारी सभा में शास्त्रार्थ कर रहे थे और आप सब समझ रहे हैं आपकी सभा में शंकराचार्य ने शास्त्रार्थ करके आप सबको पराजित कर दिया।'

'महान महामानव देव अंश शंकराचार्य से आप सब विजयी नहीं हो सकते, चाहे कितने ही षड्यंत्र कर लें।

शंकराचार्य के शिष्य ने मुस्कराकर पंडितों के सहयोगी की ओर देखते हुए कहा, 'वह अलौकिक शक्तियों के अधिकारी हैं श्रीमान्।'

'हम सबको उनके सामने नतमस्तक होना ही पड़ेगा', ब्राह्मण पंडितों के सहयोगी ने अपना घोड़ा वापस दूसरे सभा स्थल की ओर मोड़ते हुए कहा, 'कैसा अलौकिक चमत्कार हुआ, शंकराचार्य दोनों सभा में शास्त्रार्थ करके सभी को पराजित कर गए।

'अब तो उस अलौकिक शक्ति के अधिकारी यतीवर के सामने केरल के ब्राह्मण पंडितों को सिर झुकाना ही पड़ेगा।'

शंकराचार्य के श्रद्धालु भक्त ने पंडित ब्राह्मणों की ओर देखते हुए कहा, 'और समाज में शंकर-स्मृति का विधान प्रचलित करने में आप सबको सहयोग देना ही होगा।'

शंकराचार्य के श्रद्धालु भक्त शंकराचार्य का जयघोष करते हुए चले गए।

केरल के ब्राह्मण पंडित सिर झुकाए, यह सोचते अपने निवास-स्थल पर चल गए—

दैवी शक्ति के सामने मनुष्य की शक्ति क्या विजयी होगी।

राजा राजशेखर अलौकिक शक्ति के अधिकारी वेद शास्त्रों के ज्ञाता प्रतिभाशाली अपने गुरु शंकराचार्य के चरणों में झुक गया।

'गुरुदेव! आपने स्मृति का विधान प्रचलित करवाकर सामाजिक सुधार का आधा भार हल्का कर दिया। किन शब्दों से आपको धन्यवाद दूं। ऐसे शब्द ही नहीं मिलते।'

'राजन! कहते हो भार हल्का हो गया चिंता दूर हुई, पर मुख पर अब भी पहले जैसी मुस्कराहट नहीं।'

राजा राजशेखर के सिर पर प्यार से हाथ फेरते शंकराचार्य ने कहा, 'चिंता का अब क्या कारण है? आजकल साहित्य में रुचि नहीं ले रहे, कोई नई पुस्तक लिखी है।'

'गुरुदेव! अब क्या साहित्य में रुचि लूं। मेरे अपने लिखे 'बालभारत', 'बालरामायण' आदि तीन नाटक जो संस्कृत में लिखे थे आपको अधिक समय हुआ सुनाए भी थे....।'

'हां याद है उस समय हमारी सात वर्ष की आयु थी। उन नाटकों में हमने

कुछ संशोधन भी कराया था', शंकराचार्य ने मुस्कराते हुए कहा, अब वह नाटक कहां हैं?'

'मेरे लिखित नाटक एक अग्निकांड में भस्म हो गए', लम्बी सांस लेते हुए राजा ने कहा, 'उससे हृदय में इतनी ठेस पहुंची, अब कुछ लिखने को मन नहीं चाहता।'

'राजन! वह तीनों नाटक तो मुझे भी अच्छे लगे थे, तुमने उस समय मुझे पढ़कर सुनाया था। मुझे अब भी आदि से अंत तक वह नाटक याद हैं, स्मरण हैं। यदि उनके लिए ही तुम उदास रहते हो तो लिपिक को बुलवाओ, मैं उसे लिखवा दूंगा।'

'गुरुदेव! आपको वह नाटक अभी तक स्मरण हैं', आश्चर्य से शंकराचार्य की ओर देखते हुए राजा राजशेखर ने कहा, 'मैं अभी लिपिक को बुलवाता हूं, आप उसे लिखवा दीजिए।'

लिपिक आ गया, शंकराचार्य बोलते गए वह लिखता गया। इसी प्रकार अवकाश के समय शंकराचार्य ने थोड़े दिनों में ही उन सुने हुए तीनों नाटकों को लिपिक को लिखवा दिया।

उन नाटकों को पढ़कर राजा राजशेखर के हर्ष का ठिकाना न रहा।

जैसे नाटक राजा राजशेखर ने लिखे थे, वैसे ही आचार्य शंकर ने लिपिक को बोलकर लिखवा दिए थे।

आश्चर्य, आनंद से भरकर राजा राजशेखर ने अपने गुरुदेव के चरणों की वंदना करते हुए उनकी चरण धूलि मस्तक से लगा ली।

'मेरा कोई शुभ कर्म ही था गुरुदेव, जो आप जैसे शास्त्रज्ञाता प्रतिभाशाली देवअंश महान-मानव के दर्शन हुए। मुझे शिष्य बनने का सौभाग्य मिला।'

शंकराचार्य की अलौकिक स्मरणशक्ति की चर्चा चारों ओर फैल गई।

केरल के निवासी शंकराचार्य के दर्शन करके उनसे सदुपदेश सुनकर अपने भाग्य की सराहना करने लगे।

हमारे पूर्व कर्मों का ही यह फल है जो ऐसे महान मानव के दर्शन करने का सौभाग्य मिला। केरल निवासी अपने भाग्य की सराहना करते थे।

शंकराचार्य वापस शृंगेरी जाना चाहते थे। पर राजा राजशेखर के बार-बार अनुरोध पर वह थोड़े दिन केरल ही ठहर गए और शृंगेरी के शिष्यों को सूचना भिजवाई—धर्म-प्रचार के कार्य के लिए केरल वापस आ जाएं।

शृंगेरी में द्रुतगति से यह समाचार फैल गया : शंकराचार्य के शिष्य अपने गुरु शंकराचार्य के पास केरल प्रांत जा रहे हैं।

# 37

शंकराचार्य धर्म पुनर्स्थापना का व्रत लेकर पदयात्रा के लिए तैयारी कर रहे थे।

अनेक श्रद्धालु भक्त धर्मप्रेमी उस पदयात्रा में सम्मिलित होने के लिए आ रहे थे।

राजा राजशेखर भी अपने गुरु के साथ पदयात्रा के लिए तैयार हो गए। उनके कई श्रद्धालु कर्मचारी भी पदयात्रा के लिए उनके साथ चलने की तैयारी करने लगे।

शृंगेरी से शंकराचार्य के शिष्य भी पदयात्रा में सम्मिलित होने के लिए पहुंच गए।

एक शुभ मुहूर्त में आचार्य शंकर अपने श्रद्धालु शिष्यों, भक्तों, राजा राजशेखर, उनके कई कर्मचारियों सहित, धर्म संस्थापन के महान व्रत को लेकर चल पड़े।

सबसे प्रथम वह केरल के उन स्थानों में गए जहां देव-मंदिर जीर्ण अवस्था में थे।

जीर्ण देवालयों का फिर से जीर्णोद्धार करके वह आगे बढ़े।

प्रातःकाल सब एक स्थान पर एकत्र होते, अपने आवश्यक कार्यों से निपटकर, वहां श्रद्धालु भक्तों को शंकराचार्य शास्त्र व्याख्या आदि के द्वारा, वेदांत की ब्रह्मात्मविद्या का प्रचार करते। उपदेश देते।

फिर रात्रि विश्राम करके, आगे की ओर चल पड़ते। कई दिन इसी प्रकार लगातार चलते हुए शंकराचार्य अपने शिष्यों, श्रद्धालु भक्तों सहित केरल के मशहूर नामक तीर्थ पर आकर ठहरे।

प्रातःकाल देवता की अर्चना-पूजा करके स्नान आदि द्वारा धर्म-चर्चा कर रहे थे। तभी किसी ने आकर सूचना दी, पद्मपाद अपने शिष्यों सहित इसी ओर आ रहे हैं।

'पद्मपाद आ रहे हैं', सुनते ही शंकराचार्य के शिष्य प्रसन्न हो गए और उत्सुकता से पद्मपाद की प्रतीक्षा करने लगे।

पद्मपाद अपने गुरु शंकराचार्य को वहां आसन पर बैठे देखकर प्रसन्नता से भर गया। उसने आगे बढ़कर अपने गुरु की चरण-वंदना की और उनके चरणों से लिपट गया।

'पद्मपाद तीर्थयात्रा कर आए', शंकराचार्य ने पद्मपाद के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, 'इतने दुर्बल कैसे हो गए, क्या कोई रोग हो गया?'

'गुरुदेव! आपसे बिछुड़कर मुझे एक पल भी शांति नहीं मिली, मामा से मिलने गया था, वहां अपनी प्रिय रचना विजयडिंडिम को ही खो बैठा।' रोते हुए पद्मपाद ने अपनी तीर्थयात्रा की और मामा द्वारा ग्रंथ को नष्ट करने की घटना सुनाते हुए कहा, 'मामा ने मुझे ईर्ष्यावश मृत्यु की गोद में सुलाने का भी यत्न किया था।'

'श्रद्धालु शिष्यों के उपचार-सेवा से मैं इधर आपके दर्शनों को आ सका हूं। मेरा मस्तक विकृत हो चुका, सभी प्रतिभा नष्ट हो गई। विजयडिंडिम जैसी रचना के नष्ट होने से तो हृदय को अधिक आघात पहुंचा है। अब वैसी रचना न कर सकूंगा।'

'वृथा शोक न करो पद्मपाद!' अपने शिष्य को सांत्वना देते हुए, प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए शंकराचार्य ने कहा, 'भाष्य की टीका नष्ट हो गई, उसके लिए क्या शोक करना, तुम्हें यह ज्ञात है, सारा जगत माया है, नष्ट होने वाला।'

'जानता हूं गुरुदेव, एक ब्रह्म ही सत्य है और सब छलावा है। किसी वस्तु के नष्ट होने पर हमें शोक नहीं करना चाहिए। यह सब ज्ञात होते हुए भी मुझे न जाने क्यों 'विजयडिंडिम' के नष्ट होने का दुख है।'

'तुम दुखी न हो पद्मपाद, शृंगेरी में निवास के समय तुमने जो टीका की रचना करके मुझे सुनाई थी वह मुझे अभी तक स्मरण है, तुम्हें बताता जाऊंगा तुम लिख लेना।'

पद्मपाद गुरु के दर्शन करके स्वास्थ्य लाभ कर चुका था। टीका फिर से लिखी जाएगी, सुनकर अधिक ही प्रसन्न हुआ। थोड़े दिनों पश्चात ब्रह्मसूत्र के प्रथम चार सूत्रों की टीका आचार्य ने अपने शिष्य पद्मपाद को लिखवा दी।

पद्मपाद प्रसन्न होकर गुरु चरणों से लिपट गया। 'गुरुदेव! आपने वैसी ही ब्रह्मसूत्र के प्रथम चार सूत्रों की टीका लिखवा दी, जैसी मैंने पहले लिखी थी।'

'अब तुम स्वस्थ हो, अपना पहले जैसा ही कार्य संभालो', शंकराचार्य ने पद्मपाद को आशीर्वाद देते हुए प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरा।

पद्मपाद को अनुभव हुआ, जैसे मानसिक जड़ता, शोक दूर हो गए। शरीर मन, स्वस्थ हल्का हो गया।

पद्मपाद के शिष्य अपने गुरु को स्वस्थ प्रसन्न देखकर, अधिक ही प्रसन्न हुए और वह शंकराचार्य के साथ धर्मप्रचार की पदयात्रा के लिए तैयार हो गए।

शंकराचार्य के साधना तप, अलौकिक कार्यों को देखकर, सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के प्रयत्न देखकर, कई धर्मप्रेमी समाज-सुधारक न्यायप्रिय राजा, शंकराचार्य के शिष्य बन गए थे। कर्नाटक-उज्जयिनी के राजा सुधंवां तो तेजस्वी शंकराचार्य के शिष्य बनकर उनके धर्म-प्रचार कार्यों में सहयोग देने लगे थे।

आचार्य की धर्म-प्रचार पदयात्रा के विषय में सुनकर वह भी उस पदयात्रा में सम्मिलित होने के लिए, अपने कई सेवक व कर्मचारियों सहित आ गए।

धर्म-प्रचार पदयात्रा में अनेक विद्वान ब्राह्मण, सहस्रों शंकराचार्य के शिष्य, ध्वजा पताका संभाले चल रहे थे।

श्रद्धालु, शंख, डमरू, मृदंग विभिन्न प्रकार के साजों के साथ वाद्ययंत्र बजाते हुए उस शोभायात्रा, धर्मयात्रा की शोभा बढ़ा रहे थे।

शिष्य, एक स्वर से वेद-पाठ करते हुए स्तोत्रों का गान करते हुए ओंकार-ध्वनि से चारों दिशाएं गुंजा रहे थे।

'दिग्विजयी शंकराचार्य शिष्यों श्रद्धालु भक्तों सहित पदयात्रा करते हुए इसी मार्ग से आगे जाएंगे', यह समाचार सुनते ही अनेक श्रद्धालु भक्त, समूह-के-समूह उनके दर्शन करने मार्ग के एक ओर एकत्र हो जाते और उन धर्मप्रचारक पदयात्रियों पर पुष्प वर्षा कर फल-फूल की भेंट चढ़ाकर जयघोष करते।

शंकराचार्य अपने शिष्यों श्रद्धालु भक्तों सहित जहां विश्राम करने के लिए ठहरते उस गांव के श्रद्धालु उनकी पूजा करके आरती करते, उनके चरणों की धूलि अपने मस्तक से लगाकर अपने को धन्य मानते।

एक ओर कर्नाटक उज्जयिनी के राजा सुधन्वा थे। दूसरी ओर केरल के राजा राजशेखर अपने दल-बल सहित धर्म-प्रचार पदयात्रा के साथ-साथ चल रहे थे। उनके बीच में तेजस्वी तरुण यती, शंकराचार्य दर्शनाथियों की ओर देखते धीरे-धीरे चलते हुए हाथ उठाकर, आशीर्वाद देते चल रहे थे।

धर्मप्रचार पदयात्री किसी देवालय के बाहर या वृक्षों की छाया में विश्राम करते। शंकराचार्य के दर्शन करने को श्रद्धालु मानवों की भीड़ एकत्र हो जाती।

शंकराचार्य उन्हें सद् उपदेश देते, शास्त्रव्याख्या करके समझाते, श्रद्धालु एकाग्रता से उनके उपदेश सुनते और अपने को धन्य मानते।

किसी स्थान में रात्रि को विश्राम करते, प्रातःकाल आवश्यक कार्यों से निपटकर, यह धर्म-प्रचार पदयात्री आगे की ओर चल पड़ते।

समय पर मार्ग में खड़े हुए श्रद्धालुओं को दर्शन देते, भक्तों को उपदेश देकर शास्त्र व्याख्या करके समझाते हुए शंकराचार्य रात्रि विश्राम करते, प्रातःकाल यात्रा आरंभ कर देते।

इसी प्रकार लगातार चलते-चलते शंकराचार्य प्रसिद्ध तीर्थ मध्यार्जुन में पहुंच गए।

मध्यार्जुन—शिव जाग्रत देवता हैं। शंकराचार्य ने अपने शिष्यों सहित उनके दर्शन कर पूजा की।

वहां ब्राह्मणों के ही अधिक निवास-स्थल थे। सभी ब्राह्मण विद्वान कर्म-कांडी थे।

श्रद्धालु भक्तों ने मंदिर के प्रांगण में एक विराट सभा का आयोजन किया।

सायंकाल की आरती-पूजा समाप्त होते ही श्रद्धालु दर्शकों श्रोताओं की भीड़, मंदिर के आंगन में शंकराचार्य के दर्शन करने, उनसे शास्त्र व्याख्या सुनने के लिए एकत्र हो गई।

शंकराचार्य ने अद्वैत-ब्रह्मात्मविज्ञान की युक्तिपूर्ण व्याख्या करके श्रोताओं को समझाया।

अद्वैतवाद श्रेष्ठ है श्रोता यह जान गए और कई श्रद्धालुओं ने अद्वैत मत ग्रहण करके शंकराचार्य का शिष्य बनने का निर्णय कर लिया।

इससे कुलपति ब्राह्मण क्षोभ से भर गए। दूसरे दिन फिर उसी स्थान पर सभा का आयोजन किया गया।

शंकराचार्य ऊंचे आसन पर पद्मासन लगाए बीच में बैठे थे। उनके चारों ओर उनके शिष्य बैठे थे। वह अपने शिष्यों को शास्त्र विषय में कुछ बता रहे थे।

तभी एक ब्राह्मण पंडित ने खड़े होकर शंकराचार्य से कहा, 'हे देव! आपकी युक्तिपूर्ण व्याख्या सुनकर हमें विश्वास हो गया है कि अद्वैत मत श्रेष्ठ है। पर हमारे मध्यार्जुन—शिव इष्ट जाग्रत देवता हैं। हम उनकी पूजा-उपासना करते हैं।'

'वह देवता आकाशवाणी द्वारा कहें, अद्वैत मत सत्य है, तो हम सब अद्वैत मत को ही ग्रहण कर लेंगे।'

पंडित की यह बात सुनकर सभा में सन्नाटा छा गया। शंकराचार्य थोड़ी देर आंखें मींचकर ध्यानमग्न हो गए। फिर अपने आसन से उठकर मंदिर के अंदर पहुंचे और मध्यार्जुन शिव के सामने घुटनों के बल बैठकर प्रार्थना करने लगे, सारी सभा

पद्मपाद को अनुभव हुआ, जैसे मानसिक जड़ता, शोक दूर हो गए। शरीर मन, स्वस्थ हल्का हो गया।

पद्मपाद के शिष्य अपने गुरु को स्वस्थ प्रसन्न देखकर, अधिक ही प्रसन्न हुए और वह शंकराचार्य के साथ धर्मप्रचार की पदयात्रा के लिए तैयार हो गए।

शंकराचार्य के साधना तप, अलौकिक कार्यों को देखकर, सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के प्रयत्न देखकर, कई धर्मप्रेमी समाज-सुधारक न्यायप्रिय राजा, शंकराचार्य के शिष्य बन गए थे। कर्नाटक-उज्जयिनी के राजा सुधंवां तो तेजस्वी शंकराचार्य के शिष्य बनकर उनके धर्म-प्रचार कार्यों में सहयोग देने लगे थे।

आचार्य की धर्म-प्रचार पदयात्रा के विषय में सुनकर वह भी उस पदयात्रा में सम्मिलित होने के लिए, अपने कई सेवक व कर्मचारियों सहित आ गए।

धर्म-प्रचार पदयात्रा में अनेक विद्वान ब्राह्मण, सहस्रों शंकराचार्य के शिष्य, ध्वजा पताका संभाले चल रहे थे।

श्रद्धालु, शंख, डमरू, मृदंग विभिन्न प्रकार के साजों के साथ वाद्ययंत्र बजाते हुए उस शोभायात्रा, धर्मयात्रा की शोभा बढ़ा रहे थे।

शिष्य, एक स्वर से वेद-पाठ करते हुए स्तोत्रों का गान करते हुए ओंकार-ध्वनि से चारों दिशाएं गुंजा रहे थे।

'दिग्विजयी शंकराचार्य शिष्यों श्रद्धालु भक्तों सहित पदयात्रा करते हुए इसी मार्ग से आगे जाएंगे', यह समाचार सुनते ही अनेक श्रद्धालु भक्त, समूह-के-समूह उनके दर्शन करने मार्ग के एक ओर एकत्र हो जाते और उन धर्मप्रचारक पदयात्रियों पर पुष्प वर्षा कर फल-फूल की भेंट चढ़ाकर जयघोष करते।

शंकराचार्य अपने शिष्यों श्रद्धालु भक्तों सहित जहां विश्राम करने के लिए ठहरते उस गांव के श्रद्धालु उनकी पूजा करके आरती करते, उनके चरणों की धूलि अपने मस्तक से लगाकर अपने को धन्य मानते।

एक ओर कर्नाटक उज्जयिनी के राजा सुधन्वा थे। दूसरी ओर केरल के राजा राजशेखर अपने दल-बल सहित धर्म-प्रचार पदयात्रा के साथ-साथ चल रहे थे। उनके बीच में तेजस्वी तरुण यती, शंकराचार्य दर्शनार्थियों की ओर देखते धीरे-धीरे चलते हुए हाथ उठाकर, आशीर्वाद देते चल रहे थे।

धर्मप्रचार पदयात्री किसी देवालय के बाहर या वृक्षों की छाया में विश्राम करते। शंकराचार्य के दर्शन करने को श्रद्धालु मानवों की भीड़ एकत्र हो जाती।

शंकराचार्य उन्हें सद् उपदेश देते, शास्त्रव्याख्या करके समझाते, श्रद्धालु एकाग्रता से उनके उपदेश सुनते और अपने को धन्य मानते।

किसी स्थान में रात्रि को विश्राम करते, प्रातःकाल आवश्यक कार्यों से निपटकर, यह धर्म-प्रचार पदयात्री आगे की ओर चल पड़ते।

समय पर मार्ग में खड़े हुए श्रद्धालुओं को दर्शन देते, भक्तों को उपदेश देकर शास्त्र व्याख्या करके समझाते हुए शंकराचार्य रात्रि विश्राम करते, प्रातःकाल यात्रा आरंभ कर देते।

इसी प्रकार लगातार चलते-चलते शंकराचार्य प्रसिद्ध तीर्थ मध्यार्जुन में पहुंच गए।

मध्यार्जुन–शिव जाग्रत देवता हैं। शंकराचार्य ने अपने शिष्यों सहित उनके दर्शन कर पूजा की।

वहां ब्राह्मणों के ही अधिक निवास-स्थल थे। सभी ब्राह्मण विद्वान कर्म-कांडी थे।

श्रद्धालु भक्तों ने मंदिर के प्रांगण में एक विराट सभा का आयोजन किया।

सायंकाल की आरती-पूजा समाप्त होते ही श्रद्धालु दर्शकों श्रोताओं की भीड़, मंदिर के आंगन में शंकराचार्य के दर्शन करने, उनसे शास्त्र व्याख्या सुनने के लिए एकत्र हो गई।

शंकराचार्य ने अद्वैत-ब्रह्मात्मविज्ञान की युक्तिपूर्ण व्याख्या करके श्रोताओं को समझाया।

अद्वैतवाद श्रेष्ठ है श्रोता यह जान गए और कई श्रद्धालुओं ने अद्वैत मत ग्रहण करके शंकराचार्य का शिष्य बनने का निर्णय कर लिया।

इससे कुलपति ब्राह्मण क्षोभ से भर गए। दूसरे दिन फिर उसी स्थान पर सभा का आयोजन किया गया।

शंकराचार्य ऊंचे आसन पर पद्मासन लगाए बीच में बैठे थे। उनके चारों ओर उनके शिष्य बैठे थे। वह अपने शिष्यों को शास्त्र विषय में कुछ बता रहे थे।

तभी एक ब्राह्मण पंडित ने खड़े होकर शंकराचार्य से कहा, 'हे देव! आपकी युक्तिपूर्ण व्याख्या सुनकर हमें विश्वास हो गया है कि अद्वैत मत श्रेष्ठ है। पर हमारे मध्यार्जुन–शिव इष्ट जाग्रत देवता हैं। हम उनकी पूजा-उपासना करते हैं।'

'वह देवता आकाशवाणी द्वारा कहें, अद्वैत मत सत्य है, तो हम सब अद्वैत मत को ही ग्रहण कर लेंगे।'

पंडित की यह बात सुनकर सभा में सन्नाटा छा गया। शंकराचार्य थोड़ी देर आंखें मींचकर ध्यानमग्न हो गए। फिर अपने आसन से उठकर मंदिर के अंदर पहुंचे और मध्यार्जुन शिव के सामने घुटनों के बल बैठकर प्रार्थना करने लगे, सारी सभा

सांस रोके जाग्रत देवता के निर्णय की प्रतीक्षा कर रही थी।

शंकराचार्य घुटनों के बल बैठे हुए मध्यार्जुन देवता से प्रार्थना कर रहे थे–

'प्रभो! आप देवदेवेश हैं, सर्वज्ञ हैं, उपनिषदों के सार हैं। सभी वेद आपकी महिमा गा रहे हैं। वेद का प्रतिपाद्य अद्वैत मत ही सत्य है, सबके सामने यह बताकर सबका संशय दूर कीजिए।'

शंकराचार्य की भक्तिपूर्ण प्रार्थना से मंदिर गूंज उठा। प्रार्थना समाप्त होते ही मंदिर दिव्य प्रकाश से भर गया और देववाणी सुनाई दीः अद्वैत सत्य है। अद्वैत सत्य है।

इस अलौकिक घटना से सभी को आश्चर्य हुआ। शंकराचार्य की अलौकिक शक्ति ने सभी को नत मस्तक कर दिया, वह यह मान गए कि मध्यार्जुनेश्वर महादेव जाग्रत देवता हैं। वह जिस मूर्ति की पूजा करते थे, वे तो साक्षात चैतन्य हैं, भक्तों की प्रार्थना सुनते हैं और उन्हें आशीर्वाद देते हैं।

अनेक ब्राह्मणों ने अद्वैत मत ग्रहण किया, शंकराचार्य को आग्रह करके उन्होंने वहां कई दिन ठहरने को कहा।

शंकराचार्य श्रद्धालुओं के अनुरोध को मान गए, सभी को धर्मोपदेश देकर उनके संदेह को दूर किया और अपने सभी शिष्यों सहित रामेश्वर की ओर चल पड़े।

## 38

शंकराचार्य अपने सहस्रों श्रद्धालु भक्त-शिष्यों सहित रामेश्वर तीर्थ की ओर जा रहे थे।

मार्ग में तुलाभवानी तीर्थ था। जहां अनेक शाक्त वामाचारी निवास करते थे। शंकराचार्य ने सुना था वे शाक्त, धर्म के नाम पर मदिरा-मांस का उपभोग करते हैं।

उनके आसुरी धर्म अनुष्ठान हैं। जिनसे समाज में व्यभिचार फैल रहा है। जनसाधारण उनके प्रभाव में धर्म-कर्म भुला बैठे हैं।

इन वामाचारियों को किस प्रकार ठीक धर्म-कर्म में लगाया जाए, शंकराचार्य तुलाभवानी में निवास करते हुए सोच रहे थे।

वामाचारियों को जब यह ज्ञात हुआ शंकराचार्य धर्म-प्रचार कार्य करते हुए अपने शिष्यों सहित तुलाभवानी में आ गए हैं तो वह क्रोध में भरकर शंकराचार्य के निवास-स्थल पर पहुंच गए और उन्हें अपशब्द कहते हुए कहने लगे, 'आप सब किस कारण यहां आए हैं।'

'हम सब शिव की विद्यारूपिणी महाशक्ति के उपासक हैं, आप उसी मत को मानिए तभी आपका कल्याण होगा।'

'व्यर्थ अद्वैतवाद का प्रचार-कार्य करके क्यों धर्म को हानि पहुंचा रहे हो।'

'विप्रवर! आप धर्म के नाम पर जो अनैतिक कार्य कर रहे हैं, वह समाज के लिए घातक है।'

शंकराचार्य ने उनके अपशब्दों की ओर ध्यान न देते हुए कहा, 'आप अपने को ब्राह्मण कहते हैं। शास्त्र का विधान है। ब्राह्मण कभी निषिद्ध वस्तु का भक्षण और सुरापन न करें।

आप मद्य-मांस का सेवन करके, मलेच्छ बन गए हैं। आप अपने को ब्राह्मण

नहीं कह सकते। ब्राह्मण संयमी, धर्मज्ञाता, सदाचारी होता है।

धर्म की आड़ में आप समाज को कुपथगामी बना रहे हैं। जो चिदात्मा है वह तो प्रकृति से भी परे है। वह परमात्माभूत, भविष्यत्, वर्तमान में है। आप सुरा-सुंदरी में उसे पाना चाहते हो।

उस परमात्मा के ध्यान के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती। तुम भोग-विलास से मुक्ति की कामना करते हो।'

शंकराचार्य ने तीक्ष्ण दृष्टि से वामाचारियों की ओर देखते हुए कहा, 'अब अपना परिचय कभी ब्राह्मण कहकर न देना, यह कार्य ब्राह्मण पर कलंक है।'

वामाचारी तो शंकराचार्य को अपशब्द कहकर उन्हें क्रोध दिलाना चाहते थे। पर शंकराचार्य धीरज से उन्हें धर्मविषय में समझा रहे थे।

कई वामाचारी तो शंकराचार्य के सारगर्भित शास्त्रानुमोदित वाक्य सुनकर आत्मग्लानि से भर गए। शंकराचार्य के सामने प्रायश्चित करके उन्होंने मांस-मदिरा छोड़ दी। किसी ने शंकराचार्य का शिष्य बनने का निर्णय ले लिया। पर कई ऐसे वामाचारी थे जो अधर्म को ही धर्म समझकर उस कुमार्ग पर चल रहे थे और दूसरों को भी उसी मार्ग पर चलने की प्रेरणा देकर अपना स्वार्थ पूरा कर रहे थे।

उन्होंने शंकराचार्य के सामने तो प्रायश्चित करके मांस-मदिरा छोड़ दी। जब शंकराचार्य तुलाभवानी से चले गए तब वो वामाचारी बन गए।

शंकराचार्य तुलाभवानी से अपने शिष्यों सहित रामेश्वर तीर्थ पहुंच गए।

श्री रामचंद्र ने रामेश्वर-मूर्ति की स्थापना की थी, तभी से यह तीर्थ सारे भारत के हिंदुओं का विशेष तीर्थ-स्थल बन गया था। रामायण आदि ग्रंथों में उसका वर्णन है।

भगवान शंकर ने भी तीर्थ में आकर रामेश्वर शिव की पूजा की थी।

'शंकराचार्य रामेश्वर तीर्थ में आए हैं', यह समाचार सुनते ही श्रद्धालु भक्त शंकराचार्य के दर्शन को आने लगे।

शंकराचार्य प्रातःकाल मंदिर में पूजा-अर्चना करते, फिर शास्त्र-व्याख्या करके समझाते, शिव महात्म्यगान से उनके शिष्य मंदिर को गुंजा देते।

रामेश्वर शैव प्रधान स्थान था। शंकराचार्य ने शैवों में पंचदेवता की उपासना, पंचमहायज्ञ के अनुष्ठान को प्रचलित किया।

कई शैव मत मानने वाले विद्वानों ने शंकराचार्य की प्रतिभा शास्त्रज्ञान से प्रभावित होकर अद्वैत मत ग्रहण करके शंकराचार्य के शिष्य बन गए।

शंकराचार्य अपने सद्उपदेशों से सभी को कृतार्थ करते हुए अनेक शिष्यों

सहित श्रीरंगम पहुंच गए। उस प्रांत के सभी देव मंदिरों में सेवा-पूजा आदि करके आचार्य अधिक ही प्रसन्न हुए।

शिष्यों सहित उन्होंने भक्ति भाव से कीर्तन किया। श्रद्धालु भक्त शंकराचार्य की सभी धर्मों के प्रति उदारता देखकर प्रसन्नता से भर गए और आपस में कहने लगे, 'बंधु आचार्य-शंकर, तीर्थ-देवताओं की पूजा-अर्चना करवाकर यह अधिकारी भेद बतला रहे हैं, पूजाविधि अनेक हैं।'

'अद्वैतवादी शंकराचार्य ने साकारोपासना का इस प्रकार विशेष प्रयोजन है यह प्रमाणित करके दिखाया है, तीर्थ भ्रमण भी इसी कारण कर रहे हैं।'

प्रत्येक साधारण मनुष्य निर्गुण उपासना नहीं कर सकता, साधक कई प्रकार की साधना करने वाले होते हैं। जिस प्रकार साधक का आत्मज्ञान बढ़े, आध्यात्मिक उन्नति हो, शंकराचार्य उस साधक को वही साधना पथ बताते हैं।

'भारत विजयी शंकराचार्य तो स्वयं ही तीर्थ हैं, तीर्थ भ्रमण हम जैसों को प्रेरणा उपदेश देने के लिए कर रहे हैं।'

'सूर्य के प्रचंड तेज से तपी पृथ्वी को चंद्रमा स्वयं शीतलता प्रदान करते हैं, बंधु, महात्मा भी सांसारिक कष्टों की अग्नि से झुलसते हुए मानवों को अपने सदुपदेशों द्वारा शीतलता पहुंचाते हैं।'

'भाई! शंकराचार्य, ज्ञान को मोक्ष का सबसे बड़ा साधन मानते हैं। उनके सिद्धांत से मोक्ष तपस्या-प्रधान नहीं है। समस्त जगत को ब्रह्ममय मानते हैं।

'वह यह भी तो कहते हैं मित्र', श्रद्धालु के साथी ने चारों ओर देखते हुए कहा, 'जगत की उत्पत्ति ब्रह्म से होती है। पर जगत मिथ्या है, ब्रह्म सत्य है।'

'वह अपने उपदेशों में कहते हैं– वाणी को मन में लय करो, मन को बुद्धि में, बुद्धि को साक्षी आत्मा, में, बुद्धि साक्षी को निर्विकल्प पूर्ण ब्रह्म में लय कर परम शांति का अनुभव करो।'

'हमारे पड़ोसी तो खाओ-पीओ ऐश्वर्य लूटो—इसी में शांति का साधन बताते हैं बंधु!' अपने साथी की बात पर सब हंसते हुए अपने निवास-स्थल की ओर चल पड़े। शंकराचार्य शिष्यों सहित एक माह तक वहां ठहरे और श्रद्धालु भक्तों, मानवों को धर्म उपदेश देकर कृतार्थ किया।

फिर सुब्रह्मण्य देश, शुभगणपुरम् आदि तीर्थों का दर्शन करते, श्रद्धालु भक्तों को दर्शन देते, सद्उपदेशों से उन्हें धन्य करते, कांचीपुरम् की ओर चल पड़े।

पूज्य शंकराचार्य अनेक शिष्यों सहित कांचीपुरम् (कांचीवरम) आए हैं, यह समाचार सुनकर पल्लभवंश के स्थानीय राजा नंदीवर्मन ने उनका स्वागत किया और

उनका एकांत स्थान में रहने का प्रबंध करवा दिया।

वहां तांत्रिकों का अधिक प्रभाव था। शंकराचार्य के उस प्रदेश में निवास करते ही सारे में हलचल मच गई।

शंकराचार्य वहां का वातावरण देखकर ही समझ चुके थे। तांत्रिक अवश्य कोई बाधा डालेंगे।

वह पहले कामाक्षी देवी के मंदिर गए, वहां उन्होंने श्रुति-स्मृति लिखित पूजा का निर्देश अपने शिष्यों को दिया।

कामाक्षी देवी के यंत्र की प्रतिष्ठा की। देवी कामाक्षी की मूर्ति के नेत्रों में इतना तेज था, कोई मानव उनकी ओर अपलक नहीं देख सकता था।

शंकराचार्य ने देवी का सारा तेज उस यंत्र में आकर्षित कर दिया।

यंत्र प्रतिष्ठा करके शंकराचार्य ने राजा से अनुरोध किया, वहां सुंदर मंदिर का निर्माण कराया जाए।

राजा ने मंदिर का निर्माण कार्य आरंभ करवा दिया। तांत्रिकों की शक्ति पूजा का प्रबंध कराने के कारण शंकराचार्य के प्रति उनकी श्रद्धा उत्पन्न हो गई।

देवी पूजा का कार्य विद्वान ब्राह्मणों को सौंपा गया। कांचीपुरम् एक प्राचीन प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है—शिवकांची और विष्णुकांची नामक दो भागों में बंटा हुआ है।

शिवकांची में भवानीपति लिंग रूप में प्रकट होकर 'अमरेश' नाम से पूजे जाते हैं। काल प्रभाव से मंदिर जीर्ण अवस्था में था। शंकराचार्य ने उसका जीर्णोद्धार करवाकर पूजा करने के लिए नैष्टिक ब्राह्मण नियुक्त कराया।

विष्णुकांची में श्री वरदराज विष्णु का प्राचीन काल से ही मंदिर था, पर मंदिर देवस्थान की दशा ठीक नहीं थी। पूजा का भी ठीक प्रबंध नहीं था।

शंकराचार्य ने देवस्थान मंदिर सुधरवाया और भली प्रकार पूजा की व्यवस्था कराई।

सभी श्रद्धालु शंकराचार्य की उदारता से अधिक ही प्रसन्न हुए।

मंदिरों में शास्त्रविधि अनुसार पूजा होने लगी।

पूजा-अर्चना की सुंदर व्यवस्था देखकर श्रद्धालु भक्त शंकराचार्य का जयघोष करने लगे।

शंकराचार्य शिष्यों सहित थोड़े दिन वहां ठहरकर ताम्रपर्णी, वेकटाचल विदर्भ की यात्रा करते हुए कर्नाटक-उज्जयिनी की ओर चल पड़े।

## 39

कर्नाटक-उज्जयिनी के राजा सुधन्वा केरल से ही शंकराचार्य से साथ धर्म तीर्थयात्रा में सम्मिलित हो गए थे।

शंकराचार्य को उन्होंने विशेष आग्रह करके राज्य में धर्म संस्थापन के लिए ठहरा लिया।

इस प्रांत में कापालिकों का प्राधान्य था। कापालिक क्रकच ने राजा की उपाधि धारण करके सारे भारत के कापालिकों का प्रधान केंद्र इस प्रांत में स्थापित किया था।

क्रवच उच्चकोटि का विद्वान ब्राह्मण था। अनेक प्रकार की सिद्धियों और विभूतियों का अधिकारी था।

राजा सुधन्वा क्षत्रिय थे, क्रकच के उच्चकोटि ब्राह्मण होने के कारण वे उसके कार्यों में रुकावट डालने का साहस न कर सके।

क्रकच धर्म के नाम पर अनेक प्रकार के पाशविक कर्मों का अनुष्ठान करने लगा था।

उसकी ब्राह्मण कापालिक-मंडली थी, जिसमें सहस्रों उसके अनुयायी थे।

शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित यहां धर्म-प्रचार के लिए आए हैं, यह सूचना सुनते ही कापालिक राजा क्रकच, शंकराचार्य का शिष्यों सहित वध करने की तैयारी करने लगा।

उसने कापालिक सेना एकत्र की और आचार्य के निवास-स्थल की ओर चल पड़ा।

पद्मपाद ने देखा, क्रकच लाल वस्त्र पहने, भस्म लगाए, एक हाथ में नरकपाल दूसरे में परशा लिए हुए आ रहा है।

उसने अपने सभी गुरुभाइयों को अपने गुरुदेव शंकराचार्य के समीप रहने का संकेत किया।

अश्लील भाषा में शंकराचार्य को अपशब्द कहता हुआ क्रकच भयानक वेशभूषा धारण किए उनके सामने आया।

शंकराचार्य उसके अपशब्द चुपचाप सुनते रहे। क्रकच ने शंकराचार्य को मौन धारण किए देखकर उनका अपमान करना आरंभ कर दिया।

राजा सुधन्वा अपने गुरुदेव का इस प्रकार अपमान होता देखकर क्रोध से भर गए। पहले उन्होंने क्रकच को समझाने का यत्न किया। पर वह तो उस समय अहं से भर हुआ था।

उसने शंकराचार्य को और भी अपशब्द कहे, राजा सुधन्वा ने क्रोध में भरकर अपने कर्मचारियों को आज्ञा दी, 'इस दुराचारी को यहां से निकाल दो।'

'तूने मेरा अपमान किया है', क्रकच ने क्रोध' में भरकर परशा उठाकर चलते हुए कहा, 'यदि तुम सबके मैंने इस परशे से सिर न काटे तो मेरा नाम क्रकच नहीं।' यह कहते हुए क्रकच क्रोध में भरकर अपने निवास-स्थल पर आया और अपनी कापालिकों की सेना को तैयार होने की आज्ञा दी।

क्रकच की सेना युद्ध का डंका बजाती तीक्ष्ण त्रिशूल, परशे हाथ में लिए हुए, क्रकच का जयघोष करती हुई राजभवन की ओर चली।

शंकराचार्य के शिष्य कापालिक की सेना को युद्ध के लिए उधर आते हुए देखकर घबरा गए और अपने गुरुदेव के चारों ओर घेरा डालकर खड़े हो गए।

शंकराचार्य चुपचाप खड़े हुए कापालिक सेना को उधर आते हुए देखते रहे।

राजा सुधन्वा ने देखा, कापालिक क्रकच की सेना राजमहल की ओर आ रही है। उसने तुरंत ही अपनी सेना को उन्हें रोकने की आज्ञा दी।

स्वयं युद्ध वेशभूषा धारण कर धनुष-बाण लेकर रथ में सवार हो गया और क्रकच की सेना को तीरों की बौछार करके, रणभूमि से भागने को विवश कर दिया।

अपनी सेना को भागते देखकर क्रकच और भी क्रोध में भर गया। अपने अस्त्र-शस्त्र फेंककर एक हाथ में नरकपाल लेकर इष्ट का ध्यान करने लगा।

नरकपाल में मदिरा भर गई, क्रकच ने उसे पी लिया और संहार भैरव का आह्वान किया।

शंकराचार्य उस दुराचारी के सभी कार्य चुपचाप खड़े हुए देख रहे थे।

संहार भैरव क्रकच के आह्वान पर भयंकर शब्द करता हुआ प्रकट हुआ।

क्रकच ने झुककर प्रणाम करते हुए संहार भैरव से शंकराचार्य को मारने के लिए कहा।

संहार भैरव ने यह सुनते ही उग्र रूप धारण कर लिया और क्रकच की ओर क्रोध से देखते हुए बोला, 'रे दुष्ट, तू तो मेरे विरुद्धाचरण कर रहा है, मेरे अंश शंकर का तूने अपमान किया है इसका दंड तुझे मिलेगा।' कहते हुए संहार भैरव ने क्रकच का सिर काट दिया। शंकराचार्य ने संहार भैरव के क्रोध को शांत करते हुए उनकी स्तुति की।

संहार भैरव ने प्रसन्न होकर शंकराचार्य को आशीर्वाद दिया और अंतर्ध्यान हो गए।

'कापालिकों का राजा शंकराचार्य को अपनी सिद्धियों द्वारा संहार भैरव का आह्वान करके उनसे आचार्य का वध कराना चाहता था।

'स्वयं ही उनके हाथ से मारा गया।' सुनते ही कापालिक भय से कांपते हुए शंकराचार्य के समीप आए और उनके चरणों में गिरकर क्षमा मांगने लगे।

शंकराचार्य तो दया के सागर थे, उन्होंने कापालिकों को क्षमा करके उन्हें प्रत्येक प्रकार के प्रायश्चित कराए और शुद्ध होने पर तत्त्वोपदेश दिया।

आचार्य के उपदेश का प्रभाव कापालिकों पर गहरा पड़ा। उन्होंने दुराचार छोड़कर सदाचारी बनने का निर्णय कर लिया।

पंचदेवता की पूजा, संध्या, वंदना, पंचमहायज्ञ आदि करने के लिए तैयार हो गए।

क्रकच की मृत्यु के साथ ही उस प्रांत के दुराचारी कापालिकों का प्रभाव समाप्त हो गया।

श्रद्धालु जनता फिर से अपने धार्मिक कार्य करने में गौरव अनुभव करने लगी। वैदिक धर्म की शंकराचार्य के कारण पुनः प्रतिष्ठा हुई।

शंकराचार्य कर्नाटक के अनेक प्रांतों में वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए विभिन्न मतावलम्बियों को शास्त्रार्थ में शास्त्र ज्ञान द्वारा पराजित करते हुए आगे की ओर चल पड़े।

वह अपने आध्यात्मिक जीवन, साधना, शक्तिबल से श्रद्धालुओं के मन में सत्यलाभ की आकांक्षा जगा देते थे।

कुमार्ग के कांटों से बिंधे, अंधविश्वासी संकीर्ण दृष्टिवालों के हृदय को शंकराचार्य उपदेश द्वारा शांति का अमृत पिलाकर दिव्य ज्योति जगा देते थे। शंकराचार्य ने ऐसे उदार सनातन हिंदू धर्म के संदेशवाहक के रूप में सारी धर्मभूमि भारत का भ्रमण किया था—जिस धर्म में सभी को समान स्थान है।

शंकराचार्य जैसे उदारपंथी शास्त्रज्ञाता को पाकर सनातन धर्म में नवजीवन आ गया था।

आंध्र प्रदेश के अनेक स्थानों का भ्रमण करते हुए शास्त्र व्याख्या करके सदुपदेशों द्वारा श्रद्धालुओं को कृतार्थ करते, धर्म विमुखों को धर्म पर चलने का मार्ग बताते हुए शंकराचार्य पुरीधाम पहुंचे।

कलिंगराज ने अपने मंत्रियों सहित शंकराचार्य का स्वागत किया। राजा को आशीर्वाद देते हुए शंकराचार्य श्री मंदिर गए।

मंदिर में शालग्राम शिला पर ही श्री विष्णु भगवान की पूजा होती थी। श्री मंदिर में श्री जगन्नाथ देव का भी कोई विग्रह नहीं था।

शालग्राम शिला पर ही उन देवताओं की पूजा होती देखकर शंकराचार्य ध्यानमग्न हो गए।

अपने प्रधान शिष्यों सहित शंकराचार्य ने मंदिर के आंगन में ही ठहरने का निर्णय कर लिया था।

उनके अनुयायी समुद्र तट पर ठहरे थे। शंकराचार्य को इस प्रकार ध्यान अवस्था में देखकर पद्मपाद को अधिक चिंता हुई।

वह उनके समीप ही बैठ गया, कई श्रद्धालु भक्त शंकराचार्य के दर्शन करने के लिए वहां आ गए।

शंकराचार्य ने थोड़ी देर में नेत्र खोलकर उन श्रद्धालु भक्तों की ओर देखते हुए पूछा, 'मंदिर में श्री विग्रह नहीं है, क्या कारण है?'

'आचार्य! विधर्मियों के भय से जगन्नाथ देव की रत्नपेटिका चिल्काह्रद के तीर पर किसी स्थान पर गाड़ दी गई थी। अधिक दिन व्यतीत हो गए फिर उस स्थान का पता ही नहीं लगा जहां रत्नपेटिका गाड़ी गई थी।' पुजारी ने शंकराचार्य की ओर देखते हुए कहा, 'पूजा-अर्चना के लिए उसी समय से शालग्राम शिला यहां प्रतिष्ठित की गई।'

'रत्नपेटिका यदि खोज ली जाए तो आप सब श्री जगन्नाथ देव के विग्रह को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए तैयार हैं', शंकराचार्य ने पुजारी और श्रद्धालु भक्तों की ओर देखते हुए कहा, 'आप सब उनकी पूजा-अर्चना करेंगे।'

'यदि रत्नपेटिका का पुनरुद्धार हो गया तो हम सब तो अपने को धन्य मानेंगे यतीवर! जगन्नाथ देव की कृपा से ही आपका इधर आगमन हुआ है।'

पुजारी श्रद्धालुओं ने शंकराचार्य के चरण छूकर नम्रता से कहा, 'आपकी अलौकिक शक्ति की बातें हमने सुनी हैं। आप कृपा करके यह बात बता दीजिए

वह रत्नपेटिका कहां है।'

'आपकी शुभ इच्छा पूर्ण होगी', कहते हुए शंकराचार्य ध्यानमग्न हो गए।

'शंकराचार्य रत्नपेटिका के विषय में बताएंगे, इस समय किस स्थान में हैं', यह सूचना चारों ओर फैल गई, श्रद्धालु दर्शकों की भीड़ वहां एकत्र होने लगी।

शंकराचार्य का ध्यान भंग हुआ, उन्होंने पुजारियों की ओर देखते हुए कहा, 'चिल्काह्रद के पूर्व तट पर सबसे बड़े बरगद के नीचे उत्तर की ओर रत्नपेटिका रखी गई है, आप उस स्थान को खोदिए।'

शंकराचार्य की देववाणी सुनकर पुरी के निवासी हर्ष से भर गए और राजकर्मचारी, पंडे पुजारी श्रद्धालुओं सहित चिलकाह्रद की ओर चल पड़े।

बड़े बरगद के नीचे बताए हुए स्थान पर उन्होंने खोदना आरंभ किया।

मिट्टी हटाते ही रत्नपेटिका मिल गई। सभी जयघोष करते, बाजे बजाते, कीर्तन करते हुए रत्नपेटिका को लेकर श्री मंदिर की ओर आ गए।

काष्ठ की मूर्ति भी बनाई गई। एक शुभ मुहूर्त में यथाविधि पूजा-अभिषेक करके दिव्य पुरुष जगन्नाथ रूप में पुरी के श्री मंदिर में प्रतिष्ठा की गई।

हजारों नर-नारियों के जयघोष से मंदिर का आंगन गूंज उठा। दूर-दूर से दर्शन को दर्शनार्थी आने लगे।

शंकराचार्य की अलौकिक शक्ति की चारों ओर चर्चा होने लगी।

वे भुवन मंगल 'जगन्नाथ स्वामी' करुणामयी कृपा दृष्टि लेकर श्रद्धालुओं के कल्याण के लिए श्री मंदिर में विराजमान हुए।

पुरी के मंदिर में यथा शास्त्रविधि पूजा का प्रबंध किया गया। घंटे-घड़ियाल-शंख ध्वनि से मंदिर का देवालय गूंज उठा।

शंकराचार्य 'जगन्नाथ स्वामी' की प्रतिष्ठा करवाकर सुचारु रूप से पूजा का प्रबंध करवाकर अपने शिष्यों सहित मगध राज्य की ओर चल पड़े।

श्री क्षेत्र में मेला-सा लग गया, हजारों श्रद्धालु दर्शनार्थी दूर-दूर से आकर श्री जगन्नाथ स्वामी के दर्शन करके अपने को धन्य करने लगे।

शंकराचार्य जैसे उदारपंथी शास्त्रज्ञाता को पाकर सनातन धर्म में नवजीवन आ गया था।

आंध्र प्रदेश के अनेक स्थानों का भ्रमण करते हुए शास्त्र व्याख्या करके सदुपदेशों द्वारा श्रद्धालुओं को कृतार्थ करते, धर्म विमुखों को धर्म पर चलने का मार्ग बताते हुए शंकराचार्य पुरीधाम पहुंचे।

कलिंगराज ने अपने मंत्रियों सहित शंकराचार्य का स्वागत किया। राजा को आशीर्वाद देते हुए शंकराचार्य श्री मंदिर गए।

मंदिर में शालग्राम शिला पर ही श्री विष्णु भगवान की पूजा होती थी। श्री मंदिर में श्री जगन्नाथ देव का भी कोई विग्रह नहीं था।

शालग्राम शिला पर ही उन देवताओं की पूजा होती देखकर शंकराचार्य ध्यानमग्न हो गए।

अपने प्रधान शिष्यों सहित शंकराचार्य ने मंदिर के आंगन में ही ठहरने का निर्णय कर लिया था।

उनके अनुयायी समुद्र तट पर ठहरे थे। शंकराचार्य को इस प्रकार ध्यान अवस्था में देखकर पद्मपाद को अधिक चिंता हुई।

वह उनके समीप ही बैठ गया, कई श्रद्धालु भक्त शंकराचार्य के दर्शन करने के लिए वहां आ गए।

शंकराचार्य ने थोड़ी देर में नेत्र खोलकर उन श्रद्धालु भक्तों की ओर देखते हुए पूछा, 'मंदिर में श्री विग्रह नहीं है, क्या कारण है?'

'आचार्य! विधर्मियों के भय से जगन्नाथ देव की रत्नपेटिका चिल्काह्रद के तीर पर किसी स्थान पर गाड़ दी गई थी। अधिक दिन व्यतीत हो गए फिर उस स्थान का पता ही नहीं लगा जहां रत्नपेटिका गाड़ी गई थी।' पुजारी ने शंकराचार्य की ओर देखते हुए कहा, 'पूजा-अर्चना के लिए उसी समय से शालग्राम शिला यहां प्रतिष्ठित की गई।'

'रत्नपेटिका यदि खोज ली जाए तो आप सब श्री जगन्नाथ देव के विग्रह को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए तैयार हैं', शंकराचार्य ने पुजारी और श्रद्धालु भक्तों की ओर देखते हुए कहा, 'आप सब उनकी पूजा-अर्चना करेंगे।'

'यदि रत्नपेटिका का पुनरुद्धार हो गया तो हम सब तो अपने को धन्य मानेंगे यतीवर! जगन्नाथ देव की कृपा से ही आपका इधर आगमन हुआ है।'

पुजारी श्रद्धालुओं ने शंकराचार्य के चरण छूकर नम्रता से कहा, 'आपकी अलौकिक शक्ति की बातें हमने सुनी हैं। आप कृपा करके यह बात बता दीजिए

वह रत्नपेटिका कहां है।'

'आपकी शुभ इच्छा पूर्ण होगी', कहते हुए शंकराचार्य ध्यानमग्न हो गए।

'शंकराचार्य रत्नपेटिका के विषय में बताएंगे, इस समय किस स्थान में है', यह सूचना चारों ओर फैल गई, श्रद्धालु दर्शकों की भीड़ वहां एकत्र होने लगी।

शंकराचार्य का ध्यान भंग हुआ, उन्होंने पुजारियों की ओर देखते हुए कहा, 'चिल्काह्रद के पूर्व तट पर सबसे बड़े बरगद के नीचे उत्तर की ओर रत्नपेटिका रखी गई है, आप उस स्थान को खोदिए।'

शंकराचार्य की देववाणी सुनकर पुरी के निवासी हर्ष से भर गए और राजकर्मचारी, पंडे पुजारी श्रद्धालुओं सहित चिलकाह्रद की ओर चल पड़े।

बड़े बरगद के नीचे बताए हुए स्थान पर उन्होंने खोदना आरंभ किया।

मिट्टी हटाते ही रत्नपेटिका मिल गई। सभी जयघोष करते, बाजे बजाते, कीर्तन करते हुए रत्नपेटिका को लेकर श्री मंदिर की ओर आ गए।

काष्ठ की मूर्ति भी बनाई गई। एक शुभ मुहूर्त में यथाविधि पूजा-अभिषेक करके दिव्य पुरुष जगन्नाथ रूप में पुरी के श्री मंदिर में प्रतिष्ठा की गई।

हजारों नर-नारियों के जयघोष से मंदिर का आंगन गूंज उठा। दूर-दूर से दर्शन को दर्शनार्थी आने लगे।

शंकराचार्य की अलौकिक शक्ति की चारों ओर चर्चा होने लगी।

वे भुवन मंगल 'जगन्नाथ स्वामी' करुणामयी कृपा दृष्टि लेकर श्रद्धालुओं के कल्याण के लिए श्री मंदिर में विराजमान हुए।

पुरी के मंदिर में यथा शास्त्रविधि पूजा का प्रबंध किया गया। घंटे-घड़ियाल-शंख ध्वनि से मंदिर का देवालय गूंज उठा।

शंकराचार्य 'जगन्नाथ स्वामी' की प्रतिष्ठा करवाकर सुचारु रूप से पूजा का प्रबंध करवाकर अपने शिष्यों सहित मगध राज्य की ओर चल पड़े।

श्री क्षेत्र में मेला-सा लग गया, हजारों श्रद्धालु दर्शनार्थी दूर-दूर से आकर श्री जगन्नाथ स्वामी के दर्शन करके अपने को धन्य करने लगे।

# 40

शंकराचार्य मगध की ओर चल पड़े थे। मार्ग में उन्हें मगधपुर ठहरना पड़ा।

वहां विभिन्न मतों के उपासक शंकराचार्य के दर्शन करने आए, कई शास्त्र-व्याख्या सुनने के लिए, आचार्य से धर्मोपदेश सुनने के लिए एकत्र हो गए।

कई भ्रांत मतावलम्बियों के साथ शंकराचार्य का शास्त्रार्थ भी हुआ। उन्होंने शंकराचार्य की प्रतिभा शास्त्रज्ञान के सामने अपना सिर झुका दिया।

यमस्थपुर में अनेक यमोपासकों का निवास था, उनकी भुजाओं पर भैंसे का चिह्न था। जो लोहा तपाकर उससे बनाया गया था।

वह भयंकर रूप धारण किए नाचते हुए आचार्य के समीप आए।

आचार्य ने उन्हें बैठने का संकेत किया पर वे थिरकते हुए बोले, 'यतीवर! हम यम के उपासक हैं।'

'हमारे आराध्य देवता ही सृष्टिकर्त्ता प्रलयकर्त्ता हैं, इनकी उपासना से अज्ञान मूल का नाश होता है।'

'अज्ञान के नष्ट होने से यम ही सर्वमय है ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है।'

'आप भी यम की उपासना करके मोक्ष लाभ लें।'

'आप श्रुति विरुद्ध बातें कर रहे हैं', यमोपासकों के आचार्य की ओर देखते हुए शंकराचार्य ने कहा, 'यह चिह्न जो आपने बनाए हैं, क्या मोक्ष दिला सकते हैं?

मुक्ति हेतु तो ज्ञान, आत्मा का स्वरूपबोध है। चित्त शुद्धि कार्य से ब्रह्मज्ञान में प्रतिष्ठित होने से ही मुक्ति लाभ संभव हैं।

चित्त शुद्धि के बिना ब्रह्मात्मज्ञान दृढ़ नहीं होता।

कठोपनिषद् में लिखा है—'यम ब्रह्म नहीं है। वेदों में लिखित कर्म अनुष्ठान करने में आप सबका कल्याण होगा। व्यर्थ आडम्बर में फंसकर अपने शरीर के भाग

पर जलाकर चिह्न बनाना क्या आपको मोक्ष दिलाएगा, इस भ्रम को मन से निकालकर एकाग्रता से शास्त्रलिखित कर्म कीजिए।'

शंकराचार्य यमोपासकों के आचार्य को सद्उपदेश देते हुए उसकी ओर देख रहे थे।

उसे अनुभव हुआ, जैसे मन के सभी विकार नष्ट होकर मन अनूठे आनंद से भर रहा है।

वह हर्षविभोर होकर आचार्य के चरणों में गिर पड़ा। उसके शिष्य भी शंकराचार्य के चरणों की वंदना कर उनकी चरणरज माथे से लगाने लगे।

शंकराचार्य के शिष्य इन भंयकर यमोपासकों का हृदयपरिवर्तन देखकर हर्ष में भरकर अपने आचार्य, गुरुदेव का जयघोष करने लगे।

आचार्य के दिव्य उपदेशों द्वारा यमोपासकों का हृदयपरिवर्तन होकर वह आचार्य के शिष्य बन गए, यह समाचार मगध में चारों ओर फैलने लगा।

अनेक श्रद्धालु शंकराचार्य के दर्शन को दूर-दूर से आने लगे।

आचार्य के आदेश से, उनके ब्राह्मण शिष्यों ने यमोपासकों की शास्त्र विधि अनुसार, शुद्धि करके, उन्हें पूजा-उपासना की शिक्षा दी।

'यमस्थपुर में यमोपासकों को अपनी शरण में लेकर शंकराचार्य ने एक विकृत धर्म का सुधार किया है।'

श्रद्धालु, शंकराचार्य के दर्शन करके अपने साथियों से कहते, 'आश्चर्य का विषय है, प्रत्येक भ्रांत मतावलम्बी हिंदू अपने मत को, वेदानुगामी तथा परम सत्य प्राप्ति का एकमात्र पथ समझता था।'

'बंधु! वेदों के अवलम्बन से सनातन हिंदू धर्म की अनेक शाखाओं और मतवादों की उत्पत्ति हुई थी।

वह वेद ही विस्मृति के गर्त में गिरा दिए गए थे। किसी को ठीक ज्ञान न होने के कारण हिंदू धर्मावलम्बी अनेक प्रकार के विभिन्न भ्रांति भरे धर्मों का आश्रय ले रहे थे।

पाखंडी धर्मों के ठेकेदार बनकर श्रद्धालु जनता को कुपथ पर चला रहे थे।'

'मित्र! शंकराचार्य ने वेद की प्रामाणिकता को शास्त्रों द्वारा सिद्ध किया। विभिन्न धर्ममतावलम्बी जनसमुदाय को धर्म का सच्चा मार्ग दिखाकर वेदानुगामी कर लिया।'

'वेद का प्रचार उनके द्वारा भारत के कोने-कोने में हो रहा है, जहां जाते हैं विभिन्न धर्मवाले उनसे शास्त्रार्थ करने के लिए आते हैं।'

# 40

शंकराचार्य मगध की ओर चल पड़े थे। मार्ग में उन्हें मगधपुर ठहरना पड़ा।

वहां विभिन्न मतों के उपासक शंकराचार्य के दर्शन करने आए, कई शास्त्र-व्याख्या सुनने के लिए, आचार्य से धर्मोपदेश सुनने के लिए एकत्र हो गए।

कई भ्रांत मतावलम्बियों के साथ शंकराचार्य का शास्त्रार्थ भी हुआ। उन्होंने शंकराचार्य की प्रतिभा शास्त्रज्ञान के सामने अपना सिर झुका दिया।

यमस्थपुर में अनेक यमोपासकों का निवास था, उनकी भुजाओं पर भैंसे का चिह्न था। जो लोहा तपाकर उससे बनाया गया था।

वह भयंकर रूप धारण किए नाचते हुए आचार्य के समीप आए।

आचार्य ने उन्हें बैठने का संकेत किया पर वे थिरकते हुए बोले, 'यतीवर! हम यम के उपासक हैं।'

'हमारे आराध्य देवता ही सृष्टिकर्त्ता प्रलयकर्त्ता हैं, इनकी उपासना से अज्ञान मूल का नाश होता है।'

'अज्ञान के नष्ट होने से यम ही सर्वमय है ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है।'

'आप भी यम की उपासना करके मोक्ष लाभ लें।'

'आप श्रुति विरुद्ध बातें कर रहे हैं', यमोपासकों के आचार्य की ओर देखते हुए शंकराचार्य ने कहा, 'यह चिह्न जो आपने बनाए हैं, क्या मोक्ष दिला सकते हैं?

मुक्ति हेतु तो ज्ञान, आत्मा का स्वरूपबोध है। चित्त शुद्धि कार्य से ब्रह्मज्ञान में प्रतिष्ठित होने से ही मुक्ति लाभ संभव है।

चित्त शुद्धि के बिना ब्रह्मात्मज्ञान दृढ़ नहीं होता।

कठोपनिषद् में लिखा है—'यम ब्रह्म नहीं है। वेदों में लिखित कर्म अनुष्ठान करने में आप सबका कल्याण होगा। व्यर्थ आडम्बर में फंसकर अपने शरीर के भाग

पर जलाकर चिह्न बनाना क्या आपको मोक्ष दिलाएगा, इस भ्रम को मन से निकालकर एकाग्रता से शास्त्रलिखित कर्म कीजिए।'

शंकराचार्य यमोपासकों के आचार्य को सद्उपदेश देते हुए उसकी ओर देख रहे थे।

उसे अनुभव हुआ, जैसे मन के सभी विकार नष्ट होकर मन अनूठे आनंद से भर रहा है।

वह हर्षविभोर होकर आचार्य के चरणों में गिर पड़ा। उसके शिष्य भी शंकराचार्य के चरणों की वंदना कर उनकी चरणरज माथे से लगाने लगे।

शंकराचार्य के शिष्य इन भंयकर यमोपासकों का हृदयपरिवर्तन देखकर हर्ष में भरकर अपने आचार्य, गुरुदेव का जयघोष करने लगे।

आचार्य के दिव्य उपदेशों द्वारा यमोपासकों का हृदयपरिवर्तन होकर वह आचार्य के शिष्य बन गए, यह समाचार मगध में चारों ओर फैलने लगा।

अनेक श्रद्धालु शंकराचार्य के दर्शन को दूर-दूर से आने लगे।

आचार्य के आदेश से, उनके ब्राह्मण शिष्यों ने यमोपासकों की शास्त्र विधि अनुसार, शुद्धि करके, उन्हें पूजा-उपासना की शिक्षा दी।

'यमस्थपुर में यमोपासकों को अपनी शरण में लेकर शंकराचार्य ने एक विकृत धर्म का सुधार किया है।'

श्रद्धालु, शंकराचार्य के दर्शन करके अपने साथियों से कहते, 'आश्चर्य का विषय है, प्रत्येक भ्रांत मतावलम्बी हिंदू अपने मत को, वेदानुगामी तथा परम सत्य प्राप्ति का एकमात्र पथ समझता था।'

'बंधु! वेदों के अवलम्बन से सनातन हिंदू धर्म की अनेक शाखाओं और मतवादों की उत्पत्ति हुई थी।

वह वेद ही विस्मृति के गर्त में गिरा दिए गए थे। किसी को ठीक ज्ञान न होने के कारण हिंदू धर्मावलम्बी अनेक प्रकार के विभिन्न भ्रांति भरे धर्मों का आश्रय ले रहे थे।

पाखंडी धर्मों के ठेकेदार बनकर श्रद्धालु जनता को कुपथ पर चला रहे थे।'

'मित्र! शंकराचार्य ने वेद की प्रामाणिकता को शास्त्रों द्वारा सिद्ध किया। विभिन्न धर्ममतावलम्बी जनसमुदाय को धर्म का सच्चा मार्ग दिखाकर वेदानुगामी कर लिया।'

'वेद का प्रचार उनके द्वारा भारत के कोने-कोने में हो रहा है, जहां जाते हैं विभिन्न धर्मवाले उनसे शास्त्रार्थ करने के लिए आते हैं।'

# 40

शंकराचार्य मगध की ओर चल पड़े थे। मार्ग में उन्हें मगधपुर ठहरना पड़ा।

वहां विभिन्न मतों के उपासक शंकराचार्य के दर्शन करने आए, कई शास्त्र-व्याख्या सुनने के लिए, आचार्य से धर्मोपदेश सुनने के लिए एकत्र हो गए।

कई भ्रांत मतावलम्बियों के साथ शंकराचार्य का शास्त्रार्थ भी हुआ। उन्होंने शंकराचार्य की प्रतिभा शास्त्रज्ञान के सामने अपना सिर झुका दिया।

यमस्थपुर में अनेक यमोपासकों का निवास था, उनकी भुजाओं पर भैंसे का चिह्न था। जो लोहा तपाकर उससे बनाया गया था।

वह भयंकर रूप धारण किए नाचते हुए आचार्य के समीप आए।

आचार्य ने उन्हें बैठने का संकेत किया पर वे थिरकते हुए बोले, 'यतीवर! हम यम के उपासक हैं।'

'हमारे आराध्य देवता ही सृष्टिकर्त्ता प्रलयकर्त्ता हैं, इनकी उपासना से अज्ञान मूल का नाश होता है।'

'अज्ञान के नष्ट होने से यम ही सर्वमय है ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है।'

'आप भी यम की उपासना करके मोक्ष लाभ लें।'

'आप श्रुति विरुद्ध बातें कर रहे हैं', यमोपासकों के आचार्य की ओर देखते हुए शंकराचार्य ने कहा, 'यह चिह्न जो आपने बनाए हैं, क्या मोक्ष दिला सकते हैं?

मुक्ति हेतु तो ज्ञान, आत्मा का स्वरूपबोध है। चित्त शुद्धि कार्य से ब्रह्मज्ञान में प्रतिष्ठित होने से ही मुक्ति लाभ संभव हैं।

चित्त शुद्धि के बिना ब्रह्मात्मज्ञान दृढ़ नहीं होता।

कठोपनिषद् में लिखा है—'यम ब्रह्म नहीं है। वेदों में लिखित कर्म अनुष्ठान करने में आप सबका कल्याण होगा। व्यर्थ आडम्बर में फंसकर अपने शरीर के भाग

पर जलाकर चिह्न बनाना क्या आपको मोक्ष दिलाएगा, इस भ्रम को मन से निकालकर एकाग्रता से शास्त्रलिखित कर्म कीजिए।'

शंकराचार्य यमोपासकों के आचार्य को सद्उपदेश देते हुए उसकी ओर देख रहे थे।

उसे अनुभव हुआ, जैसे मन के सभी विकार नष्ट होकर मन अनूठे आनंद से भर रहा है।

वह हर्षविभोर होकर आचार्य के चरणों में गिर पड़ा। उसके शिष्य भी शंकराचार्य के चरणों की वंदना कर उनकी चरणरज माथे से लगाने लगे।

शंकराचार्य के शिष्य इन भंयकर यमोपासकों का हृदयपरिवर्तन देखकर हर्ष में भरकर अपने आचार्य, गुरुदेव का जयघोष करने लगे।

आचार्य के दिव्य उपदेशों द्वारा यमोपासकों का हृदयपरिवर्तन होकर वह आचार्य के शिष्य बन गए, यह समाचार मगध में चारों ओर फैलने लगा।

अनेक श्रद्धालु शंकराचार्य के दर्शन को दूर-दूर से आने लगे।

आचार्य के आदेश से, उनके ब्राह्मण शिष्यों ने यमोपासकों की शास्त्र विधि अनुसार, शुद्धि करके, उन्हें पूजा-उपासना की शिक्षा दी।

'यमस्थपुर में यमोपासकों को अपनी शरण में लेकर शंकराचार्य ने एक विकृत धर्म का सुधार किया है।'

श्रद्धालु, शंकराचार्य के दर्शन करके अपने साथियों से कहते, 'आश्चर्य का विषय है, प्रत्येक भ्रांत मतावलम्बी हिंदू अपने मत को, वेदानुगामी तथा परम सत्य प्राप्ति का एकमात्र पथ समझता था।'

'बंधु! वेदों के अवलम्बन से सनातन हिंदू धर्म की अनेक शाखाओं और मतवादों की उत्पत्ति हुई थी।

वह वेद ही विस्मृति के गर्त में गिरा दिए गए थे। किसी को ठीक ज्ञान न होने के कारण हिंदू धर्मावलम्बी अनेक प्रकार के विभिन्न भ्रांति भरे धर्मों का आश्रय ले रहे थे।

पाखंडी धर्मों के ठेकेदार बनकर श्रद्धालु जनता को कुपथ पर चला रहे थे।'

'मित्र! शंकराचार्य ने वेद की प्रामाणिकता को शास्त्रों द्वारा सिद्ध किया। विभिन्न धर्ममतावलम्बी जनसमुदाय को धर्म का सच्चा मार्ग दिखाकर वेदानुगामी कर लिया।'

'वेद का प्रचार उनके द्वारा भारत के कोने-कोने में हो रहा है, जहां जाते हैं विभिन्न धर्मवाले उनसे शास्त्रार्थ करने के लिए आते हैं।'

'भाई मेरे, वह शास्त्रार्थ क्या करेंगे, शंकराचार्य के दर्शन करते ही वह तो उनके अनुयायी बन जाते हैं।'

'साधना तप बल में क्या शक्ति है बंधु, हमारे शंकराचार्य ने प्रत्यक्ष दिखला दिया। उनकी अलौकिक शक्ति कई बार समय-समय पर उनके अनुयायी शिष्य, श्रद्धालु भक्त देख चुके हैं।'

'आचार्य अब प्रयाग की ओर यात्रा करने जाएंगे, हम भी उनके साथ इस धर्मपदयात्रा में सम्मिलित होंगे भाई।'

'तुम जाओगे, उनके साथ', श्रद्धालु के मित्र ने हंसते हुए कहा, 'जरा-सा कष्ट तो सहन कर नहीं सकते, करेंगे पदयात्रा!'

'अजी सरल समझ लिया है इसे, कितनी कठिनाई और कष्ट झेलते हैं यह धर्म प्रचार पदयात्री, तुम्हें अपने निवास-स्थल पर बैठे हुए वह कष्ट क्या प्रतीत होगा।'

'बंधु! बड़े हृदय वाले, दृढ़ विश्वासी और धर्मप्रेमी ही दूसरों के लिए इतना कष्ट झेल सकते हैं, प्रत्येक मनुष्य दूसरों के लिए इस प्रकार बिना स्वार्थ के कोई कष्ट झेल नहीं सकता।'

'सच, क्या आचार्य अब यहां से प्रयाग जाने की तैयारी कर रहे हैं?'

'तो तुम झूठ समझ रहे थे, मित्र संन्यासी कहीं स्थिर निवास बनाकर नहीं बैठ सकते, यह तो शंकराचार्य ने ही संन्यासियों के लिए नियम बनाया है।'

'एक मास व्यतीत हो गया उनके चरणों की धूलि लेते, उनके जाने का नाम सुनकर मन में टीस-सी उठती है। उनकी सरल मोहिनी मुस्कराहट उनकी ओर खींचती है बंधु!'

'इस समय तीन हजार शिष्य श्रद्धालु भक्त उनके साथ इस धर्मप्रचार पदयात्रा में सम्मिलित होकर प्रयाग की ओर जा रहे हैं।'

'तुम्हें याद है बंधु, कई वर्ष पूर्व यह शंकराचार्य कुमारिलभट्ट से शास्त्रार्थ करने के लिए प्रयाग में भी आए थे।'

'अजी जब तो वह भट्टपाद के निर्देशानुसार तुरंत प्रयाग छोड़कर माहिष्मती की ओर चल दिए थे।'

'मंडन मिश्र को शास्त्रार्थ में पराजित करना उस समय उनका ध्येय था। वही मंडन मिश्र शंकराचार्य से शास्त्रार्थ में पराजित होकर संन्यासी बन गए मित्र।'

'शंकराचार्य से संन्यास की दीक्षा लेकर वह संन्यासी सुरेश्वराचार्य कहलाने लगे।'

'बड़े विद्वान पंडित कर्मकांडी, मंडन मिश्र जैसे शंकराचार्य के शिष्य बन गए, औरों की गणना किसमें है।'

'बाल्यकाल से ही जो प्रतिभाशाली शास्त्रज्ञाता बन गया था, उस अथाह ज्ञान सागर की कौन थाह पा सकता है मित्र।'

'मैंने तो निर्णय कर लिया, अवश्य इस धर्म पदयात्रा में सम्मिलित होकर उनके साथ जाऊंगा।'

'देखो बंधु उनके शिष्य अनुयायी अपना निवास-स्थान छोड़कर प्रयाग-यात्रा के लिए चल पड़े हैं।'

'मैं अभी उनके साथ चलने की तैयारी करके उनके साथ जा रहा हूं बंधु', श्रद्धालुओं के सहयोगी ने अपने साथियों को प्रणाम किया और लम्बे डग भरता हुआ एक ओर चल दिया। जिस मार्ग से शंकराचार्य आगे बढ़ते श्रद्धालु उनके दर्शन करने के लिए मार्ग में एकत्र हो जाते।

शंकराचार्य के शिष्य श्रद्धालु भक्त, संन्यासी, समूह-के-समूह शंकराचार्य का जयघोष करते हुए उस मार्ग से निकलते।

श्रद्धालु, शंकराचार्य का जयघोष करते हुए उन पर पुष्पवर्षा करते और उनकी चरणरज मस्तक से लगाकर अपने भाग्य की सराहना कर रहे थे।

शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित त्रिवेणी संगम के प्रयाग तीर्थ में पहुंच गए।

प्रयाग तीर्थ में संगम-स्थल के समीप ही अपने शिष्यों सहित शंकराचार्य ठहर गए।

प्राचीनकाल से ही प्रयाग, तीर्थराज ही नहीं, धर्म और संस्कृति का प्रसिद्ध केंद्र भी था।

अनेक विभिन्न धर्ममतावलम्बी इस पवित्र तीर्थ में मुक्ति कामना लिए निवास करते थे।

शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित प्रयाग तीर्थ मे आए हैं। यह समाचार सुनते ही विभिन्न मतों के पंडित विद्वान अपने मत की प्रतिष्ठा के लिए शंकराचार्य से शास्त्रार्थ करने के लिए आने लगे।

शंकराचार्य ने सभी को शास्त्र युक्ति द्वारा उनके मतों की अपूर्णता समझा दी।

'शंकराचार्य से शास्त्रार्थ में विजयी होना असंभव है' सोचते हुए वह शांत होकर चले गए।

'शास्त्रार्थ में इतने शास्त्रज्ञाता, अथाह ज्ञानभंडार हमसे पराजित नहीं हो सकते।'

# 41

प्रयाग में विद्वान पंडितों को शास्त्रार्थ में पराजित करके, श्रद्धालुओं को सद्उपदेशों से कृतार्थ करते हुए, शंकरचार्य प्रयाग से वाराणसी की ओर चल पड़े।

मार्ग में श्रद्धालु, तेजस्वी संन्यासी के दर्शन करके, उनकी चरण-वंदना करते हुए जयघोष करते।

'बंधु यह युवा तेजस्वी संन्यासी अपने दर्शन देकर हम सबको धन्य कर रहा है।' एक-दूसरे से वार्तालाप करते हुए श्रद्धालु जाते हुए शंकराचार्य को तब तक देखते रहते जब तक वह आंखों से ओझल नहीं हो जाते। फिर एक-दूसरे से कहते, 'मित्र! मन नहीं भरता उनके दर्शनों की लालसा बनी रहती है।

'भाई! उनका शास्त्रज्ञान समुद्र के समान असीम है। उनका जीवन व चरित्र आकाश के समान निर्मल उच्च है।'

'बंधु! उनके विराट व्यक्तित्व का प्रभाव इसी कारण सभी पर अनूठा पड़ता है।'

'काशीपति विश्वेश्वर की दिव्य प्रेरणा उन्हें अधिक समय समाधि अवस्था में नहीं रहने देती, उनके मन को जीव कल्याण में लगा रही है।'

'मित्र! वे समाधि अवस्था में जितने समय तक रह सकते हैं, बड़े-बड़े त्यागी-संन्यासी उतने समय उस समाधि अवस्था में नहीं रह सकते, पर उन्होंने तो धर्म उद्धार का जो व्रत लिया है उसके लिए उन्हें जीव भूमि में अधिक समय रहना पड़ता है।'

'देव अंश आत्मा लोककल्याण परोपकार के लिए ही जन्म लेती है।' यह कहते हुए वे चले जाते।

काशी नगरी में प्रवेश करते ही शंकराचार्य पहले विश्वेश्वर मंदिर में गए।

वहां पर उस समय तीर्थयात्रियों की भीड़ पहले से ही एकत्र थी। कोई स्तुति

पाठ कर रहा था, कोई प्रार्थना में मग्न हुआ देवता की उपासना कर रहा था।

श्रद्धालु भक्तिभाव से इष्ट की पूजा करके उन्हें प्रसन्न करने का यत्न कर रहे थे।

शंकराचार्य थोड़ी देर खड़े हुए उस भक्तिपूर्ण वातावरण का आनंद लेते रहे फिर विश्वेश्वर की पूजा में लीन हो गए।

उनकी भक्ति, भाव तल्लीनता, श्रद्धालुओं के हृदय में अनूठा आनंद भरने लगी।

शंकराचार्य विश्वेश्वर मंदिर में पूजा करने गए हैं, यह सुनते ही अनेक श्रद्धालु शंकराचार्य के दर्शन के लिए मंदिर में एकत्र हो गए और शंकर रूप शंकराचार्य की ओर अपलक देखते रह गए।

विश्वनाथ की पूजा करके शंकराचार्य, मणिकर्णिका के समीप आकर ठहर गए। (उस समय यहां श्मशान नहीं था) काशी के प्रधान पंच तीर्थों में मणिकर्णिका मुक्तिप्रद प्रसिद्ध तीर्थ था।

पुराण के मत से उसे स्वयं विष्णु भगवान् ने अपने सुदर्शन चक्र से खोदा था।

शिवपुराण के मत में विष्णु के मणिकुंडल शिव के सामने गिर जाने के कारण उस स्थान का नाम मणिकर्णिका हुआ।

शंकराचार्य मणिकर्णिका के समीप ठहर गए। उनके शिष्यों के निवास का प्रबंध पवित्र गंगा तट के विभिन्न स्थानों पर किया गया।

शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित काशी पधारे हैं। यह समाचार वायु की तेजी जैसा चारों ओर फैल गया।

सहस्रों श्रद्धालु नर-नारी उनके दर्शन करने के लिए मणिकर्णिका आने लगे।

काशी में योगी, यति, साधक अनेक विद्वान पंडितों का निवास था।

सभी देवताओं के उपासक विभिन्न धर्मवाले काशी में मोक्षलाभ की आशा की आशा से निवास कर रहे थे।

विभिन्न मतावलम्बी पंडितों की आपस में स्पर्द्धा भी थी।

शंकराचार्य से शास्त्रार्थ करने के लिए अनेक विद्वान पंडितों ने सभा करके उसमें उन्हें बुलाया।

आचार्य ने सभी मतों का खंडन करके, तर्कशास्त्र युक्ति-प्रमाण देकर, सबके सामने अद्वैतवाद की श्रेष्ठता प्रमाणित की।

महालक्ष्मी के उपासक, सरस्वती के उपासक, कर्मवादी मीमांसक, 'विश्वावसु' नामक गंधर्व के उपासक और काशी के उस समय के प्रधान पंडित, भास्कर, गुप्त, मिश्र, विद्येंदु आदि आचार्य से शास्त्रार्थ करके पराजित हो गए।

उन्होंने शंकराचार्य के शास्त्रसम्भत सद्उपदेश सुनकर अद्वैत-ब्रह्मतत्त्व का उपदेश ग्रहण किया।

थोड़े समय में ही उस तरुण यती शंकराचार्य की अलौकिक प्रतिभा का प्रभाव देखकर काशी निवासी आश्चर्य से भर गए।

शंकराचार्य के शिष्य पद्मपाद, सुरेश्वराचार्य, हस्तामलक आदि अनेक शिष्यों ने भी भ्रांत मतवादियों को शास्त्रार्थ में पराजित करके, उन्हें वेदपरायण बनाया।

ब्रह्म ही विश्व का उपादान, ब्रह्म ही विश्व का कारण और ब्रह्म ही ईश्वर है। यह वेदांत का सार मर्म (तत्त्व) चारों ओर प्रचारित होने लगा।

इस प्रकार शंकराचार्य की अद्वैत-ब्रह्मविद्या काशी में और काशी के दूर-दूर स्थानों में फैल गई।

थोड़े दिनों में हिंदू धर्म और संस्कृति के प्रधान केंद्र वाराणसी के साधकों में और पंडितों की विचारधारा में महान परिवर्तन हो गया।

पंडित और दार्शनिक एकाग्र मन से वेदांत का अध्ययन करने लगे।

संस्कृत पाठशालाओं में वेदांत शास्त्र का पढ़ना-पढ़ाना आरंभ हो गया।

शंकराचार्य लिखित भाष्यादि लिपिबद्ध हुए, पंडित रुचि से उन ग्रंथों का अध्ययन करने लगे।

वाराणसी के विभिन्न सम्प्रदायों के साधकगण शंकराचार्य से सद्-उपदेश पाकर साधना-भजन में लग गए।

शंकराचार्य वाराणसी में आध्यात्मिक भावस्रोत बहाकर सौराष्ट्र की ओर चल पड़े।

मार्ग में जिस स्थान पर शंकराचार्य शिष्यों सहित विश्राम के लिए रुकते, श्रद्धालुओं की भीड़ उनके दर्शन को एकत्र हो जाती।

अनेक ब्राह्मण पंडित आचार्य के अनुयायी बनकर उनके साथ चलने को तैयार हो गए।

शंकराचार्य पंचदेवता की पूजा-अर्चना का साधारण जनता में प्रचार करने के लिए पूजा की शिक्षा देने के लिए उन ब्राह्मणों को देवालयों में नियुक्त करते जा रहे थे।

श्रद्धालु धनी धर्मप्रेमी मनुष्य से आचार्य ने अनेक स्थानों में संस्कृत विद्यालयों की स्थापना कराई।

संन्ध्या समय जिस स्थान में विश्राम के लिए आचार्य शिष्यों सहित ठहरते, श्रद्धालु दर्शनार्थियों की भीड़ वहां एकत्र हो जाती।

'क्या दिग्विजयी शंकराचार्य यहां पधारे हैं—एक-दूसरे से पूछते, 'किस स्थान पर विश्राम कर रहे हैं।'

'अपने शिष्यों सहित देवालय में विश्राम के लिए ठहरे हैं', सुनते ही श्रद्धालु शंकराचार्य का जयघोष करते, उनकी चरणवंदना करने के लिए उस स्थान पर पहुंच जाते।

सौम्य मूर्ति शंकराचार्य के दर्शन करके, उनकी चरणरज मस्तक से लगाकर हर्षविभोर हो जाते।

रात्रि विश्राम करके, प्रातःकाल आवश्याक कार्यों से निपटकर, शंकराचार्य शिष्यों सहित आगे की ओर चल पड़ते।

कई दिनों तक इसी प्रकार पदयात्रा करते—श्रद्धालुओं को अपने दर्शन से कृतार्थ करते हुए शंकराचार्य अवंती देश की राजधानी उज्जयिनी नगर में पहुंच गए।

'दिग्विजयी शंकराचार्य उज्जयिनी आ रहे हैं', यह सूचना सुनते ही, नागरिकों ने नगर को ध्वजापताकाओं से सजाकर आचार्य के स्वागत की तैयारी की।

राजा अपने विद्वान ब्राह्मण पंडित राजकर्मचारियों सहित शंकराचार्य के स्वागत के लिए आए।

महाकाल के प्रसिद्ध मंदिर के विशाल मंडप में उनके ठहरने का प्रबंध किया गया।

शंकराचार्य देवदर्शन के लिए मंदिर में गए। पूजा का समय हो रहा था। घंटा-घड़ियाल, मृदंग-डमरू का शब्द मंदिर में गूंजने लगा।

धूप अगरु आदि की सुगंध चारों ओर फैल गई। शंकराचार्य ने महाकाल महादेव की एक सुंदर स्तोत्र द्वारा आराधना की और ध्यानमग्न हो गए।

'शंकराचार्य महाकाल मंदिर में पधारे हैं', सुनते ही श्रद्धालु उनके दर्शन करने के लिए वहां एकत्र होने लगे।

देव-दर्शन के साथ ही तेजस्वी यतीवर के दर्शन कर सभी ने अपने को धन्य माना।

पूजा समाप्त होने पर शंकराचार्य मंदिर के मंडप में विश्राम के लिए आ गए।

उज्जयिनी नगर के प्रसिद्ध पंडित भास्कर को शास्त्रार्थ के लिए शंकराचार्य ने बुलाया।

नियत समय पर अनेक विद्वान पंडितों सहित भास्कर महाकाल के मंदिर में पहुंच गया।

अनेक श्रद्धालु ब्राह्मण पंडित भी आचार्य और पंडित भास्कर का शास्त्रार्थ सुनने, आचार्य के दर्शन करने के लिए महाकाल मंदिर में एकत्र हो गए।

शास्त्रार्थ आरंभ हुआ, विरोधी पक्ष प्रबल युक्ति प्रमाण दे रहा था। शंकराचार्य युक्तिपूर्ण तर्कों द्वारा शास्त्रों के प्रमाण देकर उसे विफल कर रहे थे।

# 42

शास्त्रार्थ में आचार्य के युक्तिपूर्ण तर्कों के सामने भास्कर अपने मत का युक्तिपूर्ण समर्थन न कर सके।

सभा के पंडितों ने आचार्य की विजय-घोषणा कर दी। श्रद्धालु भक्तों ने शंकराचार्य के जयघोष से मंदिर के मंडप को गुंजा दिया।

भास्कर पंडित सिर झुकाकर सभा से अपने निवास-स्थल पर चले गए।

शंकराचार्य अवंती प्रदेश के अनेक स्थानों का भ्रमण करते हुए अनेक विभिन्न सम्प्रदाय के विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित करते हुए सौराष्ट्र (प्राचीन कम्बोज) में पहुंचे।

वहां के प्रसिद्ध तीर्थ गिरिनार, सोमनाथ प्रभास आदि के दर्शन करके उन सभी स्थानों में वेदांत की महिमा की प्रतिष्ठा करते हुए द्वारका पहुंचे।

यह सभी स्थान भगवान् कृष्ण के स्मृति चिह्न लिए प्राचीन तीर्थ हैं।

वहां उस समय जैन बौद्धों का विशेष प्रभाव था। शंकराचार्य की अलौकिक शक्ति अथाह शास्त्रज्ञान की चर्चा पहले ही पहुंच चुकी थी।

इसी कारण कोई विभिन्न मताबलम्बी आचार्य से शास्त्रार्थ करने के लिए उनके समीप नहीं आया।

श्रद्धालुओं ने सभी स्थानों में शंकराचार्य का जयघोष करते हुए वेदांत की प्रतिष्ठा की।

शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित प्रभास से समुद्रतट के मार्ग से द्वारका पहुंचे थे।

श्रद्धालुओं ने मार्ग में ही खड़े होकर जयघोष करते हुए उनका स्वागत किया।

पवित्र गोमती तीर्थ में स्नान करके, शंकराचार्य द्वारकाधीश के मंदिर में गए

और उन्होंने वहां ध्यानमग्न होकर श्रीकृष्ण भगवान् की पूजा की।

श्रद्धालुओं की भीड़ शंकराचार्य के दर्शन के लिए एकत्र हो गई और उनका जयघोष करते हुए सद्उपदेश सुनाने की प्रार्थना करने लगी।

उन्होंने सभी को मधुर वचनों द्वारा उपदेश देकर कृतार्थ किया और द्वारकापुरी से कोकण, गुर्जर (गुजरात) और पुष्कर तीर्थ आदि स्थानों में होते हुए सिंधु देश में पहुंचे।

विभिन्न मतावलम्बी आचार्य के दर्शन करने और उपदेश सुनने के लिए एकत्र हुए।

शंकराचार्य के वहां आने से पहले ही उनकी प्रतिभा अलौकिक घटनाओं की सूचना, पहुंच चुकी थी।

शंकराचार्य के दर्शन श्रद्धालु भक्त मंत्रमुग्ध-से उनकी ओर देखते रह गए। शंकराचार्य ने वेदांत की व्याख्या करके समझाते हुए उन्हें अद्वैत मत की ओर आकर्षित किया।

सिंधु प्रदेश में धर्म-प्रचार कार्य करते हुए आचार्य बाहिलक देश पहुंचे। वहां अनेक विभिन्न मतावलम्बियों से उनका शास्त्रार्थ हुआ।

शंकराचार्य को कोई विद्वान पंडित शास्त्रार्थ में पराजित न कर सका। (उन देशों के निवासी पहले हिंदू ही थे, अनेक उदाहरण व उपकरण मिले हैं।)

शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित अद्वैत मत की प्रतिष्ठा करते हुए काश्मीर की ओर चले।

ऊंची-ऊंची पर्वतश्रेणियां जिनकी गोद से निकलती नन्हीं नदियां, जो मैदानों में जाकर अपना इतना विस्तार फैलाती हैं जिन्हें पार करना कठिन हो जाता है।

वह पर्वतीय गुफाओं से छोटी-सी धारा में निकलकर बालकों की तरह उछलती-कूदती पर्वत कंदराओं की गोद में खेलती आगे बढ़ी जा रही थीं।

चीड़ देवदार जंगली सुगंध भरी झाड़ियों वायु के झोकों से झूमती ऐसी प्रतीत हो रही थीं जैसे दिग्विजयी शंकराचार्य की धर्म-प्रचार सफलता पर ताल देकर नृत्य कर रही हों।

मुस्कराकर शंकराचार्य ने उस प्रकृति नटी की लीला को देखा और आगे की ओर बढ़ गए।

कहीं शीश ऊंचा किए हिम का मुकुट पहने मार्ग में खड़े थे। कहीं ऊंची-नीची घाटियां उन्हें रुक-रुककर चलने को विवश कर रही थीं।

पद्मपाद ने मुस्कराते हुए सुरेश्वराचार्य की ओर देखा, 'तुमने प्रकृति नटी की लीला देखी भाई, कैसा सुंदर वेश धारे मोहिनी माया फैलाए बैठी है।'

'कही भंयकर वेश धारे आगे बढ़ने से रोक रही है, पद्मपाद, उस नटवर की अदृश्य शक्ति से ही यह प्रकृति नटी अनूठे रूप धारण कर रही है।'

अभी सुरेश्वराचार्य कुछ कहना चाहता था तभी उसके पांव में एक चट्टान से चोट लग गई।

सुरेश्वराचार्य ने अपना डंडा एक ओर रखते हुए पद्मपाद की ओर देखा, 'देखा पद्मपाद यह प्रकृति नटी शिक्षा भी देती है, व्यर्थ बातों में समय नष्ट न करो देखकर चलो।'

'देखकर चलते हैं फिर भी यदि असावधानी से चोट लग जाए बंधु, तब क्या करें। तुम्हें तो ज्ञात ही है। मामा ने मुझे कितनी चोट पहुंचाई थी।

'यदि गुरुदेव मुझ पर कृपा न करते तब क्या मेरा जीवन व्यर्थ ही नहीं जाता?'

'ठीक कह रहे हो पद्मपाद, ऐसा समय भी जीवन में आता है, देख-देखकर चलने पर भी दुर्घटना हो जाती है। पर हम सभी को यह उपदेश देते हैं—संभलकर चलो।'

'बंधु किसी को किसी विषय पर उपदेश देना सरल है पर उस विषय उपदेश को स्वयं के जीवन में उतारना किसी विरले मानव का ही कार्य होता है।'

'हमारे आचार्य जो उपदेश देते हैं, उनको पहले अपने जीवन में प्रयोग करते हैं, पद्मपाद तुम्हें तो उनके साथ रहते अधिक समय व्यतीत हो गया तुम भलीभांति जानते होगे।'

बंधु! गुरुदेव ने पहले अपने जीवन में शिक्षाप्रद बातें, सदाचार, संयम, मन की एकाग्रता, विरोधी से भी प्रेम करके दिखाया, तभी उनका प्रभाव अब दूसरों पर प्रत्यक्ष देख रही हो।'

'पद्मपाद! आचार्य ने 'तत्त्वमसि' महावाक्य का उपदेश देकर मेरे हृदय में परम तत्त्वज्ञान उत्पन्न करने के लिए जो सारगर्भित शिक्षा दी थी, वही 'तत्त्वोपदेश' नामक एक छोटे ग्रंथ में संकलित है।'

'पूर्वजन्म में ऐसा शुभकर्म हुआ; जिससे गुरुदेव के चरणों में हमें शरण मिली बंधु, हमारे गुरुदेव देव अंश हैं यह तो तुम भी जानते हो।'

'हां पद्मपाद, उनकी अलौकिक घटनाएं इन नेत्रों से देख चुका हूं', सुरेश्वराचार्य ने आगे बढ़कर मुस्कराते हुए कहा, 'लो अब हम काश्मीर के अंतर्गत शारदापीठ के समीप पहुंच चुके हैं।'

'यह स्थान भारतीय संस्कृति का इस समय प्रधान केंद्र है', पद्मपाद ने अपने शिष्यों को वहां ठहरने का संकेत देते हुए कहा, 'यहां शारदापीठ में वाग्देवी सरस्वती का प्रसिद्ध देवालय है।'

'हमने सुना है गुरुदेव! यहां सर्वज्ञपीठ नाम से एक पीठ स्थापित है?'

'हां, जो सर्वज्ञ हैं वही सर्वज्ञ इस पीठ पर बैठने के अधिकारी हैं।'

'गुरुदेव! आपने बताया था, सर्वशास्त्र विशारद पराविद्या निपुण, ब्रह्मज्ञान में प्रतिष्ठित मानव ही सर्वज्ञ है। हमारे पूज्य गुरुदेव सर्वज्ञ हैं।'

'वत्स सर्वज्ञपीठ पर बैठने के अधिकारी का निर्णय यहां होगा', पद्मपाद ने अपने शिष्यों को समझाते हुए कहा, 'यहां भारत के विभिन्न स्थानों से आए हुए प्रसिद्ध पंडितगण इस पवित्र पीठ की रक्षा कर रहे हैं।'

सर्वज्ञपीठ पर बैठने की आकांक्षा से जो यहां आते हैं, उन्हें उस शारदा देवी के मंदिर चारों द्वारों पर बैठे हुए सभी संप्रदाय के पंडितों को शास्त्रार्थ में परास्त करना पड़ता है।'

सुरेश्वराचार्य ने पद्मपाद व उनके शिष्यों की ओर देखते हुए कहा, 'और पंडित-मंडली की सम्मति से ही मंदिर में प्रवेश का अधिकार मिलता है।'

'देवी शारदा देववाणी द्वारा सर्वज्ञ घोषित करती हैं। तभी वह विद्वान पंडित सर्वज्ञपीठ पर बैठने का अधिकारी माना जाता है।'

'बंधु हमने सुना है—दूर-दूर देश के अनेक विद्वान पंडित शारदापीठ पर बैठने के अधिकारी बनने के लिए यहां आए?' पद्मपाद ने सुरेश्वराचार्य की ओर देखते हुए कहा, 'पर सफलता किसी को नहीं मिली, कोई पंडितों से हार गया, कोई भाग्यशाली पंडितों से शास्त्रार्थ में विजयी हो गया, तब उस देवी शारदा ने देववाणी द्वारा सर्वज्ञ घोषित नहीं किया।'

'हमारे गुरुदेव इस शारदापीठ पर अवश्य बैठेंगे देख लेना। अब सब विश्राम करो।'

शारदा देवी के मंदिर के समीप दिग्विजयी शंकराचार्य पधारे हैं। सहस्रों शिष्य उनके साथ हैं। यह समाचार चारों ओर फैल गया।

पंडितों में हलचल मच गई, क्या शंकराचार्य हमसे विजयी होंगे, जब तक यहां के पंडितों को शास्त्रार्थ में पराजित न करेंगे, तब तक देवी शारदा के मंदिर में न जा सकेंगे।

देवी शारदा देववाणी द्वारा जब तक उन्हें सर्वज्ञ उपाधि नहीं देंगी हम उनका मत ग्रहण नहीं करेंगे।

शंकराचार्य ने पंडितों का आपस में ही कर रहे वाद-विवाद को सुना, प्रधान शिष्यों ने शारदा देवी के मंदिर में जाने का आग्रह किया। शंकराचार्य मुस्कराते हुए मंदिर की ओर चल पड़े।

# 43

शंकराचार्य शारदापीठ के अधिकारी बनने के योग्य हैं। उन्हें अवश्य शारदा देवी के मंदिर मे जाने देना चाहिए।

श्रद्धालु शंकराचार्य का जयघोष करते हुए उनसे मंदिर में जाने का अनुरोध कर रहे थे। बड़ा कोलाहल मचा हुआ था। नगरवासी शंकराचार्य के मंदिर की ओर जाने का समाचार सुनकर उसी ओर भागे हुए जा रहे थे।

स्थानीय पंडित शंकराचार्य के मंदिर में आने का समाचार सुनकर अधिक घबराए और मंदिर के चारों द्वारों पर विभिन्न मतालम्बी विद्वानों को एकत्र कर दिया।

शंकराचार्य, पद्मपाद, सुरेश्वर, हस्तामलक, आनंदगिरि (तोटक) आदि प्रधान शिष्यों को लेकर मंदिर के मुख्य द्वार पर आ पहुंचे।

मुंडित शीश, हाथ में दंडकमंडलु, गेरुए वस्त्र धारण किए सुंदर तरुण दिग्विजयी शंकराचार्य को मंदिर के समीप आते हुए देखकर श्रद्धालु दर्शक जयघोष करने लगे।

उनके जयघोष चारों ओर गूंजने लगे। शंकराचार्य के प्रधान शिष्य उनके साथ-साथ चल रहे थे। बाकी दूर खड़े दर्शक बने वह अनूठा दृश्य देख रहे थे।

शंकराचार्य मुख्य द्वार पर पहुंचकर खड़े हो गए।

शंकराचार्य को मंदिर में जाने को तैयार देखकर विरोधी विद्वान पंडितों ने उनकी ओर देखते हुए उनसे पूछा, 'यतीवर! आप जो महान सम्मानजनक अधिकार प्राप्त करने के लिए यहां पधारे हैं, जिस कार्य का साधन करने पर इस मंदिर में प्रवेश का अधिकार मिलता है क्या वैसी योग्यता आप में है? क्या आप सर्व शास्त्रज्ञ अर्थात् सर्वज्ञ हैं?'

मैं सभी शास्त्रों का ज्ञाता हूं, मेरे लिए कुछ भी अज्ञात नहीं', शंकराचार्य ने

विद्वान पंडितों की ओर देखते हुए कहा, 'जिसकी इच्छा हो वह परीक्षा ले सकते हैं।'

'ठीक है, आप परीक्षा में उत्तीर्ण होकर मंदिर में प्रवेश कर सकते हैं', विद्वान पंडित विभिन्न मतावलम्बी, शंकराचार्य से शास्त्रार्थ करने को तैयार हो गए।

उन्होंने अपने मत की विशेष-विशेष बातें, सिद्धांत शंकराचार्य से पूछें। शंकराचार्य ने सभी का यथोचित उत्तर दिया।

चारों द्वारों पर विभिन्न मतावलम्बी, विद्वानों ने शंकराचार्य से जो प्रश्न पूछे, शंकराचार्य ने ऐसे युक्तिपूर्ण उत्तर दिए, वे आश्चर्य से उनकी ओर देखते रह गए।

विभिन्न धर्मों के विषय में भी आचार्य को इतना गूढ़ ज्ञान है, वह अथाह ज्ञान सागर हैं। उन्हें मंदिर के भीतर जाने का पूर्ण अधिकार है। यह सोचकर विभिन्न धर्मावलम्बी विद्वानों ने आचार्य के अथाह ज्ञान के आगे मस्तक झुका दिया।

शंकराचार्य शास्त्रार्थ में विभिन्न धर्मावलम्बी विद्वानों को पराजित करके आगे बढ़े।

विद्वान पंडितों ने शंकराचार्य का सम्मान करके मंदिर का द्वार खोल दिया। मंदिर के आंगन में श्रद्धालु जनता की भीड़ एकत्र होकर शंकराचार्य का जयघोष करने लगी। अनेक प्रकार के वाद्ययंत्रों से शब्द चारों ओर गूंजने लगे।

आचार्य पहले मंदिर के पास वाले कुंड के समीप पहुंचे और उन्होंने उस पवित्र जल को लेकर पी लिया। फिर शारदा देवी की, सुंदर छंदोबद्ध स्तोत्र की रचना से स्तुति की।

उसी समय गंभीर देववाणी सुनाई दी, 'वत्स शंकर मैं प्रसन्न हूं, तुम्हें सर्वज्ञ उपाधि से विभूषित करती हूं। तुम्हीं इस पीठ के योग्य पात्र हो।'

देववाणी मंदिर में गूंज उठी। सभी श्रद्धालु आश्चर्य से भर गए शंकराचार्य के हृदय में अनूठा आनंद भर गया।

वह धीरे-धीरे शारदापीठ पर चढ़कर सुखासन से बैठ गए और ध्यान-मग्न होकर शारदा देवी की स्तुति करने लगे।

उस मणिमुक्ता से सजे हुए पीठ पर बैठकर शंकराचार्य ने देवी शारदा के स्वरूप और महिमा का भक्तिपूर्ण कीर्तन किया।

श्रद्धालु भक्तों ने आनंदमग्न होकर उसमें भाग लिया। चारों ओर भक्तिभावपूर्ण कीर्तन-पूजा की चर्चा होने लगी।

'शंकराचार्य शारदा देवी के सर्वज्ञपीठ पर बैठे हैं। आज तक किसी विद्वान को यह अधिकार देवी की ओर से नहीं मिला था।'

'शंकराचार्य को शारदा देवी ने स्वयं देववाणी द्वारा सर्वज्ञ उपाधि दी है।'

'मित्र! शंकराचार्य विशेष सम्मान के अधिकारी हुए। अद्वैत मतवाद को भी विशेष महत्त्व मिल गया।'

'अब तो आचार्य, धर्मप्रेमी योग्य अधिकारियों को दीक्षा दे रहे हैं।'

'हम भी उनसे दीक्षा लेकर अपना जीवन सुधार लें मित्र, आधी आयु तो व्यर्थ के झंझटों में गंवा दी।'

'अब भी समय है भाई चलो, उनके सद्उपदेशों से अपने मन को पवित्र करें।'

'शंकराचार्य का यहां थोड़े दिन का ही निवास है मित्र, उनके शिष्य कह रहे थे कश्मीर के विशेष स्थानों का भ्रमण करते हुए श्रीनगर जाएंगे।'

'समय का सद्उपयोग करो मित्र, इस थोड़े समय में ही अद्वैत-ब्रह्मात्म तत्त्व की व्याख्या उन्होंने ऐसी सरलता से की, थोड़े ज्ञानवालों की भी समझ में आ गई।'

'हम प्रतिदिन उनके समीप जाकर उनके सदुपदेशों का आनंद लूटेंगे। अभी तक भ्रम अंधविश्वास पाखंड में फंसे हुए छटपटा रहे थे।'

'तुमने उनकी वह गूढ़ रहस्यभरी बातें सुनीं धर्म विषय प्रश्न पर जब उन्होंने जो उत्तर दिया था वह भी सुना, या नशे में झूम रहे थे।'

'नशा तो मैंने उनके दर्शन करते ही त्याग दिया, कैसी सौम्य मूर्ति है, आंखें उनके दर्शन से तृप्त ही नहीं होतीं। धर्म विषय पर जो मैंने सुना सभी धर्मों के प्रति एकता के प्रतीक वाक्य, आनंद आ गया—उन्होंने कहा विभिन्न रुचिवाले अधिकारियों के लिए भिन्न-भिन्न मार्ग हैं, उद्देश्य दोनों का एक ही है।'

इस प्रकार शंकराचार्य की ज्ञान-प्रतिभा की चर्चा चारों ओर फैल चुकी थी।

ज्ञान-सम्मान के उच्चतम शिखर पर वे पहुंच चुके थे।

शारदापीठ के सर्वज्ञ अधिकारी बनने के कारण, सर्वमतावलम्बी योगी, यती, पंडितों ने उनके पवित्र व्यक्तित्व, अथाह ज्ञान और परोपकारी त्याग भरे जीवन के सामने सिर झुका दिया था।

जिन्हें सरस्वती ने सर्वज्ञ रूप से घोषित किया, मंडन मिश्र ने, जिन्हें ब्रह्मावतार कहते थे—उन्होंने भी आचार्य के अथाह ज्ञान प्रतिभा के आगे सिर झुकाकर शिष्यत्व स्वीकार कर लिया था।

वह शंकरावतार शंकराचार्य शारदापीठ पर बैठने का अधिकार प्राप्त करके, यतिश्रेष्ठ शंकर पण्डित श्रेष्ठ बन गए।

इस प्रकार उनकी दिग्विजय संपूर्ण हुई, शारदापीठ के अधिकारी बनने की घटना के पश्चात् उनके अद्वैतवाद ने सारे दार्शनिक मतवादों से ऊपर उठकर उन पर अधिक प्रभाव डाला था। जिससे सारे भारत के धार्मिक स्थानों में हलचल मच गई थी।

विभिन्न धर्म लोप होने लगे थे। सनातन वैदिक धर्म सर्वत्र फैलने लगा था।

शंकराचार्य के त्यागमय जीवन और अथक धर्म-प्रचार यात्रा के प्रभाव से ही भारतभूमि में पवित्र वेदांत धर्म सनातन धर्म स्थिर रह सका।

शारदापीठ से चलकर शंकराचार्य काश्मीर के अनेक स्थानों का भ्रमण करते हुए काश्मीर की राजधानी श्रीनगर पहुंचे।

शंकराचार्य श्रीनगर की ओर आ रहे हैं—यह समाचार वायु की गति जैसा चारों ओर फैल गया।

श्रद्धालु जनता मार्ग में एकत्र होकर उनके आने की प्रतीक्षा करने लगी।

काश्मीर के अनेक स्थानों का भ्रमण करते हुए शंकराचार्य श्रीनगर पहुंच गए।

श्रद्धालु नर-नारियों ने उनके जयघोष से वहां का स्थल गुंजा दिया। श्रद्धालुओं को दर्शन देते हुए आचार्य, पर्वत पर बने हुए शिव मंदिर के देवदर्शन के लिए चल पड़े।

देवाधिदेव के दर्शन करके, उनकी पूजा करके आचार्य पर्वत पर बने हुए देवी के मंदिर में गए।

वहां अनेक श्रद्धालु देवी के उपासक साधक साधना, देवी पूजा के लिए मंदिर के समीप बने हुए कुंड के समीप निवास करते थे।

सभी श्रद्धालु आचार्य को मंदिर की ओर जाते हुए देखकर उनके साथ ही देवीपूजा-स्थल पर पहुंच गए।

शंकराचार्य ने देवी वंदना की, सुललित स्तोत्र के द्वारा देवी की महिमा का कीर्तन करने लगे।

देवी! शिव यदि शक्ति युक्त होते हैं, तभी वे सृष्टि स्थिति और संहार करने में समर्थ होते हैं।

इस कारण संसार के सृष्टि-स्थिति-संहार के लिए ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता आपकी ही आराधना करते हैं। अतः मेरे जैसा पुण्य रहित व्यक्ति कैसे प्रणाम या आपकी स्तुति कर सकेगा।

आप ज्ञानहीन व्यक्तियों के अंतःकरण का अंधकार दूर करती हैं। जड़-बुद्धि वाले अविवेकी लोगों का मोह सूर्य के द्वारा अंधकार की तरह आप ही नष्ट करती हैं। संसार समुद्र में निमग्न विषयासक्त मनुष्यों के लिए आप वाराहरूपी विष्णु के वसुधा-उद्धारक दंत स्वरूप हैं।

अर्थात् वाराहरूपी विष्णु के दंत ने जिस प्रकार वसुधा का उद्धार किया था, उसी प्रकार आप भी विषयासक्त व्यक्तियों का उद्धार करती हैं।

'हे जननि! दीप शिखा के द्वारा जिस प्रकार सूर्य की आरती की जाती है, चंद्रकांत मणि के जल से जिस प्रकार समुद्र की पूजा होती है उसी प्रकार आपके प्रदत्त वाक्यों द्वारा ही आपका वाङ्मय स्तोत्र रचा गया।

जिनके चरण नूपुरों से शोभित हैं, जिनके शरीर के मध्य भाग में त्रिवली अंकित है, हार से ग्रीवा शोभायमान है। कमलदल के समान जिनके तीन नेत्र हैं। जो लीलामयी हैं।

जिनका नाम हिमाचल कन्या है और जो ईश्वर रूप वर्तिका के द्वारा प्रदीप्त प्रकाशित ज्ञानमय दीप हैं। मैं बारम्बार उनके चरणकमलों में प्रणाम करता हूं।

शंकराचार्य ने ऐसे भक्ति भाव से एक सौ चार श्लोक रचकर देवी की महिमा का कीर्तन किया। सभी भक्त साधु, साधक व शंकराचार्य के शिष्य मंत्रमुग्ध-से उनकी ओर देखते रह गए।

आचार्य ने देवी की महिमा का वर्णन करके जिन श्लोकों की रचना की थी, वह रचना 'सौंदर्य लहरी' या 'आनंद लहरी' नाम से प्रसिद्ध है।

# 44

शंकराचार्य श्रीनगर में थोड़े समय ठहरे, वहां रहकर उन्होंने देवी भगवती की महिमा का जो कीर्तन किया, श्रद्धालु मंत्रमुग्ध-से उनकी ओर देखते रह गए।

देवमानव और मानवत्त्व के बीच में रहकर कैसे लोक कल्याणकारी कार्य करते हैं—इसकी स्पष्ट युक्तिपूर्ण व्याख्या सुनकर सभी वहां के श्रद्धालु मुग्ध हो गए।

वह शंकराचार्य के प्रति इतने श्रद्धा प्रेम से भर गए, शंकराचार्य के उस नगर में आगमन की स्मृति उद्देश्य से वहां के पर्वत का नाम 'शंकराचार्य शैल' रख दिया। उस पर्वत का इस समय तक वही नाम प्रसिद्ध है।

काश्मीर सौंदर्य पर्वत स्थल को छोड़कर शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित, चंद्रभागा नदी के किनारे-किनारे चलते हुए भारत की समतल भूमि, तक्षशिला, ज्वालामुखी, हरिद्वार तीर्थों का दर्शन करके पुराण वर्णित ऋषि-मुनियों की तपस्थली नैमिषारण्य की ओर चल पड़े।

अनेक स्थानों में शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित, वेदांत धर्म की उपयोगिता का प्रचार करते थे। वे अधिकारी भेद से कर्म उपासना और ज्ञान का उपदेश भी देते थे।

वे उदारपंथी थे, किसी को स्वधर्म-त्याग का उपदेश नहीं देते थे।

सबके पारलौकिक कल्याण के लिए उनके मतवाद की अपूर्णता दिखाकर, वेदांत, सिद्धांतानुयायी ब्रह्मबुद्धि से साधन-भजन करने का उपदेश देते थे।

शंकराचार्य शैव को वैष्णव और वैष्णव को शैव बनाना पसंद नहीं करते थे।

उन्होंने अद्वैत-ब्रह्मतत्त्व का प्रचार किया था। फिर भी देवी-देवता पर अश्रद्धा नहीं दिखाई बल्कि स्तोत्रादि द्वारा श्रद्धा ही व्यक्त की। उन्होंने यह भी कहा, 'देवी-देवताओं की उपासना से चित्त एकाग्र होता है। उन देवी-देवताओं की प्रसन्नता का लाभ भी मिलता है।'

वेद-ज्ञान उपासना का अंग है तथा अधिकारी भेद से साधकों के लिए उपासना का भी प्रयोजन है। सभी, निर्गुण ब्रह्मतत्त्व के अधिकारी नहीं हो सकते।

परब्रह्म एक, अद्वैत, निर्विशेष और निर्गुण है, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति आदि विभिन्न देवी-देवता ब्रह्म की ही मायाश्रित अभिव्यक्तियां हैं।

अधिकार और रुचि के भेद के अनुसार सभी देवी-देवता सगुण ब्रह्म के प्रकाश रूप से उपास्य हैं। उस समय शंकराचार्य के उदार मतवाद प्रचार के फलस्वरूप विभिन्न मतावलम्बियों के दार्शनिक तत्त्व में अधिक परिवर्तन हुआ और सभी ने वेदांत के मौलिकत्व और श्रेष्ठत्व को स्वीकार किया।

बीते युग में नैमिषारण्य वैदिक संस्कृति का, कर्मकांडियों का एक बड़ा केंद्र था।

शंकराचार्य जिस समय वहां पहुंचे, वहां पूर्व संस्कृति का कोई चिह्न नहीं था।

ऋषियों के आश्रम नष्ट हो चुके थे, वेद-ध्वनि कहीं सुनाई नहीं देती थी।

बौद्ध तांत्रिकों का अधिक प्रभाव था। शंकराचार्य ने वहां वेदांत-सिद्धांत का प्रचार किया। उन्होंने बताया, बुद्धदेव ने जिस ज्ञान मार्ग का उपदेश दिया था, वह अद्वैत वेदांत के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसकी व्याख्या करके शंकराचार्य ने श्रद्धालुओं को समझाया।

तब अनेक विभिन्न धार्मावलम्बी, वैदिक धर्म-कर्म-उपासना आदि करने लगे।

यहां नैमिषारण्य में कुछ दिन शंकराचार्य ठहरे और धर्म-सुधार प्रचार-कार्य करते हुए, श्रीरामचंद्रजी के जन्म-स्थान अयोध्या में पहुंच गए।

यहां भी उस समय बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण देवी-देवताओं की पूजा न्यून हो गई थी।

शंकराचार्य पहले श्रीरामचंद्र के मंदिर में पहुंचे। मंदिर में भली प्रकार पूजा का आयोजन नहीं था, जीर्ण अवस्था में था।

शंकराचार्य ने मंदिर की जीर्ण दशा का उद्धार कराया और शास्त्रविधि अनुसार पूजा का आयोजन कराया। देवी-देवताओं की उपासना की उपयोगिता का उपदेश देकर, कई श्रद्धालुओं को पंचदेवता की उपासना की ओर आकर्षित किया।

मंदिर में घंटे-घड़ियाल-शंख की ध्वनि के साथ आरती की ध्वनि गूंज उठी। श्रद्धालु हर्ष में भरकर शंकराचार्य का जयघोष करने लगे।

श्रीरामचंद्र के जयघोष के साथ शंकराचार्य का जयघोष अयोध्या में गूंज उठा।

शंकराचार्य वहां से मिथिला, मगध राज्य और नालंदा आदि स्थानों का भ्रमण करते हुए राजगृह पहुंचे।

## 44

शंकराचार्य श्रीनगर में थोड़े समय ठहरे, वहां रहकर उन्होंने देवी भगवती की महिमा का जो कीर्तन किया, श्रद्धालु मंत्रमुग्ध-से उनकी ओर देखते रह गए।

देवमानव और मानवत्त्व के बीच में रहकर कैसे लोक कल्याणकारी कार्य करते हैं—इसकी स्पष्ट युक्तिपूर्ण व्याख्या सुनकर सभी वहां के श्रद्धालु मुग्ध हो गए।

वह शंकराचार्य के प्रति इतने श्रद्धा प्रेम से भर गए, शंकराचार्य के उस नगर में आगमन की स्मृति उद्देश्य से वहां के पर्वत का नाम 'शंकराचार्य शैल' रख दिया। उस पर्वत का इस समय तक वही नाम प्रसिद्ध है।

काश्मीर सौंदर्य पर्वत स्थल को छोड़कर शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित, चंद्रभागा नदी के किनारे-किनारे चलते हुए भारत की समतल भूमि, तक्षशिला, ज्वालामुखी, हरिद्वार तीर्थों का दर्शन करके पुराण वर्णित ऋषि-मुनियों की तपस्थली नैमिषारण्य की ओर चल पड़े।

अनेक स्थानों में शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित, वेदांत धर्म की उपयोगिता का प्रचार करते थे। वे अधिकारी भेद से कर्म उपासना और ज्ञान का उपदेश भी देते थे।

वे उदारपंथी थे, किसी को स्वधर्म-त्याग का उपदेश नहीं देते थे।

सबके पारलौकिक कल्याण के लिए उनके मतवाद की अपूर्णता दिखाकर, वेदांत, सिद्धांतानुयायी ब्रह्मबुद्धि से साधन-भजन करने का उपदेश देते थे।

शंकराचार्य शैव को वैष्णव और वैष्णव को शैव बनाना पसंद नहीं करते थे।

उन्होंने अद्वैत-ब्रह्मतत्त्व का प्रचार किया था। फिर भी देवी-देवता पर अश्रद्धा नहीं दिखाई बल्कि स्तोत्रादि द्वारा श्रद्धा ही व्यक्त की। उन्होंने यह भी कहा, 'देवी-देवताओं की उपासना से चित्त एकाग्र होता है। उन देवी-देवताओं की प्रसन्नता का लाभ भी मिलता है।'

वेद-ज्ञान उपासना का अंग है तथा अधिकारी भेद से साधकों के लिए उपासना का भी प्रयोजन है। सभी, निगुर्ण ब्रह्मतत्त्व के अधिकारी नहीं हो सकते।

परब्रह्म एक, अद्वैत, निर्विशेष और निर्गुण है, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति आदि विभिन्न देवी-देवता ब्रह्म की ही मायाश्रित अभिव्यक्तियां हैं।

अधिकार और रुचि के भेद के अनुसार सभी देवी-देवता सगुण ब्रह्म के प्रकाश रूप से उपास्य हैं। उस समय शंकराचार्य के उदार मतवाद प्रचार के फलस्वरूप विभिन्न मतावलम्बियों के दार्शनिक तत्त्व में अधिक परिवर्तन हुआ और सभी ने वेदांत के मौलिकत्व और श्रेष्ठत्व को स्वीकार किया।

बीते युग में नैमिषारण्य वैदिक संस्कृति का, कर्मकांडियों का एक बड़ा केंद्र था।

शंकराचार्य जिस समय वहां पहुंचे, वहां पूर्व संस्कृति का कोई चिह्न नहीं था।

ऋषियों के आश्रम नष्ट हो चुके थे, वेद-ध्वनि कहीं सुनाई नहीं देती थी।

बौद्ध तांत्रिकों का अधिक प्रभाव था। शंकराचार्य ने वहां वेदांत-सिद्धांत का प्रचार किया। उन्होंने बताया, बुद्धदेव ने जिस ज्ञान मार्ग का उपदेश दिया था, वह अद्वैत वेदांत के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसकी व्याख्या करके शंकराचार्य ने श्रद्धालुओं को समझाया।

तब अनेक विभिन्न धार्मावलम्बी, वैदिक धर्म-कर्म-उपासना आदि करने लगे।

यहां नैमिषारण्य में कुछ दिन शंकराचार्य ठहरे और धर्म-सुधार प्रचार-कार्य करते हुए, श्रीरामचंद्रजी के जन्म-स्थान अयोध्या में पहुंच गए।

यहां भी उस समय बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण देवी-देवताओं की पूजा न्यून हो गई थी।

शंकराचार्य पहले श्रीरामचंद्र के मंदिर में पहुंचे। मंदिर में भली प्रकार पूजा का आयोजन नहीं था, जीर्ण अवस्था में था।

शंकराचार्य ने मंदिर की जीर्ण दशा का उद्धार कराया और शास्त्रविधि अनुसार पूजा का आयोजन कराया। देवी-देवताओं की उपासना की उपयोगिता का उपदेश देकर, कई श्रद्धालुओं को पंचदेवता की उपासना की ओर आकर्षित किया।

मंदिर में घंटे-घड़ियाल-शंख की ध्वनि के साथ आरती की ध्वनि गूंज उठी। श्रद्धालु हर्ष में भरकर शंकराचार्य का जयघोष करने लगे।

श्रीरामचंद्र के जयघोष के साथ शंकराचार्य का जयघोष अयोध्या में गूंज उठा।

शंकराचार्य वहां से मिथिला, मगध राज्य और नालंदा आदि स्थानों का भ्रमण करते हुए राजगृह पहुंचे।

## 44

शंकराचार्य श्रीनगर में थोड़े समय ठहरे, वहां रहकर उन्होंने देवी भगवती की महिमा का जो कीर्तन किया, श्रद्धालु मंत्रमुग्ध-से उनकी ओर देखते रह गए।

देवमानव और मानवत्त्व के बीच में रहकर कैसे लोक कल्याणकारी कार्य करते हैं—इसकी स्पष्ट युक्तिपूर्ण व्याख्या सुनकर सभी वहां के श्रद्धालु मुग्ध हो गए।

वह शंकराचार्य के प्रति इतने श्रद्धा प्रेम से भर गए, शंकराचार्य के उस नगर में आगमन की स्मृति उद्देश्य से वहां के पर्वत का नाम 'शंकराचार्य शैल' रख दिया। उस पर्वत का इस समय तक वही नाम प्रसिद्ध है।

काश्मीर सौंदर्य पर्वत स्थल को छोड़कर शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित, चंद्रभागा नदी के किनारे-किनारे चलते हुए भारत की समतल भूमि, तक्षशिला, ज्वालामुखी, हरिद्वार तीर्थों का दर्शन करके पुराण वर्णित ऋषि-मुनियों की तपस्थली नैमिषारण्य की ओर चल पड़े।

अनेक स्थानों में शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित, वेदांत धर्म की उपयोगिता का प्रचार करते थे। वे अधिकारी भेद से कर्म उपासना और ज्ञान का उपदेश भी देते थे।

वे उदारपंथी थे, किसी को स्वधर्म-त्याग का उपदेश नहीं देते थे।

सबके पारलौकिक कल्याण के लिए उनके मतवाद की अपूर्णता दिखाकर, वेदांत, सिद्धांतानुयायी ब्रह्मबुद्धि से साधन-भजन करने का उपदेश देते थे।

शंकराचार्य शैव को वैष्णव और वैष्णव को शैव बनाना पसंद नहीं करते थे।

उन्होंने अद्वैत-ब्रह्मतत्त्व का प्रचार किया था। फिर भी देवी-देवता पर अश्रद्धा नहीं दिखाई बल्कि स्तोत्रादि द्वारा श्रद्धा ही व्यक्त की। उन्होंने यह भी कहा, 'देवी-देवताओं की उपासना से चित्त एकाग्र होता है। उन देवी-देवताओं की प्रसन्नता का लाभ भी मिलता है।'

वेद-ज्ञान उपासना का अंग है तथा अधिकारी भेद से साधकों के लिए उपासना का भी प्रयोजन है। सभी, निगुर्ण ब्रह्मतत्त्व के अधिकारी नहीं हो सकते।

परब्रह्म एक, अद्वैत, निर्विशेष और निर्गुण है, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति आदि विभिन्न देवी-देवता ब्रह्म की ही मायाश्रित अभिव्यक्तियां हैं।

अधिकार और रुचि के भेद के अनुसार सभी देवी-देवता सगुण ब्रह्म के प्रकाश रूप से उपास्य हैं। उस समय शंकराचार्य के उदार मतवाद प्रचार के फलस्वरूप विभिन्न मतावलम्बियों के दार्शनिक तत्त्व में अधिक परिवर्तन हुआ और सभी ने वेदांत के मौलिकत्व और श्रेष्ठत्व को स्वीकार किया।

बीते युग में नैमिषारण्य वैदिक संस्कृति का, कर्मकांडियों का एक बड़ा केंद्र था।

शंकराचार्य जिस समय वहां पहुंचे, वहां पूर्व संस्कृति का कोई चिह्न नहीं था।

ऋषियों के आश्रम नष्ट हो चुके थे, वेद-ध्वनि कहीं सुनाई नहीं देती थी।

बौद्ध तांत्रिकों का अधिक प्रभाव था। शंकराचार्य ने वहां वेदांत-सिद्धांत का प्रचार किया। उन्होंने बताया, बुद्धदेव ने जिस ज्ञान मार्ग का उपदेश दिया था, वह अद्वैत वेदांत के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसकी व्याख्या करके शंकराचार्य ने श्रद्धालुओं को समझाया।

तब अनेक विभिन्न धार्मावलम्बी, वैदिक धर्म-कर्म-उपासना आदि करने लगे।

यहां नैमिषारण्य में कुछ दिन शंकराचार्य ठहरे और धर्म-सुधार प्रचार-कार्य करते हुए, श्रीरामचंद्रजी के जन्म-स्थान अयोध्या में पहुंच गए।

यहां भी उस समय बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण देवी-देवताओं की पूजा न्यून हो गई थी।

शंकराचार्य पहले श्रीरामचंद्र के मंदिर में पहुंचे। मंदिर में भली प्रकार पूजा का आयोजन नहीं था, जीर्ण अवस्था में था।

शंकराचार्य ने मंदिर की जीर्ण दशा का उद्धार कराया और शास्त्रविधि अनुसार पूजा का आयोजन कराया। देवी-देवताओं की उपासना की उपयोगिता का उपदेश देकर, कई श्रद्धालुओं को पंचदेवता की उपासना की ओर आकर्षित किया।

मंदिर में घंटे-घड़ियाल-शंख की ध्वनि के साथ आरती की ध्वनि गूंज उठी। श्रद्धालु हर्ष में भरकर शंकराचार्य का जयघोष करने लगे।

श्रीरामचंद्र के जयघोष के साथ शंकराचार्य का जयघोष अयोध्या में गूंज उठा।

शंकराचार्य वहां से मिथिला, मगध राज्य और नालंदा आदि स्थानों का भ्रमण करते हुए राजगृह पहुंचे।

राजगृह से गया की ओर चल पड़े। प्राचीन काल से ही गया धाम, सर्वश्रेष्ठ पितृतीर्थ कहलाता है।

भारत के विभिन्न प्रांतों से अनेक हिंदू अपने पितरों के मोक्ष के लिए यहां आते हैं।

गयाधाम में प्रतिष्ठित भगवान् गदाधर विष्णु के चरणों में पिंडदान करते हैं।

गया के समीप ही बोधगया में भगवान बुद्धदेव ने बुद्धत्व प्राप्त किया था।

बौद्ध धर्म के समय, गयाधाम का माहात्म्य तथा वैदिक धर्म का प्रभाव घटकर, बौद्ध धर्म का प्रभाव बढ़ गया था।

बुद्धदेव ने जिस स्थान पर बुद्धत्व प्राप्त किया था। वहां पर धर्म-प्रचारक अशोक ने एक विशाल मंदिर बनवाकर उसमें बुद्धदेव की मूर्ति स्थापित की थी।

वह स्थान और मंदिर समस्त बौद्धमत के अनुयायियों के लिए महान पवित्र तीर्थ के रूप में महत्त्वपूर्ण था।

मंदिर के आधार पर तथा उस समय की राजशक्ति के संरक्षण से सारे भारत में केवल बौद्ध-धर्म विशेष प्रभावशाली था।

शंकराचार्य ने भगवान् विष्णु के दस अवतारों का जो स्तोत्र लिखा था, उसमें बुद्धदेव को दशावतार में से नवम अवतार के रूप में दर्शाया था।

वह कहते थे—बुद्धदेव वैदिक मार्ग का ही अवलम्बन लेकर साधना करके सिद्ध हुए थे।

उन्होंने जिस निर्वाण की बात बताई थी, वह केवल शून्यमय नहीं है। वह परिपूर्ण आनंदमय है। निर्वाण में परमानंद का लाभ होता है।

विषय तृष्णा के निर्वाण से शाश्वत शांति तथा भूमानंद की प्राप्ति होती है।

बुद्धदेव आर्यपुत्र थे। सम्बोधिलाभ के अनंतर उन्होंने आर्यशास्त्रों की सत्यता का प्रचार किया था।

बुद्ध द्वारा कथित निर्वाण और वेदांत का मोक्ष दोनों एकार्थवाचक हैं।

उनसे पीछे बुद्धदेव के अनुयायी पंडितों ने भिन्नार्थ करके पृथक मत प्रचलित कर दिया।

भगवान् बुद्ध को शंकराचार्य ने विष्णु के एक अवतार रूप में दर्शाया था। उनके प्रचार के कारण बौद्ध धर्म में शिथिलता आ गई।

गया के ब्राह्मणों ने बुद्धदेव का विष्णु के अवतार रूप में पूजन किया।

विभिन्न प्रकार के गृहस्थ बौद्ध बुद्धदेव को विष्णु के अंशरूप से पूजित करने लगे।

उस प्रदेश में शंकराचार्य के आगमन से बुद्धदेव के अवतार रूप में प्रचार के कारण बौद्ध अपने को हिंदू कहने लगे।

बुद्धदेव की विभिन्न स्थानों में दूसरे देवी-देवताओं के साथ पूजा होने लगी।

शंकराचार्य ने गयाधाम में वैदिक धर्म का प्रचार-कार्य किया।

शंकराचार्य के शिष्यों ने विभिन्न स्थानों में जाकर अंधविश्वास में फंसाने वाले मतों का खंडन करके श्रद्धालु जनता के हृदय में पवित्र धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न की।

गयाधाम के दूर-दूर के स्थानों में भी वैदिक धर्म का प्रचार हुआ।

गयाधाम में शिष्यों सहित धर्म-प्रचार कार्य करके शंकराचार्य बंग देश की ओर चल पड़े।

उन दिनों सारे बंग देश में बौद्ध तांत्रिकों का प्रभाव था। वेद का नाम थोड़े से ही श्रद्धालु मनुष्य जानते थे।

शंकराचार्य के साथ गृहस्थी शिष्य भी थे। उन्होंने देखा, बौद्ध मत के प्रभाव के कारण वहां के मनुष्य काली देवी शिव देवता की पूजा भूल चुके हैं।

उन्होंने मंदिरों में देवी-देवताओं की प्रतिष्ठा कर शिव, काली और देवताओं की पूजा के लिए स्थानीय ब्राह्मणों को नियुक्त किया। शंकराचार्य की प्रतिभा, दिग्विजयी होने की चर्चा वहां पहले ही पहुंच चुकी थी।

श्रद्धालु जनता शंकराचार्य का वहां आने का समाचार सुनकर उनके दर्शनों को एकत्र होने लगी। शंकराचार्य के चमकते उज्ज्वल मुख को देखकर वह अपने को धन्य मानने लगे।

वहां के पंडित, शंकराचार्य से वेद की शास्त्र व्याख्या तथा महिमा-कीर्तन सुनकर साक्षात् शंकरावतार रूप में उनके दर्शन करने लगे।

सर्वत्र हिंदू शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना आरंभ हो गया। सारे बंग देश में पंचदेवता की पूजा प्रचलित हुई। साधारण जनता भी वेद पर विश्वास करने लगी। वैदिक धर्म में नवजागरण दिखाई देने लगा।

# 45

गौड़ देश (आजकल उत्तरी बंगाल) के विभिन्न स्थानों में प्रचार करते हुए शिष्यों सहित आचार्य गंगा तीर पर भ्रमण करते हुए आए।

यहां की प्राकृतिक शोभा और गंगा के पवित्र जल ने शंकराचार्य का मन मोह लिया।

वह गंगा तीर पर ही अपना अधिक समय व्यतीत करने लगे।

एक समय शंकराचार्य ध्यानमग्न हुए गंगातीर के समीप बैठे हुए थे। उनके निकट ही अचानक एक दिव्य ज्योतिपूर्ण योगी मानव की दिव्य मूर्ति प्रकट हुई।

शंकराचार्य ने आश्चर्य से उस ओर देखा, योगिराज के शरीर से दिव्य ज्योति निकल रही थी। जिससे चारों ओर प्रकाश हो रहा था।

वह दिव्य ज्योति वाले योगीराज शंकराचार्य की ओर आने लगे। शंकराचार्य आश्चर्य में भरकर उनके चरणों की वंदना करते हुए उन्हें उच्च आसन पर बैठने की प्रार्थना करने लगे।

महापुरुष ने शंकराचार्य के सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया और प्रसन्न होकर आसन पर बैठ गए। फिर शंकराचार्य की ओर देखते हुए बोले, 'पुत्र शंकर! संसार सागर से उद्धार होने का उपाय परम तत्त्व ज्ञान है। जिसकी शिक्षा तुम्हें मेरे प्रिय शिष्य गोबिंदपाद ने दी थी। उसमें तुम प्रतिष्ठित हुए थे। क्या अब तुम्हारा चित्त सदैव सच्चिदानंद तत्त्वज्ञान में मग्न रहता है?'

'हे परमगुरु, करुणानिधे! इस सेवक के प्रति आपकी कृपा हुई है। मुझे सब कुछ प्राप्त हो गया। मेरे सौभाग्य की सीमा नहीं।' शंकराचार्य ने गौड़पाद के चरणों में वंदना करते हुए कहा, 'आपके दर्शन करके मैं धन्य हो गया।'

'तुम्हारे गुणों की चर्चा सुनकर तुम्हें देखने की प्रबल इच्छा मुझे यहां ले आई,

मेरे द्वारा लिखित 'मांडूवचकारिका' पर जो भाष्य तुमने लिखा है, उसमें यथार्थ आशय अति सुंदर रूप में दर्शाया है। उसे देखकर मुझे अधिक प्रसन्नता हुई, मैं तुम्हें वरदान देने आया हूं।'

'योगिराज! शुकदेव के समान आपका दर्शन करके मैं धन्य हो गया। और क्या वर मागूं', शंकराचार्य ने नम्रता से गौड़पाद के चरणों में झुकते हुए कहा:

'अब तो आपके श्रीचरणों से यही वर मांगता हूं मेरा चित्त सदैव सच्चिदानंद में मग्न रहे।'

'तथास्तु! कहते हुए गौड़पादाचार्य अंतर्धान हो गए। शंकराचार्य मग्न हो गए। आवश्यक कार्यों के लिए जब वह समाधि से उठे, तब शिष्यों को शंकराचार्य ने यह घटना सुनाई।

आचार्य गौड़पाद के दर्शन करने के पश्चात् तो शंकराचार्य और भी ध्यानमग्न रहने लगे।

उनके शिष्य उन्हें जीव भूमि में लाने के लिए अनेक प्रकार के प्रश्न पूछते पर शंकराचार्य को अब किसी विषय में रुचि नहीं रही थी।

शास्त्रव्याख्या, व भाष्यादि में भी वह रुचि नहीं ले रहे थे।

श्रद्धालु यदि शास्त्रव्याख्या सुनने के लिए आते तो शंकराचार्य अपने शिष्यों को ही संकेत से समझाने को कह देते। अधिक समय तक मौन रहना अब उन्हें अच्छा लगता।

शिष्य उनके समीप बैठे हुए सद्उपदेश सुनाने के लिए कहते, शंकराचार्य मौन ही धारण किए रहते।

अब शिष्य समझ चुके थे, हमारे गुरुदेव स्वस्वरूप में लीन होने ही तैयारी कर रहे हैं।

बत्तीस वर्ष की आयु पूरी हो रही है। अब सभी शिष्य अपने गुरु के समीप ही अधिक समय व्यतीत करने लगे।

शंकराचार्य की अपने आवश्यक कार्यों से भी विरक्ति होने लगी। उन्हें भोजनादि में भी रुचि नहीं रही।

पद्मपाद उनके समीप ही प्रत्येक समय रहता और आग्रह करके भोजनादि आवश्यक कार्य कराता।

'पद्मपाद! अब हमारा इस देह धारण का कार्य समाप्त हो गया', शंकराचार्य ने अपने शिष्यों की ओर देखते हुए कहा, 'अब तुम सब वेदांतमय जीवन बनाकर, वेदांत की महिमा का प्रचार करने के लिए तैयार हो जाओ। 'अहं ब्रह्मास्मि' इस ज्ञान

में प्रतिष्ठित हो जाओ तभी भली प्रकार धर्म-प्रचार कार्य होगा।'

'गुरुदेव! आपने सारा जीवन अर्पण करके जिस मार्ग की रचना की है, हम आपका आशीर्वाद लेकर उसी मार्ग पर, आपके पदचिह्नों पर चलेंगे पर आपका विछोह किस प्रकार सहन करेंगे।'

पद्मपाद ने रोते हुए शंकराचार्य के चरण पकड़ते हुए कहा, 'हमें अपने चरणों से दूर नहीं करो गुरुदेव।'

'पद्मपाद; जिनकी इच्छा से शरीर धारण किया है, कार्य पूरा होने पर इसे त्यागना भी पड़ेगा'—शंकराचार्य ने पद्मपाद के सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए कहा, 'भारत की एकता' धर्म-प्रचार के लिए चार मठों की स्थापना करनी होगी, उसके विषय में राजा सुधंवा को सब नियम लिपिबद्ध कराना होगा।'

'वह मठ कहां-कहां स्थापित होंगे गुरुदेव और कौन आचार्य होंगे, उनका क्या कार्य होगा', सुरेश्वराचार्य ने शंकराचार्य के चरण छूते हुए कहा, 'इस विषय में हमें समझाइए।'

'सुरेश्वराचार्य! कोई भी विद्या या साधना सम्प्रदायबद्ध हुए बिना स्थायी नहीं होती', शंकराचार्य ने अपने शिष्यों की ओर देखते हुए कहा, 'वेदांत साधना के आदर्श को संसार कल्याण के लिए स्थायी रूप करने के लिए संन्यासी संघ की स्थापना होगी।'

'चार प्रधान मठों के अधीन और भी अनेक मठ स्थापित किए जाएंगे।'

'यह चार मठ किन-किन स्थानों में स्थापित किए जाएंगे गुरुदेव', तोटकाचार्य ने नम्रता से झुकते हुए कहा, 'उसका विवरण कृपा कर बताएंगे।'

'सुनो! शारदामठ द्वारका क्षेत्र में होगा और इसके अधीन तीर्थ और आश्रम होंगे। अधिदेवता का नाम सिद्धेश्वर है। देवी—भद्रकाली, तीर्थ—गोमती तीर्थ और आचार्य हस्तामलक होंगे।

सामवेद वहां प्रतिष्ठित होंगे। महावाक्य—तत्त्वमसि (छांदोग्य) जो जीवात्मा और परमात्मा की एकता दर्शाता है।

सम्प्रदाय का नाम कीटवार होगा। गोत्र—अधिगत और सिंधु, सौवीर, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र आदि देशों के अंतर्गत पश्चिम भारत के सभी स्थान शारदामठ के अधीन होंगे।'

'तत्त्वमसि महावाक्य, सम्प्रदाय का नाम 'कीटवार' किस कारण रखा गया गुरुदेव', पद्मपाद ने नम्रता से झुकते हुए कहा, 'इसे समझाने की कृपा करें।'

'पद्मपाद! तत्त्वमसि महावाक्य त्रिवेणी-संगम की तरह पवित्र तीर्थ तुल्य है।

जिसने इस महावाक्य का मर्म समझ लिया वह मुक्त हो गया।'

शंकराचार्य ने मुस्कराते हुए कहा, 'सम्प्रदाय का नाम कीटवार इस कारण रखा गया है, कीट से लेकर सारे जीव-जंतुओं के प्रति वहां के संन्यासियों का दया भाव रहे।'

समझ गया गुरुदेव! दूसरे मठ के विषय में बताइए', सुरेश्वराचार्य ने शंकराचार्य की ओर देखते कहा, 'उसका क्या नाम होगा, वह मठ किस स्थान में स्थापित होगा?'

'मठ का नाम गोवर्धनमठ होगा, सम्प्रदाय का नाम 'भोगवार' होगा, पुरुषोत्तम क्षेत्र होगा, विमला देवी और देवता जगन्नाथ होंगे।' शंकराचार्य ने पद्मपाद की ओर देखते हुए कहा, 'आचार्य पद्मपाद होंगे।'

'महावाक्य—प्रज्ञानब्रह्म (ऐतरेय) और ऋग्वेद की प्रतिष्ठा की जाएगी। अंग (भागलपुर) बंग, कलिंग, मगध, उत्कल, उड़ीसा आदि प्रदेशों के अंतर्गत पूर्व भारत के सभी स्थान गोवर्धनमठ के अधीन होंगे। गोत्र—काश्यप होगा।

भोगवार सम्प्रदाय का नाम इस कारण रखा गया है ताकि विषय भोगों से प्राणीमात्र को दूर रखें।'

'तीसरा मठ किस स्थान में स्थापित होगा गुरुदेव!' हस्तामलक ने शंकराचार्य के चरण छूते हुए कहा, 'वह भी बताने की कृपा करें।'

'ज्योतिर्मठ, बदरिकाश्रम क्षेत्र में स्थापित होगा, सम्प्रदाय का नाम 'आनंदवार' अर्थात् सिद्धिदाता होगा। देवता नारायण, देवी पूर्णागिरि हैं। आचार्य तोटकाचार्य होंगे। तीर्थ का नाम अलकनंदा होगा।

महावाक्य—'अयमात्मा ब्रह्म' (मांडूक्य) अथर्ववेद की प्रतिष्ठा होगी। गोत्र, भृगु। कुरु, काश्मीर, कम्बोज, पांचाल आदि भारत के उत्तर भाग के प्रदेश ज्योतिर्मठ के अधीन होंगे।

चौथा शृंगेरीमठ, रामेश्वर क्षेत्र में स्थापित होगा। सम्प्रदाय का नाम 'भूरिवार' होगा, गोत्र भूर्भुवः, देवता आदि वराह देवी कामाक्षी, जो साधकों की सभी शुभकामनाएं पूर्ण करती हैं।

'तीर्थ तुंगभद्रा, व आचार्य सुरेश्वराचार्य होंगे। यजुर्वेद की प्रतिष्ठा होगी। महावाक्य—अंह ब्रह्मास्मि (बृहदारण्यक) शृंगेरीमठ के अधीन आंध्र प्रदेश, द्राविड़, कर्नाटक, केरल आदि दक्षिण भारत के सभी प्रदेश होंगे। लिखित महानुशासन को राजा सुधन्वा लिपिबद्ध कराएंगे।'

शंकराचार्य ने सभी शिष्यों की ओर देखते हुए कहा, 'चारों दिशाओं में चार

मठों की स्थापना का उद्देश्य तो अब तुम्हारी समझ में आ गया होगा।'

'गुरुदेव आपकी कृपा से हम सब समझ गए', प्रभृति ने शंकराचार्य के चरणों में झुकते हुए कहा, 'मठाधीशों का और क्या कर्त्तव्य होगा, वह भी बताने की कृपा करें।'

'मठ के सभी आचार्यों का कर्त्तव्य होगा, वह अपने-अपने धर्म का विधिवत् पालन करेंगे।'

शंकरचार्य ने अपने प्रधान शिष्यों की ओर देखते हुए कहा, 'साधारण व्यक्ति धर्म विरुद्ध आचरण तो नहीं कर रहे हैं इसे जानने के लिए मठाधीश अपने-अपने निर्दिष्ट प्रांतों में सदैव भ्रमण करेंगे।

नियमपूर्वक स्थायी रूप से मठ में आचार्य निवास नहीं करेंगे। पवित्र जितेंद्रिय, वेदवेदांग विशारद, सारे शास्त्रों का ज्ञाता, और साधन-सम्पन्न त्यागी संन्यासी ही शंकराचार्य पद पर प्रतिष्ठित होंगे।

इन चार मठों के मठाधीशों का अपने-अपने क्षेत्र के विभिन्न मतावलम्बियों की रक्षा करना प्रधान कार्य होगा।'

'गुरुदेव आपने जैसे आदेश दिए हैं हम सब उनका प्राण रहते पालन करेंगे', सभी शिष्यों ने शंकराचार्य के चरण छूकर, चरणरज मस्तक से लगाते हुए कहा, 'अब यात्रा का कार्यक्रम क्या है, बताने की कृपा करें।'

'अब हम बदरीधाम जाएंगे, वहां से केदारधाम, यही हमारा अंतिम कार्यक्रम है', कहते हुए शंकराचार्य ने शिष्यों को जाने का संकेत करते हुए कहा—

'कल प्रातःकाल यात्रा आरंभ करना अब विश्राम करो।' सभी शिष्य शंकराचार्य के चरणों की वंदना करके चले गए। शंकराचार्य ध्यानमग्न हो गए। पद्मपाद भी एक ओर ध्यान-साधना में लीन हो गया।

## 46

अपने श्रद्धालु भक्तों व शिष्यों के आग्रह से आचार्य बदरिकाश्रम की ओर चल पड़े। हिमालय का प्रकृति सौंदर्य से भरपूर शांत दृश्य शंकराचार्य के मन में अनूठा आनंद भरने लगा।

वह और भी ध्यानमग्न होकर समाधि अवस्था में रहने लगे। थोड़े दिन उस स्थल पर व्यतीत करके आचार्य ज्योतिर्धाम बदरिकाश्रम पथ पर शिष्यों सहित आगे की ओर चल पड़े।

राजा ने शंकराचार्य के वहां आने की सूचना सुनी, तब वह अपने कर्मचारियों सहित उनके स्वागत के लिए आए और स्वागत करके अपने नगर में ले गए।

पहले जब शंकराचार्य आए थे, राजा सुधन्वा की सहायता से उत्तराखंड के मंदिरों का जीर्णोद्धार करके पंचदेवता, पंचमहायज्ञ का अनुष्ठान करा गए थे।

वर्णाश्रम धर्म व वेदाध्ययन का भी प्रचार कराया था। उनके प्रचार का प्रभाव हिमाचल प्रदेश में अधिक ही पड़ा था।

अब अखंड भारतवर्ष में वेदांत प्रचार-कार्य करके शंकराचार्य दोबारा उत्तराखंड पधारे हैं। यह समाचार वायु की गति जैसा चारों ओर फैल गया।

राजा सुधन्वा शंकराचार्य की दिग्विजय का समाचार सुनकर प्रसन्नता से भर गए। उन्होंने ज्योतिर्धाम में उत्सव मनाने का आदेश दे दिया।

उत्तराखंड के विभिन्न स्थानों से ब्राह्मण, पंडित शंकराचार्य के दर्शन, सत्संग को आने लगे। धर्म चर्चा होने लगी। ज्योतिर्धाम सच्चिदानंद का ज्योति तीर्थ बन गया।

शंकराचार्य का इस बार पवित्र संग करके श्रद्धालु अपने को धन्य मानने लगे।

उनके अथाह ज्ञान का उन्हें अनुभव हुआ। वह आपस में कहने लगे,

'शंकराचार्य देवअंश ही हैं। साधारण मनुष्य में ऐसी अलौकिक शक्तियां नहीं होतीं।'

शंकराचार्य को जब से आचार्य गौड़पाद के दर्शन हुए थे, तभी से वे और भी ध्यानमग्न रहने लगे थे। शिष्य धर्म-चर्चा करके उन्हें जीवभूमि में लाने का यत्न करते, पर वह चेष्टा व्यर्थ जाती।

वह यह समझ गए थे, आचार्य स्वस्वरूप में लीन होने के लिए तैयारी कर रहे हैं।

उनकी आयु के बत्तीस वर्ष पूरे होने वाले हैं। अब शंकराचार्य का मन सांसारिक कर्मभूमि में नहीं लगेगा।

राजा सुधन्वा के आग्रह से शंकराचार्य वहां कुछ दिन ठहरे, फिर शिष्यों को साथ लेकर केदारधाम की ओर चल पड़े। अब शास्त्र-व्याख्या या धर्मोपदेश में भी उनकी रुचि नहीं रही थी।

इतने वर्षों से लगातार उत्साह से प्रचार-कार्य कर रहे थे। अत्यंत उत्साह के साथ सहस्रों कोस पदयात्रा कर रहे थे। अब उन कार्यों में भी उनकी रुचि नहीं रही थी।

सभी शिष्य निराशा से उदास होकर अपने गुरुदेव के समीप रहने का यत्न करते, वह किसी की ओर ध्यान नहीं देते थे।

सारे जीवन वैदिक धर्म की पुनः प्रतिष्ठा के लिए प्रयत्नशील रहे। अब उन्हीं कार्यों में आचार्य को कोई रुचि नहीं रही थी।

केदारधाम पहुंचकर शंकराचार्य पहले श्रीमंदिर में पूजा-अर्चना के लिए गए।

पवित्र तपोभूमि केदार क्षेत्र में आने पर शंकराचार्य और अधिक समाधि अवस्था में रहने लगे थे।

अपने आवश्यक कार्यों के प्रति भी वह विरक्त रहने लगे थे। पद्मपाद आदि प्रधान शिष्य, समय-समय पर उनके आवश्यक कार्यक्रम करा देते थे।

प्रातःकाल मंदिर में पूजा के लिए जाते—थोड़ी देर में ही पूजा ध्यान करते-करते उनकी समाधि लग जाती।

शिष्य भी उन्हीं के समीप बैठकर साधना कर लेते थे। अपने गुरु की सब कार्यों से विरक्ति उन्हें अधिक ही कष्टदायक हो गई थी।

गुरुदेव से विछोह शीघ्र ही होने वाला है, यह सोचकर सभी उदास रहते थे।

पद्मपाद, रात-दिन उनके समीप ही बैठा रहता, उसके श्रद्धालु शिष्य आग्रह करके उन्हें भोजन और विश्राम कराते।

एक दिन पद्मपाद को अपने समीप उदास-सा बैठे हुए देखकर, शंकराचार्य ने

आंखें खोलकर प्यार से उसके सिर पर हाथ रखा।

पद्मपाद अपने गुरु के चरणों से लिपटकर फूट-फूटकर रो पड़ा।

शंकराचार्य ने प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरकर मुस्कराते हुए कहा, 'पद्मपाद! इस शरीर का कार्य समाप्त हो गया, अब स्वस्वरूप में लीन होने का समय आ गया है। यदि तुमने कुछ पूछना हो तो पूछ सकते हो।'

'गुरुदेव! आपका वियोग किस प्रकार सहन करूंगा, यह सोचकर ही मेरा मन छटपटाने लगता है।' पद्मपाद ने शंकराचार्य के चरण छूते हुए कहा, 'किस प्रकार मन को समझाऊं।'

'पद्मपाद तुम संन्यासी हो, संन्यासी को किसी वस्तु से मोह नहीं होना चाहिए। पद्मपाद केवल आत्मज्ञान ही संन्यासियों के लिए यथेष्ट नहीं है। उन्हें संन्यास जीवन के उच्च आदर्श को भी रखना पड़ेगा। देखो तुम मठाधीश बनोगे, मठाधीश धर्म-प्रचार के लिए अनेक स्थानों में भ्रमण करेगा—किसी से मोह उसे नहीं रखना होगा।'

'सब समझता हूं गुरुदेव, आपके आदेश का पालन करूंगा', पद्मपाद ने अपने गुरु के चरणों की रज मस्तक से लगाते हुए कहा, 'अब आप ही साहस, दृढ़ता हृदय में संचित करेंगे, जो आघातों को शांति से सहन कर सके।'

'जाओ पद्मपाद सभी अपने गुरुभाइयों को बुला लाओ', शंकराचार्य ने पद्मपाद की ओर देखते हुए कहा, 'अब हमारे पास अधिक समय नहीं है।'

पद्मपाद शीघ्रता से अपने सभी गुरुभाइयों को बुला लाया।

आंखों में आंसू भरे सभी शिष्यों ने अपने गुरु की चरण-वंदना की।

शंकराचार्य ने बारी-बारी से सभी के सिर पर प्यार से हाथ फेरा फिर आशीर्वाद देते हुए बोले—'वत्स! मैं तुम सबको यह आशीर्वाद देता हूं तुम सबके शुभ मनोरथ सफल हों।

जब तक प्राण हैं तब तक पूर्व निर्देशानुसार सनातन वैदिक धर्म का प्रचार करते रहना।

जिस ब्रह्मात्म विज्ञान का मैंने उपदेश दिया है वह गुरु परम्परा से प्राप्त है।

तुम सब ब्रह्म स्वरूप में प्रतिष्ठित रहो, मेरा यह आशीर्वाद है।

मैंने चार मठों को जिन स्थानों में स्थापित करने का निर्णय दिया है राजा सुधन्वा के सहयोग से उन स्थानों में मठ स्थापित कर मठाधीश के उच्च आदर्शों का पालन करना।

चारों दिशाओं में यह चार मठ, भारत की एकता, हिंदू धर्म संस्कृति को स्थिर रखने में सहयोग देंगे।'

'शंकराचार्य देवअंश ही हैं। साधारण मनुष्य में ऐसी अलौकिक शक्तियां नहीं होतीं।'

शंकराचार्य को जब से आचार्य गौड़पाद के दर्शन हुए थे, तभी से वे और भी ध्यानमग्न रहने लगे थे। शिष्य धर्म-चर्चा करके उन्हें जीवभूमि में लाने का यत्न करते, पर वह चेष्टा व्यर्थ जाती।

वह यह समझ गए थे, आचार्य स्वस्वरूप में लीन होने के लिए तैयारी कर रहे हैं।

उनकी आयु के बत्तीस वर्ष पूरे होने वाले हैं। अब शंकराचार्य का मन सांसारिक कर्मभूमि में नहीं लगेगा।

राजा सुधन्वा के आग्रह से शंकराचार्य वहां कुछ दिन ठहरे, फिर शिष्यों को साथ लेकर केदारधाम की ओर चल पड़े। अब शास्त्र-व्याख्या या धर्मोपदेश में भी उनकी रुचि नहीं रही थी।

इतने वर्षों से लगातार उत्साह से प्रचार-कार्य कर रहे थे। अत्यंत उत्साह के साथ सहस्त्रों कोस पदयात्रा कर रहे थे। अब उन कार्यों में भी उनकी रुचि नहीं रही थी।

सभी शिष्य निराशा से उदास होकर अपने गुरुदेव के समीप रहने का यत्न करते, वह किसी की ओर ध्यान नहीं देते थे।

सारे जीवन वैदिक धर्म की पुनः प्रतिष्ठा के लिए प्रयत्नशील रहे। अब उन्हीं कार्यों में आचार्य को कोई रुचि नहीं रही थी।

केदारधाम पहुंचकर शंकराचार्य पहले श्रीमंदिर में पूजा-अर्चना के लिए गए।

पवित्र तपोभूमि केदार क्षेत्र में आने पर शंकराचार्य और अधिक समाधि अवस्था में रहने लगे थे।

अपने आवश्यक कार्यों के प्रति भी वह विरक्त रहने लगे थे। पद्मपाद आदि प्रधान शिष्य, समय-समय पर उनके आवश्यक कार्यक्रम करा देते थे।

प्रातःकाल मंदिर में पूजा के लिए जाते—थोड़ी देर में ही पूजा ध्यान करते-करते उनकी समाधि लग जाती।

शिष्य भी उन्हीं के समीप बैठकर साधना कर लेते थे। अपने गुरु की सब कार्यों से विरक्ति उन्हें अधिक ही कष्टदायक हो गई थी।

गुरुदेव से विछोह शीघ्र ही होने वाला है, यह सोचकर सभी उदास रहते थे।

पद्मपाद, रात-दिन उनके समीप ही बैठा रहता, उसके श्रद्धालु शिष्य आग्रह करके उन्हें भोजन और विश्राम कराते।

एक दिन पद्मपाद को अपने समीप उदास-सा बैठे हुए देखकर, शंकराचार्य ने

आंखें खोलकर प्यार से उसके सिर पर हाथ रखा।

पद्मपाद अपने गुरु के चरणों से लिपटकर फूट-फूटकर रो पड़ा।

शंकराचार्य ने प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरकर मुस्कराते हुए कहा, 'पद्मपाद! इस शरीर का कार्य समाप्त हो गया, अब स्वस्वरूप में लीन होने का समय आ गया है। यदि तुमने कुछ पूछना हो तो पूछ सकते हो।'

'गुरुदेव! आपका वियोग किस प्रकार सहन करूंगा, यह सोचकर ही मेरा मन छटपटाने लगता है।' पद्मपाद ने शंकराचार्य के चरण छूते हुए कहा, 'किस प्रकार मन को समझाऊं।'

'पद्मपाद तुम संन्यासी हो, संन्यासी को किसी वस्तु से मोह नहीं होना चाहिए। पद्मपाद केवल आत्मज्ञान ही संन्यासियों के लिए यथेष्ट नहीं है। उन्हें संन्यास जीवन के उच्च आदर्श को भी रखना पड़ेगा। देखो तुम मठाधीश बनोगे, मठाधीश धर्म-प्रचार के लिए अनेक स्थानों में भ्रमण करेगा—किसी से मोह उसे नहीं रखना होगा।'

'सब समझता हूं गुरुदेव, आपके आदेश का पालन करूंगा', पद्मपाद ने अपने गुरु के चरणों की रज मस्तक से लगाते हुए कहा, 'अब आप ही साहस, दृढ़ता हृदय में संचित करेंगे, जो आघातों को शांति से सहन कर सके।'

'जाओ पद्मपाद सभी अपने गुरुभाइयों को बुला लाओ', शंकराचार्य ने पद्मपाद की ओर देखते हुए कहा, 'अब हमारे पास अधिक समय नहीं है।'

पद्मपाद शीघ्रता से अपने सभी गुरुभाइयों को बुला लाया।

आंखों में आंसू भरे सभी शिष्यों ने अपने गुरु की चरण-वंदना की।

शंकराचार्य ने बारी-बारी से सभी के सिर पर प्यार से हाथ फेरा फिर आशीर्वाद देते हुए बोले—'वत्स! मैं तुम सबको यह आशीर्वाद देता हूं तुम सबके शुभ मनोरथ सफल हों।

जब तक प्राण हैं तब तक पूर्व निर्देशानुसार सनातन वैदिक धर्म का प्रचार करते रहना।

जिस ब्रह्मात्म विज्ञान का मैंने उपदेश दिया है वह गुरु परम्परा से प्राप्त है।

तुम सब ब्रह्म स्वरूप में प्रतिष्ठित रहो, मेरा यह आशीर्वाद है।

मैंने चार मठों को जिन स्थानों में स्थापित करने का निर्णय दिया है राजा सुधन्वा के सहयोग से उन स्थानों में मठ स्थापित कर मठाधीश के उच्च आदर्शों का पालन करना।

चारों दिशाओं में यह चार मठ, भारत की एकता, हिंदू धर्म संस्कृति को स्थिर रखने में सहयोग देंगे।'

यह कहते हुए शंकराचार्य मौन हो गए—वह ध्यान में मग्न होकर समाधि अवस्था में हो गए।

थोड़ी देर इसी समाधि अवस्था में रहने के पश्चात् उन्होंने अनंत समाधि ले ली।

जन श्रुति है उनका भौतिक शरीर भी साथ-ही-साथ केदारधाम में विलीन हो गया।

सारे भारत में सनातन वैदिक धर्म प्रचार-कार्य करते हुए शंकराचार्य ने केदारधाम में अनंत समाधि ले ली। जगतगुरु आदिगुरु शंकराचार्य की समाधि, पवित्र केदारधाम में अब भी श्रद्धालुओं को प्रेरणा देती हुई प्रतीत होती है।

## इन्द्रा 'स्वप्न'

**जन्म :** 1913 ई.

**जन्मस्थान :** फतेहाबाद (हरियाणा)

आज से लगभग 50 वर्ष पूर्व उस समय लिखना प्रारंभ किया जबकि भारत संक्रमणकाल से गुजर रहा था और उसे रूढ़िवादियों की अंधकूपना से निकालकर आगे बढ़ाने की महती आवश्यकता थी। भारतीय समाज की रूढ़िवादी परम्पराएं, नारी की परवशता और पारिवारिक परिस्थितियां सदैव इनके लेखन में आड़े आती रहीं और यही कारण है कि इनकी लेखनी इन सब कुरीतियों का भंडाफोड़ करती रही।

अब तक अनेकों उपन्यास, कहानी-संग्रह तथा बालोपयोगी कृतियां प्रकाशित। अनेक कहानियां, कविताएं एवं बाल-नाटक विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित और आकाशवाणी से प्रसारित।

**सम्प्राप्ति :** उपन्यास 'महाराष्ट्र का गौरव' हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा वर्ष 1981 में पुरस्कृत।

**सम्पर्क :** सी-54,
शिवाजी पार्क,
नई दिल्ली-110026